शिशुपालवध महाकाव्य के शास्त्रीय सन्दर्भ

बालकृष्ण त्रिपाठी

पुस्तक के विषय में

महाकवि माघ श्रेष्ठ कवि होने के साथ विविध शास्त्रों के निष्णात विद्वान् थे, उनका शास्त्रज्ञान सहज ही उनके काव्य में छलक पड़ा है। इसका उल्लेख भी विद्वानों द्वारा प्राय: किया जाता रहा है, किन्तु डॉ० त्रिपाठी के शोधप्रबन्ध में माघ के महाकाव्य शिशुपालवध में प्रतिबिम्बित वेदाङ्ग, धर्म, दर्शन, काव्यशास्त्र तथा अन्य विविध शास्त्रों का सैद्धान्तिक और व्यावहारिक विवेचन व्यापक रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें शास्त्रीय सिद्धान्तों की प्रस्तुति तथा तत्तत् सिद्धान्तों पर माघ का दृष्टिकोण और उनका तुलनात्मक विश्लेषण अत्यन्त आवर्ज है। यह एक विद्वत्समुदायाकाङ्क्षित कार्य था, जिसे डॉ० त्रिपाठी ने अपनी लेखन क्षमता से पूर्ण किया है। निश्चित ही यह ग्रन्थ माघ के अगाधशास्त्रीय ज्ञान को समुन्मीलित करेगा तथा इस दिशा में शोधकर्त्ताओं का मार्गदर्शक होगा। इस ग्रन्थ के अन्त में माघ के सन्दर्भ में प्रचलित उक्तियों का विश्लेषण और उदात्त-सन्देशों का आकलन किया गया है, जो ज्ञानवर्धक और प्रेरक है। यह ग्रन्थ अवश्य ही संग्रहणीय और पठनीय है।

आई०एस०बी०एन० : ८१-८७४१८-५१-६
पेज संख्या : ३५०, संस्करण : २००२
मूल्य : ५००.००

शिशुपालवध महाकाव्य
के
शास्त्रीय सन्दर्भ

डॉ० बालकृष्ण त्रिपाठी

न्यू भारतीय बुक कॉर्पोरेशन
दिल्ली (भारत)

प्रकाशक :
न्यू भारतीय बुक कॉर्पोरेशन
दुकान नं० १८, ५५७४ए, द्वितीय तल,
चौ. काशीराम मार्केट, दुर्गा काम्पलेक्स,
न्यू चन्द्रावल, दिल्ली-११०००७
दूरभाष : ३९८१२९४

Published under the publication Grant of U.G.C.
Provided by Rani Durgavati Vishwavidyalaya, Jabalpur.

प्रथम संस्करण : २००३

आई०एस०बी०एन० : ८१-८७४१८-५१-६

अक्षर संयोजक :
ए-वन ग्राफिक्स
एक्स-४, गली नं०-२,
ब्रह्मपुरी, दिल्ली-११००५३
फोन : २१८३४७०

मुद्रक :
डी० जी० प्रिंटर्स,
शाहदरा, दिल्ली-32

प्रस्तावना

शिशुपालवध संस्कृत का एक प्रशस्त महाकाव्य है। यह महाकवि माघ की एकमात्र उपलब्ध कृति है तथापि अपनी उत्कृष्टता के कारण माघ के यश: काव्य की रक्षा का आधार स्तम्भ है। 'काव्येषु माघ:' यह अभ्युक्ति माघ की काव्यप्रणयण पटुता की प्रत्यायक है। सहृदयहृदयसंवेद्य वर्णनों के मध्य शास्त्रों के तलस्पर्शी साता महाकवि माघ ने यथासंभव शास्त्रीय सिद्धान्तों को अपने महाकाव्य शिशुपालवध में अनुस्यूत किया है। साहित्यिक समीक्षा तो अनेक विद्वानों ने की है किन्तु शिशुपालवध के समग्र शास्त्रीय सन्दर्भों पर डॉ॰ बालकृष्ण त्रिपाठी ने यह ग्रन्थ लिखा है, जो महाकवि माघ के शास्त्रीय प्रतिभा ज्ञान का उन्मीलन करेगा। सात अध्यायों में विभक्त इस ग्रन्थ में महाकवि माघ का विस्तृत परिचय देने के अनन्तर क्रमश: वेदाङ्ग, धर्मशास्त्र, भारतीयदर्शन, काव्यशास्त्र, राजशास्त्र, गजशास्त्र, संङ्गीतशास्त्र, आयुर्वेद, कामशास्त्र प्रभृतिशास्त्रों के सन्दर्भ में माघ के दृष्टिकोण के सोदाहरण आरेखित किया गया है। अन्तिम अध्याय में माघ के सन्दर्भ में प्रचलित अभ्युक्तियों यथा–'माघे सन्ति त्रयोगुणा:।' 'तावद्भाभारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदय:।' 'नव सर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते।' 'मेघे माघे गतं वय:' 'घण्टा-माघ:।' 'मुरारिपदचिन्ताचेत् तदा माघे रतिं कुरु।' 'काव्येषु माघ:।' की निबन्धात्मक व्याख्या की गई है। इसी अध्याय में माघ के महाकाव्य में प्रदत्त उदात्त सन्देशों को आकलित किया गया है।

शास्त्रीय सन्दर्भों की अन्विति के लिए सम्बद्ध शास्त्रीय सिद्धान्तों को मूलत: उद्धृत कर उनके आलोक में माघ के शास्त्रीय सन्दर्भों का उल्लेख करते हुए इनकी शास्त्रीय दृष्टि उन्मीलित की गई है। विविध शास्त्रों के सिद्धान्तों का सहज अवबोध और शिशुपालवध के तत्सम्बद्ध स्थल की व्याख्या में डॉ॰ त्रिपाठी को आशातीत सफलता मिली है। इसके लिए ये बधाई के पात्र हैं।

आचार्य राजशेखर ने वाङ्मय का शास्त्र और काव्य दो रूपों में विभाजन कर इस दृष्टि से कवियों के तीन भेद किए हैं–शास्त्रकवि, काव्यकवि और उभयकवि। जो कवि शास्त्रीय तत्त्वों या सिद्धान्तों को अपनी रचना में प्रधानता

के साथ विन्यस्त करता है, वह शास्त्र कवि कहा जाता है। जो कवि अपने काव्य में वैशिष्ट्य उत्पन्न करने के लिए विशेषरूप से उसे अपनी कल्पना से विन्यस्त कर सहृदयहृदयसंवेद्य बनाता है, वह काव्यकवि होता है। जो कवि कल्पना पूर्ण विन्यास के साथ अपनी रचना में शास्त्रों के विशिष्ट सिद्धान्तों को वस्तु से सम्पृक्त कर प्रस्तुत करता है वह उभयकवि कहा जाता है। इस दृष्टि से महाकवि माघ उभयकवि की श्रेणी में आते हैं। शास्त्रकवि की रचना से शास्त्रीय सन्दर्भों का संकलन सुगम होता है, किन्तु उभयकवि की रचना में समरस शास्त्रीय सिद्धान्तों का अन्वेषण एक जटिल कार्य है। वह इस ग्रन्थ में सम्पन्न किया गया है। माघ के दिनचर्यावर्णन में उनकी व्युत्पन्नता स्वभावत: आरेखित हो उठी है। काव्यकार और राजनीतिज्ञ की रात्रि के पिछले प्रहर की अवस्थिति वर्णन करते हुए वे लिखते हैं–

'क्षणशयिताविबुद्धाः कल्पयन्तः प्रयोगा-
नुदधिमहति राज्ये काव्यवद्दुर्विगाहे।
गहनमपररात्रप्राप्तबुद्धिप्रसादाः
कवय इव महीपश्चिन्तयन्त्यर्थ जातम्॥' (११/६)

[जिस प्रकार कविगण रात्रि के पिछले प्रहर में जागकर समुद्र के समान गम्भीर तथा दुर्विगाह काव्यरचना में संलग्न हो जाते हैं और उत्तम अर्थ और उत्तम शब्द के प्रयोग पर विचार कर वाच्य, लक्ष्य और व्यङ्ग्य इत्यादि अर्थों की कल्पना करते हैं, उसी प्रकार राजा लोग भी रजनी के पिछले प्रहर में जागकर शोभन राज्य की कल्पनायें संलग्न होकर साम, दाम, दण्ड आदि के उपायों पर विचार करते हुए धर्म, अर्थ और काम का चिन्तन करते हैं।]

महाकवि माघ का शास्त्राभ्यास इतना गहरा है कि उपमानों में वे स्वाभाविक रूप से शास्त्रीय तथ्यों का उपयोग करते हैं। राजनीति और काव्यशास्त्र का उपमान उपमेय कितना स्वाभाविक और मनोहारी है–

'तेजः क्षमा वा नैकान्तं कालज्ञस्य महीपतेः।
नैकमोजः प्रसादो वा रसभावविदः कवेः॥' (२/८३)

'नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे।
शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते॥' (२/८६)

'स्थायिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावाः सञ्चारिणो यथा।
रसस्यैकस्य भूयांसस्तथा नेतुर्महीभृतः॥' (२/८७)

व्याकरण और राजनीति दोनों माघ के लिए हस्तामलक हैं वे लिखते हैं–

'अनुत्सूत्र पदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना।
शब्द विधेव नो भाति राजनीतिरपस्पृशा॥' (२/११२)

राजा और व्याकरण की परिभाषा की समानता अवलोकनीय है–

'परितः प्रमिताक्षराऽपि सर्वे
विषयं व्याप्तवती गता प्रतिष्ठाम्।
न खलु प्रतिहन्यते कुतश्चित्
परिभाषेन गरीयसी यदाज्ञा॥' (१९/८०)

श्री कृष्ण के कथन में माघ की भाषाप्रयोग की निपुणता व्यङ्ग्य रूप में व्यक्त हो रही है–

संक्षिप्तस्याप्यतोऽस्यैव वाक्यार्थस्य गरीयसः।
सु विस्तरतरा वाचो भाष्यभूता भवन्तु मे॥ (२/२४)

'माघ के दार्शनिक सन्दर्भ भी महत्त्वपूर्ण हैं। यथा–

उदासितारं निगृहीतमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कथञ्चम।
वहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः॥' (१/३३)

इसी प्रकार महाकवि माघ अन्य शास्त्रों के सिद्धान्तों को कभी उपमान के रूप में कभी पात्रों के वार्तालाप या उनके स्वरूप के आकलन में प्रस्तुत करते हैं। इस ग्रन्थ में शिशुपाल में उपलब्ध प्रायः सभी शास्त्रीय सन्दर्भ चर्चित हुए हैं। शिशुपाल संस्कृत की उच्चकक्षा की परीक्षाओं में पाठ्यक्रम में निर्धारित रहा करता है तथा सहृदय जन इस काव्य का स्वाध्याय करते हैं। इस शोध प्रबन्ध के प्रकाशन से काव्य और शास्त्र में रूचि रखने वाले अध्येताओं का उपकार होगा। मुझे विश्वास है कि संस्कृत जगत् में इस ग्रन्थ का अत्यन्त स्वागत होगा।

प्रो॰ रहस विहारी द्विवेदी
संस्कृत पालि प्राकृत विभाग
रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय
जबलपुर (म॰प्र॰)

प्राक्कथन

संस्कृत महाकवियों में माघ का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संस्कृत के प्रसिद्ध पञ्चमहाकाव्यों (कुमारसंभव, रघुवंश, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध तथा नैषधीयचरित) का अध्ययन और मनन प्राथमिकता के साथ किया जाता रहा है। इसमें भी भारवि के किरातार्जुनीय, माघ के शिशुपालवध तथा श्रीहर्ष के नैषधीयचरित को महाकाव्यों की वृहत्त्रयी कहा जाता है। महाकवि माघ की एकमात्र उपलब्ध रचना शिशुपालवध है। प्रतिभाप्रसूत भावसंप्रेषण, शास्त्राद्यवेक्षणजन्य व्युत्पत्ति और स्वानुभूति-संवलित लोकोपकारी सूक्तियों का अद्भुत समन्वय माघ के शिशुपालवध में उपलब्ध है। आचार्य राजशेखर ने शास्त्रकवि, काव्यकवि और उभयकवि के रूप में कवियों का त्रिधा विभाजन किया है। इसमें उभयकवि को श्रेष्ठ बताने वाले श्यामदेव के मत का खण्डन करते हुए उन्होंने अपने-अपने क्षेत्र में तीनों को श्रेष्ठ स्वीकार किया है तथा काव्य और शास्त्र के उपकार्योपकारकभाव की अभिस्वीकृति दी है।

'उपकार्योपकारकभावं तु मिथः शास्त्रकाव्यकव्योरनुमन्यामहे। यच्छास्त्र-संस्कारः काव्यमनुगृह्णाति। काव्यसंस्कारोऽपि शास्त्रवाक्यपाकमनुरुणद्धि काव्यैक प्रवणतया तु विरुणद्धि।' इस प्रकार कवि के शास्त्रीय ज्ञान की काव्यात्मक अभिव्यक्तियों में समरसता राजशेखर को मान्य है। इसके श्रेष्ठ निदर्शन महाकवि माघ हैं। रसभावादि के सम्यक् सन्निवेश के साथ शास्त्रों को काव्य में अनुस्यूत करने में माघ पटु हैं। निश्चित ही शास्त्रों की अभिव्यक्ति में माघ राजशेखर के कथन को चरितार्थ करते हैं। शास्त्रों के निर्देश के अनन्तर राजशेखर ने शास्त्रकवि का निरूपण इस प्रकार किया है-

'भवति प्रथयन्नर्थं लीनं समभिलुप्तं स्फुटीकुर्वन्।
अल्पमनल्पं रचयन्ननल्पमल्पं च शास्त्रकविः॥'

राजशेखर की दृष्टि से माघ को उभयकवि की श्रेणी में रखा जा सकता है। इनमें शास्त्रकवि और काव्यकवि का समवाय दिखाई देता है।

महाकवि माघ में कालिदास का भावतारल्य, भारवि का काव्यनैपुण्य,

भट्टि का वैयाकरणत्व तथा श्रीहर्ष का पदलालित्य और शास्त्रीय पाण्डित्य एक साथ दिखाई देता है। माघ की कृति का साहित्यिक और शास्त्रीयपाण्डित्य एक साथ दिखाई देता है। माघ की कृति का साहित्यिक मूल्याङ्कन शोधप्रबन्धों और निबन्धों में बहुधा उपलब्ध है। इनके शास्त्रीय ज्ञान की प्रशंसा प्रायः समीक्षकों ने की है किन्तु स्वतन्त्ररूप से इसका विशद विवेचन नहीं किया गया है। शिशुपालवध की कथावस्तु में सम्पृक्त शास्त्रीय सन्दर्भों की शास्त्रप्रतिपादित तत्त्वों के आलोक में विवेचना करना प्रस्तुत पुस्तक का प्रयोजन है। इस दिशा में मेरा विनम्र प्रयास इस प्रकार विन्यस्त है-

प्रथम अध्याय में–महाकवि माघ का जीवन-परिचय तथा शिशुपालवध का वैशिष्ट्य और व्युत्पत्तिपरकता पर विचार किया गया है। द्वितीय अध्याय में–व्याकरण, निरुक्त, शिक्षा, कल्प, ज्योतिष और छन्द नामक वेदाङ्गों के तत्त्वों का विवेचन किया गया है। तृतीय अध्याय में–धर्म के तत्त्वों में–धर्म का अर्थ, धर्म का स्वरूप, माघ की ईश्वरविषयक आस्था और वर्णाश्रम धर्म में–वर्ण और आश्रम का विस्तृत निरूपण एवं समाजधर्म पर प्रकाश डाला गया है। चतुर्थ अध्याय में–सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त, बौद्ध एवं जैन दर्शनों के तत्त्वों की समीक्षा की गई है। पञ्चम अध्याय में–काव्यशास्त्रीय तत्त्वों के निरूपण में–काव्यहेतु, काव्यप्रयोजन, काव्यलक्षण, रचनाप्रक्रिया, अलङ्कार और अलङ्कार्य, शब्दार्थ एवं शब्दशक्तियों तथा नाट्यशास्त्र का विवेचन किया गया है। षष्ठ अध्याय में–शिशुपालवध में उपलब्ध गजशास्त्र, अश्वशास्त्र, सङ्गीतशास्त्र, आयुर्वेदशास्त्र और कामशास्त्र पर प्रकाश डाला गया है। सप्तम अध्याय में–माघ के मूल्याङ्कन में प्रचलित उक्तियों की समीक्षा तथा उदात्तसंदेश का निरूपण किया गया है। उक्तियों के अन्तर्गत 'माघे सन्ति त्रयो गुणाः, 'तावद्भाभारवेर्भातियावन्माघस्य नोदयः। उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः'। 'नव सर्ग गते माघः नव शब्दो न विद्यते', मेघे माघे गतं वयः', 'काव्येषु माघः', 'मुरारिपदचिन्ताचेद्तदामाघेरतिंकुरु' और 'घण्टा माघः' तथा उनके उदात्त संदेशों पर प्रकाश डाला गया है। अन्त में उपसंहार किया गया है।

अन्त में कृतज्ञता ज्ञापन की औपचारिकता पूरा करना स्वकर्त्तव्य समझता हूँ। प्रस्तुत पुस्तक की योजना के मस्तिष्क में आने से लेकर टङ्कण कार्य तक जिन-जिन व्यक्तियों ने इस कार्य में किसी भी रूप में सहयोग प्रदान किया है। मैं उन सभी के प्रति अपनी कृतज्ञता क्रमशः इस प्रकार व्यक्त कर रहा हूँ-

सर्वप्रथम मैं अपने पूज्य पिता श्री रामनरेश त्रिपाठी एवं स्वर्गीय माता

श्रीमती रामकलीदेवी के चरणों में शतशः प्रणाम निवेदित करता हूँ, जो कि मेरी साहित्यिक अभिरुचि के मूल प्रेरणा स्रोत हैं। उच्च शिक्षा प्राप्ति में परम सहायक परमादरणीय अग्रज श्री बी०पी० त्रिपाठी (उपनिरीक्षक) का मैं अतिशय कृतज्ञ हूँ, जिनका स्नेहिल सौहार्द विषम परिस्थितियों में भी मुझे संबल प्रदान करता रहा। परमादरणीया पूज्य भाभी श्रीमती शन्नो त्रिपाठी का मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ, जिनकी सहयोगभावना मेरे समग्र अध्ययन में सहायक रही। अध्यात्मिक चिन्तन एवं संस्कृत के नैष्ठिक आचार्य पूज्य चाचा श्री रामचन्द्र त्रिपाठी का मैं विशेष आभारी हूँ, जिनका मार्ग दर्शन मुझे समय-समय पर मिलता रहा। इस अवसर पर श्रद्धेय अग्रज श्री ताराचन्द्र त्रिपाठी, श्री रामकृष्ण त्रिपाठी, श्री विद्याकान्त त्रिपाठी एवं पूज्य चाचा श्री काशीनरेश त्रिपाठी और श्री शिवनरेश त्रिपाठी तथा घर के सभी पूज्य जनों के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

अब मैं पुस्तक के निर्देशक परमादरणीय डॉ० श्री रहसविहारी द्विवेदी आचार्य एवं अध्यक्ष संस्कृत पालि एवं प्राकृत विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर के प्रति अपने कृतज्ञताभरित हृदयोद्गार प्रकट करना चाहता हूँ, जिनकी निरन्तर प्रेरणा, स्नेहमय मङ्गलकामना एवं वैदुष्यपूर्ण मार्ग-दर्शन से इस पुस्तक का प्रणयन हो सका।

तत्पश्चात् डॉ० कमलनयन शुक्ल का मैं हृदय से आभारी हूँ, जिनका अनुजवत् स्नेह मुझे हमेशा मिलता रहा, साथ ही डॉ० टी०एन० शुक्ल एवं डॉ० डी०एन० शुक्ल के प्रति भी कृतज्ञ हूँ, जिनका सम्बल स्नेह मुझे मिलता रहा।

इसके अनन्तर में विभाग के आचार्य डॉ० कृष्णकान्त चतुर्वेदी, डॉ० सुदर्शन त्रिपाठी, डॉ० राजेन्द्र त्रिवेदी, डॉ० मोतीलाल पुरोहित, डॉ० विष्णुमित्र त्रिपाठी, डॉ० राधिका प्रसाद मिश्र तथा विभागीय कर्मचारियों एवं सहकर्मियों का हृदय से आभारी हूँ।

आदरणीय भाई श्री सुरेन्द्र बहादुर सिंह चौहान थाना-प्रभारी-बरगी, जबलपुर के प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ, जिनके साधुतापूर्ण व्यक्तित्व से मुझे जो कुछ सीखने को मिला, वह अनिर्वचनीय है।

दिनाङ्क रक्षाबन्धन सं० २०५८
४-८-२००१
स्थान-जबलपुर

बालकृष्ण त्रिपाठी
संस्कृत पालि एवं प्राकृत विभाग,
रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर। (म०प्र०)

संकेत-सूची

क०वं०वर्ण०	:	कवि वंश वर्णन
प्र०च०	:	प्रभाचन्द्र
शिशु०	:	शिशुपालवध
पा०शि०	:	पाणिनीय शिक्षा
तै०उ०	:	तैत्तिरीय उपनिषद्
शिशु०वध	:	शिशुपालवध
शिशु०व०	:	शिशुपालवध
का०अ०	:	काव्यालङ्कार
र०वं०	:	रघुवंश
सां०का०	:	सांख्यकारिका
ध्वन्यालो०	:	ध्वन्यालोक
उ०रा०च०	:	उत्तररामचरित
का०ल०का०	:	काव्यालङ्कारकारिका
अ०पु०	:	अग्निपुराण
ध्व०	:	ध्वन्यालोक
का०सू०वृ०	:	काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति
का०प्र०	:	काव्यप्रकाश
रस०	:	रसगङ्गाधर
किरा०	:	किरातार्जुनीय
नैष०	:	नैषधीयचरित
रघु०	:	रघुवंश
शिशु०क०प०	:	शिशुपालवध कविवंश परिचय
मनु०	:	मनुस्मृति
याज्ञ०	:	याज्ञवल्क्यस्मृति
ऋग्वे०	:	ऋग्वेद

यजु०	:	यजुर्वेद
गी०	:	गीता
शुक्र०	:	शुक्रनीति
शिव०	:	शिवपुराण
वायु०	:	वायुपुराण
महा०शा०	:	महाभारत शान्तिपर्व
स्मृ०	:	स्मृति
पद्म पु०	:	पद्मपुराण
सां०का०टी०	:	सांख्यकारिका टीका
श्रीम०गी०	:	श्रीमद्भगवद्गीता
यो०सू०	:	योगसूत्र
वेदा०सा०	:	वेदान्तसार
महा०शा०प०	:	महाभारत शान्तिपर्व
महा०स०प०	:	महाभारत सभापर्व
भा०द०	:	भारतीय-दर्शन

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

भूमिका

संस्कृतसाहित्य में माघ की गणना प्रथम श्रेणी के कवियों में की जाती है। महाकवि माघ की एकमात्र रचना 'शिशुपालवध' महाकाव्य है। इसीलिए माघ अथवा माघकाव्य इसके पर्यायरूप में प्रचलित हैं। 'काव्येषु माघ:', 'मेघे माघे गतं वय:' प्रभृति सहृदयोक्तियाँ इस काव्य की श्रेष्ठता का उद्घोष कर रही हैं। सहृदयहृदयसंवेद्य आह्लादक वर्णनों के कारण संस्कृत-जगत् में यह काव्य अत्यन्त प्रतिष्ठित है। अपनी सरस काव्यरचना में महाकवि माघ ने यथा अवसर अपनी व्युत्पत्ति को अनुस्यूत किया है। व्युत्पत्ति शब्द यहाँ मात्र शाब्दिक व्युत्पत्ति का अवबोधक न होकर काव्यशास्त्रियों द्वारा काव्यहेतु की चर्चा में काव्य के उपादान के रूप में स्वीकृत व्युत्पत्ति (निपुणता) का वाचक है। प्रथमत: आचार्य भामह ने प्रतिभा, व्युत्पत्ति, तद्विदुपासन और अन्यनिबन्धावलोकन का उल्लेख काव्यहेतुओं के प्रसङ्ग में किया था। परवर्ती आचार्यो ने शक्ति, निपुणता (व्युत्पत्ति) और अभ्यास के रूप में इसकी चर्चा की। ये हेतु इतने संश्लिष्ट हैं कि इन्हें पृथक् नहीं देखा जा सकता, तथापि सूक्ष्म दृष्टि से काव्यनिर्मित में इन तत्त्वों के पृथक् महत्त्व का आकलन करना हो तो प्रतिभा को आह्लाद से, व्युत्पत्ति को काव्य में रूपायित शब्दार्थगुम्फन तथा लोकशास्त्रादि से और अभ्यास को रचनाशिल्प से जोड़ा जा सकता है।

वाल्मीकि और कालिदास आदि कवियों की रचनाओं में अनायास आगत व्युत्पत्ति को देखकर काव्यहेतुओं में काव्यशास्त्रियों ने इसका उल्लेख किया होगा किन्तु माघ के काव्यनिर्माण के पूर्व तक काव्यतत्त्वों में इनका विधिवत् उल्लेख कर दिया गया था। महाकाव्य का स्वरूप भी निर्धारित हो चुका था। इस विधा में कुछ वर्णनीय विषयों का भी उल्लेख आचार्यों ने किया। परिणामत: महाकाव्य जैसी विधा में व्युत्पत्ति-प्रदर्शन की प्रवृत्ति बढ़ती गई। महाकाव्य में रससन्निवेश के साथ भारवि से बढ़कर माघ और माघ से बढ़कर श्रीहर्ष ने व्युत्पत्ति का प्रदर्शन किया। इसीलिए कहा जाता है:-

'तावद्भाभारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः।
उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः॥'

बृहत्त्रयी में माघकाव्य मध्यमणि के रूप में प्रतिष्ठित है। महाकाव्यों में व्युत्पत्ति और कलात्मकता को पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा भारवि ने अधिक विकसित किया। माघ ने उसे आगे बढ़ाया और श्रीहर्ष ने उसे चरम सीमा पर पहुँचा दिया। परिणामतः नैषध के बाद कोई भी महाकाव्य इन काव्यों की तरह विद्वज्जनों में प्रतिष्ठा न प्राप्त कर सका।

मेरी जानकारी के अनुसार माघ के शिशुपालवध महाकाव्य का साहित्यिक मूल्याङ्कन तो किया गया है किन्तु स्वतंत्र रूप से उसकी व्युत्पत्तिपरकता का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन नहीं किया गया है। महाकवि माघ की इस कृति का आह्लादक-तत्त्वों के साथ इसमें सङ्केतित शास्त्रीय, पौराणिक, व्यावहारिक, सामाजिक, धार्मिक और राष्ट्रीय महत्त्व के तथ्यों का अनुशीलन कवि की अवधारणाओं के अनुसार किया गया है। शिशुपालवध के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि माघ ने उस समय जो कुछ देखा, सुना उन सबको काव्य में वर्णित कर दिया है। प्रस्तुत पुस्तक इस दिशा में किया जाने वाला प्रथम विनम्र प्रयास है।

(क) महाकवि माघ का जीवन-परिचय

शिशुपालवध के अन्त में कविवंश-परिचय के रूप में वर्णित पद्यों के आधार पर उनके पारिवारिक स्थिति पर प्रकाश डाला जा सकता है। वर्णित पद्यों के आधार पर उनके वंश का परिचय इस प्रकार है:

'सर्वाधिकारी सुकृताधिकारः
श्रीवर्मलाख्यस्य बभूव राज्ञः।
असक्तदृष्टिर्विरजाः सदैव
देवोऽपरः सुप्रभदेवनामा॥'[१]

अर्थात् माघ के पितामह सुप्रभदेव श्रीमाल या भीनमाल के राजा वर्मलात के यहाँ मंत्री थे। भीनमाल गुजरात का एक प्रधान नगर था। बहुत दिनों तक यह राजधानी तथा विद्या का प्रमुख केन्द्र था। प्रसिद्ध ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त ने छः सौ पच्चीस (६२५) ई० के आस-पास अपने 'ब्रह्मगुप्त-सिद्धान्त' की रचना यहीं पर की थी। इन्होंने अपने को 'भीनमल्लाचार्य लिखा है। ह्वेनसाङ्ग ने भी इसकी समृद्धि का वर्णन किया है। शिशुपालवध के कुछ हस्तलिखित प्रतियों के अन्त में ऐसा उल्लिखित मिलता है–

"इति श्रीभिन्नमालवास्तव्य दत्तकसूनोर्महावैयाकरणस्य माघस्य कृतौ शिशुपालवधे महाकाव्ये........।"

ऐसा प्रतीत होता है कि भीनमाल नगर कालान्तर में श्रीमाल के नाम से अभिहित किया जाने लगा था, क्योंकि प्रभाचन्द्र ने 'प्रभावकचरित' में माघ का परिचय देते हुए उसे श्रीमाल के नाम से उल्लिखित किया है। वह पर्वतमाला भी गुजरात प्रान्त के अतिनिकट था। साथ ही सुप्रभदेव के आश्रयदाता का नाम भी वर्मलात था–

'अस्तिगुर्जरदेशोऽन्यसज्जराजन्यन्मदुर्जरः।
तत्र श्रीमालमित्यस्तिपुरं सुखामिवक्षिते॥
तत्रास्तिहास्तिकाश्वीयापहस्तितरिपुव्रजः।
नृपःश्रीवर्मलाताख्यःशत्रमर्मभिदक्षमः॥
तस्य सुप्रभदेवोऽस्ति मंत्रीमिततया किल।'[२]

सम्प्रति भीनमाल अथवा श्रीमाल नामक स्थान राजस्थान और गुजरात प्रान्त की सीमा पर स्थित है। सम्भवतः यह स्थान पहले गुजरात प्रान्त में रहा होगा। महाकवि माघ ने जिस 'रैवतक-पर्वत' का वर्णन किया है, वह पर्वतमाला भी गुजरात प्रान्त में ही है।

माघ का सर्वप्रथम उल्लेख करने वालों में से एक जैन कवि चन्द्रप्रभसूरि हैं। उन्होंने अपने 'प्रभावकचरित' (१३३४ वि०) में लिखा है–गुर्जर देश के समृद्धमान नगर श्रीमाल के राजा वर्मलात का मंत्री सुप्रभदेव था। उसके दो पुत्र दत्त (दत्तक) और शुभङ्कर हुए। दत्त का पुत्र माघ हुआ, जिसका बालमित्र विद्वान् राजा भोज था। माघ का चाचा शुभङ्कर बड़ा दानी हुआ। उसके सिद्धनायक नामक पुत्र हुआ। पहले वह बड़ा ही दुराचारी था, पर बाद में जैनधर्म में दीक्षित होकर सिद्धर्षि के नाम से विख्यात हुआ और उसने 'उपमितिभवप्रपञ्चकथा' की रचना की।[३]

कवि-वंश-वर्णन के अनुसार उन्हीं सुप्रभदेव के दत्तक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो उदार, क्षमाशील, कोमलप्रकृति तथा धर्मनिष्ठ था। उसे देखकर लोग युधिष्ठिर के गुणों का बखान करने में वेदव्यास की बातों पर विश्वास करते थे। जैसा कि कहा गया है–

'तस्याभवद्दत्तक इत्युदात्तः
क्षमी मृदुर्धर्मपरस्तनूजः।
यं वीक्ष्य वैयासमजातशत्रो-
र्वचो गुणग्राहि जनैः प्रतीये॥'[४]

तात्पर्य यह है कि महाभारत में वेदव्यास ने अजातशत्रु युधिष्ठिर के गुणों का जो वर्णन किया है, वे सबके सब दत्तक में पाये जाते थे। इतना ही नहीं दत्तक को ही देखकर लोगों को यह विश्वास होता था कि इतने सारे गुण मनुष्य में सम्भव हो सकते हैं।

उन्हीं पुण्यशील दत्तक के पुत्र माघ ने अच्छे कवियों की दुर्लभ कीर्ति पाने की समीहा से केवल भगवान् श्रीकृष्ण के पावन चरित्र की चर्चा से पवित्र शिशुपालवध नामक महाकाव्य का प्रणयन किया है; जिसके प्रत्येक सर्ग की समाप्ति में 'श्री' शब्द का प्रयोग किया है, यही इस काव्य का मनोहर चिह्न है। यथा–

'श्रीशव्दरम्यकृतसर्गसमाप्तिलक्ष्म
लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारु।
तस्यात्मजः सुकविकीर्तिदुराशयादः
काव्यं व्यधत्त शिशुपालवधाभिधानम्।।'[५]

इस प्रकार कविवंश परिचय के आधार पर सुप्रभदेव के पुत्र दत्तक और दत्तक के पुत्र माघ थे।

प्रभावकचरित में माघ के पितृव्य शुभङ्कर को 'श्रेष्ठी' लिखा गया है। उस समय 'श्रेष्ठी' शब्द से जैनियों और वैश्यों दोनों का बोध होता था। जैन मतावलम्बी न होने पर भी वैश्यों के लिए श्रेष्ठी शब्द का व्यवहार किया जा सकता था। शुभङ्कर के पुत्र सिद्ध ने अपनी 'उपमितिभवप्रपञ्चकथा' में जैनेश्वर की वन्दना की है, जिससे प्रतीत होता है कि माघ के पितृव्य शुभङ्कर तथा उसके भाई सिद्धर्षि जैन रहे होंगे लेकिन शिशु० ४/३७/,११/४१,१३/१८,१४/२२,२३, ३६ और ३८ के आधार पर माघ का ब्राह्मणत्व सिद्ध होता है। वस्तुस्थिति जो भी हो, इतना तो स्पष्ट है कि माघ उच्च कुल के थे।

माघ का जीवन सामन्तीय सम्पन्नता तथा अटूट ऐश्वर्य के बीच बीता था। शिशुपालवध के निम्नलिखित श्लोक के आधार पर उनके विवाहित होने का अनुमान लगाया जा सकता है–

'रथाङ्गभर्त्रेऽभिनवं वराय
यस्याः पितेव प्रतिपादितायाः।
प्रेम्णोपकण्ठं मुहुरङ्कभाजो
रत्नावलीरम्बुधिराबबन्ध।।'[६]

प्रौढ़ावस्था में कदाचित् उनके एक कन्या होने का सङ्केत, शिशुपालवध के निम्नलिखित पद्य में अचिरजाता पुत्री के रूप में ढूँढ़ा जा सकता है–

'अरुणजलजराजीमुग्धहस्ताग्रपादा
बहुलमधुपमालाकज्जलेन्दीवराक्षी।
अनुपतति विरावैः पत्रिणां व्याहरन्ती
रजनिमचिरजाता पूर्वसंध्या सुतेव॥'[७]

महाकवि माघ के निम्नलिखित पद्य के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वचपन में उन्हें माता का प्रचुर मात्रा में स्नेह मिला था–

'उदयशिखरिशृङ्गप्राङ्गणेष्वेष रिङ्गन्
सकमलमुखहासं विक्षितः पद्मिनीभिः।
विततमृदुकराग्रः शब्दयन्त्या वयोभिः
परिपतति दिवोऽङ्के हेलया बालसूर्यः॥'[८]

जीवन के अन्तिम दिनों में माघ को सम्भवतः आर्थिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा था। शिशुपालवध के निम्नलिखित पद्य में इस बात का सङ्केत मिलता है–

'उत्तुङ्गादनिलचलांशुकास्तटान्ता-
च्चेतोभिः सह भयदर्शिनां प्रियाणाम्।
श्रोणीभिर्गुरुभिरतूर्णमुत्पतन्त्य-
स्तोयेषु द्रुततरमङ्गना निपेतुः॥'[९]

यद्यपि इसकी पुष्टि जनश्रुतियों में प्रचलित माघ सम्बन्धी गाथाओं से भी हो जाती है।

शिशुपालवध के चतुर्थ सर्ग का अध्ययन करने के बाद ऐसा लगता है जैसे महाकवि माघ ने कुछ समय अवश्य ही रैवतक पर्वत की उपत्यका में विताया होगा। जिस प्रकार महाकवि कालिदास उज्जयिनी के प्रति अनुरक्त हैं, उसी प्रकार माघ रैवतक के प्रति आकर्षित दिखाई देते हैं। रैवतक के वर्णन का एक पद्य अवलोकनीय है–

'दृष्टोऽपि शैलः स मुहुर्मुरारे-
रपूर्ववद्विस्मयमाततान।
क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति
तदेव रूपं रमणीयतायाः॥'[१०]

अर्थात् बारम्बार देखा हुआ भी वह रैवतक गिरि पहले कभी न देखे हुए के समान भगवान् श्रीकृष्ण के विस्मय को बढ़ा रहा था। यहाँ तक कि रैवतक पर्वत के वर्णन में कवि ने पूरा सर्ग का सर्ग लिख डाला है। कृष्ण को अतिथि बनाकर रैवतक द्वारा उनका जो स्वागत कराते हैं, इससे प्रतीत होता है कि अपने प्रिय स्थल पर अपने आराध्य का स्वागत कर अपने को धन्य मान रहे हैं।

साथ ही शिशुपालवध के छठें तथा बारहवें सर्ग की स्वाभावोक्ति से स्पष्ट है कि माघ का निवास स्थान पर्वतों तथा समुद्र के पास था, जहाँ धान की खेती होती थी और नारियल तथा खैर के वृक्ष थे। आस-पास सघन जङ्गल भी था। पश्चिमी समुद्र का माघ ने बार-बार अवलोकन किया होगा। शिशुपालवध के निम्नलिखित श्लोक की कल्पना का आधार काठियावाड़ के आस-पास की कोई खाड़ी जान पड़ती है-

'पारेजलं नीरनिधेरपश्यन्-
मुरारिरानीलपलाशराशीः।
वनावलीरुत्कलिकासहस्र-
प्रतिक्षणोत्कूलितशैवलाभाः॥'[११]

शिशुपालवध के तृतीय सर्ग से लेकर त्रयोदश सर्ग तक में महाकवि माघ ने भगवान् श्रीकृष्ण के अतुल वैभव, वन-विहार, जलक्रीड़ा, मधुपान और प्राकृतिक छटा आदि का जो वर्णन किया है, उससे उनकी प्रवृत्ति का पूरा परिचय मिलता है।

निम्नलिखित श्लोक में माघ की दिनचर्या का सङ्केत मिलता है। यह दिनचर्या निःसन्देह किसी भी व्यक्ति को यशस्वी विद्वान् बना सकती है। यथा-

'क्षणशयितविबुद्धाः कल्पयन्तः प्रयोगा
नुदधिमहति राज्ये काव्यवद्दुर्विगाहे।
गहनमपररात्रप्राप्तबुद्धिप्रसादाः
कवय इव महीपाश्चिन्तयन्त्यर्थजातम्॥'[१२]

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार से कवि लोग रात्रि के पिछले प्रहर में जागकर समुद्र के समान गंभीर तथा दुर्विगाह काव्य-रचना की चिन्ता में लग जाते हैं और उत्तम अर्थ एवं उत्तम शब्द के प्रयोग पर विचार कर वाच्य, लक्ष्य और व्यङ्ग्य इत्यादि अर्थों की चिन्ता करते हैं, उसी प्रकार राजा लोग भी रजनी के पिछले प्रहर में जागकर राज्य की चिन्ता में लगकर साम, दामादि उपायों पर विचार करते हुए धर्म, अर्थ एवं काम की चिन्ता कर रहे हैं।

निम्नलिखित श्लोक के आधार पर उनकी दानशीलता का परिचय प्राप्त होता है–

'कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजषण्डं
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः।
उदयमहिम रश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः॥'[१३]

इस श्लोक के आधार पर माघ और भोज आदि कवि की दानशीलता की एक कहानी भोजप्रबन्ध में लिखी होने के कारण कुछ लोग माघ को भोज का बालसरवा मानते हैं। बालसरवा होने के नाते एक बार माघ ने भोज का अपने घर में बहुत बड़ा सत्कार किया था। भोजप्रबन्ध के अनुसार एक बार इन्होंने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति दान कर दी थी, जिससे ये निर्धन हो गये। इसके पश्चात् वे अपने मित्र भोज के पास आश्रय के लिये आये। 'भोजप्रबन्ध' में लिखा है कि इनकी पत्नी राजा के पास 'कुमुदवनमपश्रि–श्रीमदम्भोजषण्डम्' आदि पद्य जो माघ के प्रभातवर्णन में मिलता है, ले गई। इस पद्य पर राजा ने प्रभूत धन दिया। उस धन को माघ की पत्नी ने रास्ते में दरिद्रों में बाँट दिया। अनन्तर माघ के पास पहुँचने पर उनके पास एक फूटी-कौड़ी भी शेष न रही लेकिन माँगने वालों का ताँता लगा रहा। कोई उपाय न देखकर माघ ने प्राण त्याग दिया। प्रातःकाल भोज ने माघ का यथोचित संस्कार किया। माघ की पत्नी भी उनके साथ ही चिता में जलकर सती हो गई।

इस प्रकार माघ के जीवन की यह घटना परम्परानुसार ज्ञात होती है। इसमें वास्तविकता कहाँ तक और क्या है? यह एक विचारणीय प्रश्न है। हाँलाकि भोज और माघ के समय में शताब्दियों का अन्तर है। हो सकता है माघ नामधारी कोई अन्य कवि उनके समय में रहा हो, जिसका यह वर्णन हो। प्रचलन के कारण यहाँ इस प्रसङ्ग को प्रस्तुत किया गया है, किन्तु इतना तो निःसन्देह कहा जा सकता है कि माघ एक बहुत ही प्रतिष्ठित और ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे। शिशुपालवध के आधार पर यह कल्पना की जा सकती है कि माघ का निवासस्थान राजप्रासाद की भाँति सुसज्जित रहा होगा। सभी ऋतुओं में फलने-फूलने वाले वृक्षों, लताओं से समन्वित एक वाटिका रही होगी। कवि के पास राजसी वाहन होने के साथ ही क्रीड़ागृह में आमोद-प्रमोद करने वाले सुन्दर पंछी भी रहे होंगे।

शिशुपालवध के अध्ययन से यह अनुमित होता है कि माघ की जीवनचर्या बहुत ही संयत और नियमबद्ध रही होगी। प्रातः ब्राह्ममूहुर्त में उठकर काव्यरचना करते रहे होंगे। सूर्योदय में स्नान, संध्यापूजन तदनन्तर शास्त्राभ्यास, मध्याह्न में भोजन फिर शयन, तीसरे प्रहर काव्यगोष्ठी और चौथे प्रहर अपनी रचनाओं का परिमार्जन कर सन्ध्यापूजन के पश्चात् भोजन और फिर अन्तःपुर में विनोद, घरेलू-व्यवस्था कर-कराकर सो जाते रहे होंगे।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि माघ का निवासस्थान भीनमाल अथवा श्रीमाल है, जो गुजरात की प्रथम राजधानी थी। जैक्सन महोदय के 'मोनोग्राफ आन भीनमाल' के अनुसार जो बम्बई गजेटियर पुस्तक प्रथम के परिशिष्ट के रूप में प्रकाशित हुआ है। भीनमाल उस युग में अत्यन्त ही वैभवशाली और समृद्ध नगर था। वह चारों दिशाओं में कई मील के घेरों में फैला हुआ था। जैक्सन के अनुसार भीनमाल की जीर्णशीर्ण बिखरी ईटों से यह प्रमाणित हो जाता है कि इस स्थान पर एक विशाल विद्यालय रहा होगा। श्रीमालपुराण के अनुसार इस नगर में एक हजार ब्रह्मपाठशालाएँ थीं और चार सौ मठ थे, जिनमें साङ्गोपाङ्ग विद्याएँ पढ़ाई जाती थीं। यह नगर शिक्षा, पाण्डित्य और संस्कृति का सङ्गमस्थल था। ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त के रचयिता ज्योतिषी भिन्नमालाचार्य ब्रह्मगुप्त ने अपनी पुस्तक को यहीं पर ६२९ ई० में समाप्त किया था। जैन विद्या का भी यह प्रधानस्थान था। सिद्धर्षि की 'उपमितिभवप्रपञ्चकथा' भीनमाल में ही ९०३ ई० में समाप्त हुई। जैन-दर्शन के अनेक प्राख्यात ग्रन्थों के रचयिता, मनीषी विद्वान् हरिभद्रसूरि की साहित्यिक गतिविधियों का यही प्रमुख केन्द्र था। प्राकृत में विरचित 'कुवलयमालाकहा' भी भीनमाल में समाप्त हुई। 'श्रीमालपुराण' के अनुसार जैन-धर्म का यहाँ बोलबाला था, पर ब्राह्मण-धर्म का भी सम्मान कम नहीं था। ब्राह्मणों का किसी समय अत्यधिक प्रभाव इस नगर में था, अतः उन्होंने 'स्कन्दपुराण' में 'श्रीमालमाहात्म्य' को भी जोड़ दिया।[१८] माघ के जीवन सन्दर्भ की यही गाथा है।

काल-निर्णय

महाकवि माघ का ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण संस्कृत-वाङ्मय का दुर्बल पक्ष यह रहा है कि उसका प्रामाणिक इतिहास आज भी अन्धकार की गुफा में छिपा है। महाकवि माघ के स्थितिकाल के सन्दर्भ में भी 'इदमित्थ' रूप में कुछ नहीं कहा जा सकता। उनकी रचना तथा कुछ अन्य साक्ष्यों के आधार पर ही उनके

स्थिति-काल के सम्बन्ध में कुछ धारणाएँ विद्वानों के द्वारा बनाई गयी हैं। माघ के काल-निर्धारण में जिन साक्ष्यों को आधार माना गया है, वे इस प्रकार हैं–

वल्लाल पण्डित द्वारा संग्रहीत 'भोजप्रबन्ध' में महाकवि माघ तथा उनकी धर्मपत्नी की दानशीलता को लेकर बहुत विस्तृत वर्णन किया गया है। 'प्रबन्धचिन्तामणि' में भी जैन मेरुतुङ्गाचार्य ने माघ कवि के पिता के परमोत्कृष्ट ऐश्वर्य का वर्णन करते हुए माघ तथा उनकी पत्नी का चरित्र-चित्रण 'भोजप्रबन्ध' के समान ही विस्तार के साथ किया है। यहाँ तक कि 'भोजप्रबन्ध' के कतिपय श्लोकों का यथावत् रूप 'प्रबन्धचिन्तामणि' में प्राप्त होता है, जिसकी रचना सम्वत् १४६१ में हुई थी। श्रीप्रभाचन्द्र प्रणीत 'प्रभावकचरित' के चौदहवें शृङ्ग में भी महाकवि के पिता, पितामह, निवासस्थान एवं आश्रयदाता श्रीवर्मल का वर्णन आया है। 'प्रभावकचरित' का रचना-काल विक्रम संवत् १३३४ माना गया है। उपर्युक्त ग्रन्थत्रय के आधार पर माघकवि का समय अनेक विद्वानों ने ११ वीं शताब्दी स्थिर किया है, क्योंकि धारानगरी के अधिपति, विद्वदाश्रयप्रद राजा भोज का शासनकाल यही कोई १२४९ संवत् है किन्तु 'भोजप्रबन्ध', में जिसमें कालिदास के सम्बन्ध में भी बहुत से वर्णन आये हैं, वे इतिहासकारों को सर्वथा मान्य नहीं है। वास्तविक रूप से भोजप्रबन्ध की रचना भोजराजा की प्रशंसा की दृष्टि से की गई है, उसकी रचना करते समय तात्कालिक या अतात्कालिक जिस किसी विद्वान् की चर्चा उसमें कर दी गई है, उसके आधार पर माघकवि का समय ११ वीं शताब्दी मानना युक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार 'प्रबन्धचिन्तामणि' तथा 'प्रभावकचरित' भी 'भोजप्रबन्ध' की श्रेणी के ग्रन्थ हैं। अतएव उनके आधार पर भी माघकवि का समय ११वीं शताब्दी मानना सर्वथा अनुचित है।

सोमदेव ने अपने ग्रन्थ 'यशस्तिलकचम्पू' में माघ कवि का उल्लेख किया है। उनके ग्रन्थ की रचना नौ सौ उनसठ (९५९) ई० विद्वानों ने स्वीकार किया है। अत: माघ का समय नौ सौ उनसठ (९५९) के बाद का मानना उचित नहीं हो सकता।

आनन्दवर्धनाचार्य ने अपने 'ध्वन्यालोक' की 'अलङ्कारान्तरस्यापि..........।' (२/२७) कारिका की वृत्ति में महाकवि के जिन दो श्लोकों को उदाहरण रूप में उद्धृत किया है, वे क्रमश: इस प्रकार हैं–

'रम्या इति प्राप्तवतीः पताका
रागं विविक्ता इति वर्धयन्तीः।
यस्यामसेवन्त नमद्वलीकाः
समं वधूभिर्वलभीर्युवानः॥' (शिशु० ३/५३)

और–

'त्रासाकुलः परिपतन् परितो निकेतान्
पुंभिर्न कैश्चिदपि धन्विभिरन्वबन्धि।
तस्थौ तथापि न मृगः क्वचिदङ्गनाना-
माकर्णपूर्णनयनेषु हतेक्षणश्रीः॥' (शिशु० ५/२६)

आनन्दवर्धनाचार्य का समय ईशवीय नवम् शताब्दी माना गया है। अतएव माघकवि का समय उसके पूर्व मानना ही युक्तिसङ्गत है। वामनाचार्य ने 'काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति' में **'सम्भाव्यधर्मस्य सदुत्कर्षकल्पनातिशयोक्तिः।'** (४/३/१०) सूत्र के उदाहरण में माघकवि के शिशुपालवध महाकाव्य के **'उभौ यदि व्योम्नि पृथकप्रवाह......।'** (३/८) श्लोक को उद्धृत किया है। अतएव अष्टम शताब्दी के अन्त या नवम शताब्दी के आदि में स्थित वामनाचार्य के वाद माघ का समय किस प्रकार न्यायसङ्गत कहा जा सकता है?

नृपतुङ्ग आठ सौ चौदह (८१४) ने अपने अलङ्कारग्रन्थ 'कविराजमार्ग' में माघ को कालिदास के समकक्ष स्वीकार किया है। 'कविराजमार्ग' ग्रन्थ कन्नड़ी भाषा में है। इसमें दण्डी के 'काव्यादर्श' के आधार पर ही अलङ्कार निरूपण किया गया है। प्रसिद्ध दक्षिणदेशीय राजा अमोघवर्ष आठ सौ चौदह (८१४) के समय में नृपतुङ्ग नामक कवि ने इसकी रचना की थी। कन्नड़ी भाषा की प्राचीनतम पुस्तक होने के नाते भी यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।'

माघकवि ने द्वितीय सर्ग में **'अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निवन्धना।'** (२/११२) श्लोक में न्यास तथा काशिका का नाम लिया है। महाकवि बाण ने हर्षचरित में न्यास ग्रन्थ की चर्चा की है। बाण का समय छठी शताब्दी (६ठी) का प्रथम पाद माना गया है तथा काशिकावृत्ति की रचना का समय छठी शताब्दी का मध्य माना गया है। इस आधार पर भी माघ का समय सातवीं शताब्दी मानना युक्तिसङ्गत प्रतीत होता है। संस्कृत महाकाव्यों की रचना से ख्याति प्राप्त दस महाकवियों का समयानुसार नाम निर्देश करने वाले–

आदौ कालिदासः स्यादश्वघोषस्ततः परम्।
भारविश्च तथा भट्टिः कुमारश्चापि पञ्चमः॥

माघरत्नाकरौ पश्चाद्हरिश्चन्द्रस्तथैव च।
कविराजश्च श्रीहर्षः प्रख्याताः कवयोदश॥'

श्लोकद्वय के आधार पर भी कुमार तथा रत्नाकर कवि के मध्यवर्ती माघकवि का समय सप्तम शताब्दी ही सिद्ध होता है। यद्यपि 'प्रभावकचरित' में आये हुए 'उपमितिभवप्रपञ्च' नामक कथाग्रन्थ की समाप्ति में लिखे हुए ९६२ संवत् में लिखित ग्रन्थ रचनाकाल के आधार पर जर्मन इतिहासवेत्ता 'डॉ० एफ०क्लाट' ने माघकवि का समय भी वही दशवीं शताब्दी माना है, तथापि उसी देश के 'याकोवी' नामक इतिहासज्ञ ने माघकवि को सप्तम शताब्दी से परवर्ती होना नहीं स्वीकार किया है।

महाकवि माघ के काल-निर्धारण में राजपूताने के वसन्तगढ़ नामक स्थान में प्राप्त एक शिलालेख से विशेष सहायता मिलती है। यह शिलालेख डॉ० कीलहार्न को कुछ दिन पूर्व प्राप्त हुआ था। यह शिलालेख विक्रम संवत् ६८२ में लिखा गया था। अतः विक्रम संवत् ६८२ (तदनुसार ईशवीय सन् ६२५) में राजा वर्मलात ने था। निःसन्देह माघ के पितामह सुप्रभदेव इन्हीं (वर्मलात) के राज्याश्रित थे। इसका उल्लेख शिशुपालवध की हस्तलिखित प्रतियों में मिलता है, परन्तु लिपिकारों के प्रमाद से वह नाम-वर्मनाम, वर्मलात, धर्मनाम आदि भिन्न-भिन्न रूपों में लिखा मिलता है। इस प्रकार सुप्रभदेव के आश्रयदाता वर्मलात का नाम लेने पर उनका काल ६२५ ई० हुआ। इससे दो पीढ़ी आगे अर्थात् पच्चास से पचहत्तर वर्ष का समय दे देने पर उनके पौत्र महाकवि माघ का समय ईस्वीय सन् सातवीं शताब्दी का अन्तिम भाग या अधिक से अधिक आठवीं शताब्दी का आदि भाग मानना सर्वथा युक्तियुक्त है।

'वर्मलात' के वसन्तगढ़ के शिलालेख का समय विक्रम संवत् ६८२ ई० की पुष्टि निम्नलिखित पद्य से हो जाती है–

'द्विरशीत्यधिके काले षण्णां वर्षस्योत्तरे।
जगन्मातुरिदं स्थानं स्थापितं गोष्ठिपुङ्गवै॥'

इस शिलालेख की रचना के नमूने के तौर पर यह पद्य दिया जाता है–

'जयति जयलक्ष्मलक्षितवक्षः स्थलसंश्रितश्रियाधारः।
श्रीवर्मलात नृपतिः पतिरवनेरधिक वलवीर्यः॥'

कुछ विद्वान् अन्तःसाक्ष्य के रूप में महाकवि माघ के निम्नलिखित श्लोक

के आधार पर हर्ष विरचित 'नागानन्द' से परिचित मानते हैं, परन्तु ऐसा मानना भ्रान्तिपूर्ण प्रतीत होता है। यथा–

'दधतस्तनिमानमानुपूर्व्या
बभुरक्षिश्रवसो मुखे विशालाः।
भरतज्ञकविप्रणीतकाव्य-
ग्रथिताङ्का इव नाटकप्रपञ्चाः।।'[१५]

महाकवि माघ के काल-निर्धारण में सबसे बड़ी भूमिका और विवाद का निर्वाह करने वाला माघ का निम्नलिखित श्लोक है–

'अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा।।'[१६]

यद्यपि इस श्लोक में मुख्यतः वर्णन तो राजनीति के विषय में है परन्तु श्लेष के द्वारा शब्दविद्या (व्याकरण) के पक्ष में भी अर्थ लगाया जाता है। यहाँ पर वृत्ति शब्द से स्पष्टतः पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' पर वामनजयादित्य द्वारा लिखी गई काशिकावृत्ति का अभिप्राय है। मल्लिनाथ ने भी वृत्ति शब्द का अर्थ 'काशिकाख्यसूत्र व्याख्यानग्रन्थविशेषः' तथा निबन्ध का अर्थ भाष्यग्रन्थ किया है। काशिकावृत्ति की रचना ६५० ई० में हुई थी। अतः माघ का काल ६५० ई० के बाद माना जाना चाहिए। प्रायः इससे सभी विद्वान् सहमत हैं, परन्तु श्लोक में प्रयुक्त 'न्यास' शब्द के अर्थ में विद्वानों में मतभेद है। काशिकावृत्ति की टीका, जो व्याकरण जगत् में 'न्यास' के नाम से प्रसिद्ध है, जिनेन्द्रबुद्धि ने ७०० ई० के लगभग लिखी थी। यदि जिनेन्द्रबुद्धिकृत 'न्यास' से माघ को परिचित माना जाए तो उनका समय अष्टम् शताब्दी का पूर्वार्द्ध मानना पड़ेगा। एम०एस० भण्डारी इसी मत की पुष्टि करते हैं। उनके अनुसार 'न्यास' की छाया शिशुपालवध में दिखलाई पड़ती है–

'परितो व्यापृता परिभाषा।
परिभाषात्वेकदेशस्थापि सर्वत्र व्याप्रियते।।'[१७]

तुलनीय

'परितः प्रमिताक्षरापि सर्वे
विषयं व्याप्तवती गता प्रतिष्ठाम्।
न खलु प्रतिहन्यते कुतश्चित्-
परिभाषेव गरीयसी यदाज्ञा।।'[१८]

१. कुछ विद्वानों का मत इससे भिन्न है। उनके अनुसार कुछ शब्दों के साम्य से माघ पर न्यासकार का प्रभाव मानने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है।

२. जिनेन्द्रबुद्धि के पूर्व भी अनेकों न्यास ग्रंथों की रचना हो चुकी थी।

३. बाण ने भी (जो निश्चित रूप से जिनेन्द्रबुद्धि के पूर्ववर्ती हैं) न्यास का प्रयोग किया है–

'कृतगुरुपदन्यासा लोक इव व्याकरणेऽपि।'

इससे स्पष्ट है कि माघ से पूर्ववर्ती बाणभट्ट के समय से पहले भी कोई प्रमाणिक न्यासग्रंथ अवश्य था। बाणभट्ट की भाँति माघ ने भी उसी के लिए 'न्यास' शब्द का प्रयोग किया है। अत: इन विद्वानों के मतानुसार माघ द्वारा प्रयुक्त न्यास से जिनेन्द्रबुद्धि के पूर्ववर्ती आचार्यों के न्यास ग्रंथों से माना जाना चाहिए, जैसा कि हर्षचरित में प्रयुक्त न्यास शब्द से माना जाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त साक्ष्यों के आधार पर माघ का समय सप्तम शताब्दी का उत्तरार्द्ध अथवा अष्टम शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जा सकता है। उपर्युक्त विवेचन से मैकडानल, बेवर तथा रामावतारशर्मा आदि जो माघ का काल नवम शताब्दी मानते हैं, का मत समीचीन नहीं प्रतीत होता। जैकोवी द्वारा माघ का समय छठीं शताब्दी मानना भी उचित नहीं है, जबकि शिलालेख के आधार पर उनके पितामह का काल ६२५ ई० माना जाता है। प्रो० के०वी० पाठक तथा अन्य विद्वानों के उस मत, जिसके अनुसार माघ की स्थितिकाल अष्टम शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना गया है, को सर्वथा अग्राह्य नहीं कहा जा सकता है। परन्तु मेरी दृष्टि में तुलनात्मक प्रक्रिया के आधार पर माघ का समय सप्तम शताब्दी का उत्तरार्द्ध मानना अधिक सङ्गत प्रतीत होता है।

रचनाएँ

महाकवि माघ की एकमात्र कृति शिशुपालवध उपलब्ध है। यह एक उच्चकोटि का महाकाव्य है। उनकी गणना संस्कृतसाहित्य के महाकाव्यों वृहत्त्रयी में की जाती है। माघ द्वारा विरचित कुछ मुक्तक श्लोक अन्य ग्रंथों (सुभाषित रत्नभण्डागार, सुभाषितावली तथा औचित्यविचारचर्चा) में उपलब्ध होते हैं, परन्तु मूल ग्रन्थ अप्राप्य हैं। उनकी काव्यप्रतिभा को देखते हुए यह माना जा सकता है कि माघ ने मुक्तक रचनाएँ भी की होंगी, जो कालक्रमानुसार आज लुप्त हो गई हैं।

शिशुपालवध का सामान्य परिचय

महाकवि माघ ने जिस कथानक को आधार मानकर अपने महाकाव्य शिशुपालवध की रचना की है, वह कथा महाभारत के सभापर्व (३३-४५) अध्याय तक तथा श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में वर्णित है। पद्मपुराण के २५२वें अध्याय में शिशुपालवध की कथा का उल्लेख है। अग्निपुराण तथा विष्णुपुराण में अभी यह कथा कुछ व्युत्क्रम रूप में प्राप्त होती है। विद्वत्परम्परा के अनुसार शिशुपालवध काव्य के कथानक का आधार महाभारत को ही माना जाता है। कवि ने उपर्युक्त कथानक को अपनी प्रतिभाकल्पना और मौलिक उद्भावना के सहारे संबर्द्धित एवं परिवर्तित करके उसे काव्यानुरूप बनाया है। आवश्यकतानुसार कवि ने काल्पनिक परिस्थितियों और सरल वर्णनों के द्वारा कथानक और काव्य को अलंकृत किया है। इस प्रकार माघ का महाकाव्य भारतीय साहित्य की धरती में उगा हुआ ऐसा वटवृक्ष है, जिसकी शीतल छाया में काव्य के सभी अङ्ग हरे-भरे रसस्निग्ध बने रहकर भारतीय जनता को रससिक्त करता रहेगा।

आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार महाकवि माघ ने अपने महाकाव्य शिशुपालवध की कथावस्तु को श्रीमद्भागवत (१०/७१-७५) के आधार पर ही मुख्य रूप से प्रस्तुत किया है। स्वर्ग से देवर्षि नारद के आगमन से महाकाव्य का प्रारंभ होता है। वे श्रीकृष्ण के पास आकर शिशुपाल के अत्याचारों का वर्णन करके देव-विरोधी शिशुपाल के वध के लिए श्रीकृष्ण को इन्द्र की ओर से प्रेरित करते हैं। बलराम आदि तुरन्त युद्ध की घोषणा करने का प्रस्ताव करते हैं किन्तु तर्क-वितर्क के पश्चात् उद्धव के परामर्श के अनुसार युधिष्ठिर के राजसूययज्ञ में जाने का निमंत्रण स्वीकार कर लिया जाता है। सेना-सहित श्रीकृष्ण युधिष्ठिर की राजधानी इन्द्रप्रस्थ को चल पड़ते हैं। फिर यात्रा के अन्तर्गत रैवतकपर्वत, रात्रिसैन्यशिविर, यादवों की जलक्रीड़ा तथा विभिन्न बिहार आदि वर्णित है। श्रीकृष्ण सम्पूर्ण सेना के साथ यमुना नदी को पार करके इन्द्रप्रस्थ पहुँचते हैं। युधिष्ठिर अग्रपूजा करके श्रीकृष्ण के प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हैं, किन्तु शिशुपाल इसका विरोध करता है और युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाता है। दोनों सेनाओं में भयङ्कर युद्ध होता है। अन्त में श्रीकृष्ण भगवान् अपने सुदर्शन चक्र से शिशुपाल का सिर काटकर अलग कर देते हैं और शिशुपाल का तेज श्रीकृष्ण में ही समा जाता है।

उपर्युक्त कथानक को महाकवि माघ ने बीस सर्गों में विभाजित करके महाकाव्य का स्वरूप दिया है, जिसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है :

प्रथम सर्ग–
१. देवर्षि नारद का श्रीकृष्ण के भवन में उपस्थित होना।
२. नारद और श्रीकृष्ण का वार्तालाप।

द्वितीय सर्ग–
१. सभा में उद्धव और बलराम के साथ श्रीकृष्ण का परामर्श।
२. बलराम और उद्धव द्वारा अपना-अपना मत प्रकट करना।

तृतीय सर्ग–
१. श्रीकृष्ण भगवान् की इन्द्रप्रस्थ यात्रा का वर्णन।

चतुर्थ सर्ग–
१. रैवतक पर्वत का वर्णन।

पञ्चम सर्ग–
१. दलबल सहित श्रीकृष्ण के रैवतक निवास का वर्णन।

षष्ठ सर्ग–
१. ऋतुओं का वर्णन।

सप्तम सर्ग–
१. वन-विहार का वर्णन।
२. सखियों की आपस में बातचीत।
३. सड़क पर चलती हुई रमणियों का वर्णन।
४. किसी नायिका के प्रति एक सखी की उक्ति।
५. अङ्गनाओं की विविध अवस्थाओं का वर्णन।
६. प्रियतमा को पल्लवदान द्वारा रिझाते हुए प्रियतम के प्रति किसी सखी का परिहास।
७. वन-विहार से उत्पन्न थकावट का वर्णन।

अष्टम सर्ग–
१. थकी हुई यादव रमणियों की मन्दगति का वर्णन।
२. जल-विहार का वर्णन।
३. जल-क्रीड़ा समारोह का वर्णन।
४. जलकेलि का वर्णन।
५. यादव-रमणियों के पानी में तैरने का वर्णन।

नवम सर्ग– १. सूर्यास्त का वर्णन।
२. सन्ध्याकाल का वर्णन।
३. चन्द्रोदय का वर्णन।
४. स्त्रियों के आभूषणों का वर्णन।
५. दूती के उक्ति का वर्णन।
६. प्रियतम के घर आने पर तात्कालिक वृतान्त का वर्णन।

दशम सर्ग– १. मधुपान का वर्णन।
२. सुरतवर्णन

एकादश सर्ग– १. प्रभातवर्णन
२. प्रातः–काल आये हुए अपराधी नायक के प्रति खण्डिता नायिका की उक्ति का वर्णन।
३. विलासीजनों की उक्ति का वर्णन।
४. जपवर्णन।
५. सूर्योदयवर्णन।

द्वादश सर्ग– १. प्रातःकालीन अभियान का वर्णन।
२. जलाशयों का वर्णन।
३. यमुना के निकट पहुँचने का वर्णन।

त्रयोदश सर्ग– १. यादवों और पाण्डवों के मिलन का वर्णन।
२. महिलाओं के श्रीकृष्ण दर्शन का वर्णन।
३. श्रीकृष्ण के सभा में पहुँचने का वर्णन।
४. सभा का वर्णन।
५. श्रीकृष्ण का सभा–स्थल में प्रवेश।

चतुर्दश सर्ग– १. श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर की उक्ति–प्रत्युक्ति का वर्णन।
२. यज्ञवर्णन।

३. युधिष्ठिर के दान का वर्णन।

४. भीष्म के कथन का वर्णन।

पञ्चदश सर्ग– १. कृष्ण की पूजा के समय शिशुपाल द्वारा प्रकट किए गए रोष का वर्णन।

२. शिशुपाल द्वारा युधिष्ठिर आदि के प्रति किए गए आक्षेप का वर्णन।

३. राजाओं के प्रति शिशुपाल का अभिभाषण।

४. पुनः शिशुपाल के आक्षेपों का सिंहावलोकन।

५. भीष्म का प्रतिवाद।

६. शिशुपाल पक्षीय राजाओं के कोप का वर्णन।

७. शिशुपाल की उक्ति का वर्णन।

८. प्रयाणवर्णन।

षोडश सर्ग– १. शिशुपाल के दूत की उक्ति का वर्णन।

२. सात्यकि के वचनों का वर्णन।

३. शिशुपाल के दूत की प्रत्युक्ति का वर्णन।

सप्तदश सर्ग– १. सभासदों के क्षोभ का वर्णन।

२. युद्ध के लिए कवच पहनकर तैयार होने का वर्णन।

अष्टदश सर्ग– १. दोनों तरफ की सेनाओं के मिलने का वर्णन।

२. युद्ध वर्णन।

एकोनविंश सर्ग– १. द्वन्द्वयुद्ध का वर्णन।

२. शिशुपाल की सेना का वर्णन।

३. यादव सेना के प्रतिपक्षी सेना के साथ मुकाबला करने का वर्णन।

विंश सर्ग– १. श्रीकृष्ण भगवान् और शिशुपाल के युद्ध का वर्णन।

प्रतिनायक शिशुपाल, प्रधान रस वीर और उपप्रधान रस शृङ्गारादि है। इन्द्रप्रस्थ जाकर शिशुपालवध करना फल है।

शिशुपालवध का नामकरण

चूंकि किसी भी नाटक, नाटिका, प्रकरण अथवा काव्य एवं अन्य रचनाओं का नामकरण, नायक, नायिका, प्रतिपाद्यवस्तु अथवा प्रमुख घटना के आधार पर ही नाट्यकारों तथा ग्रंथकारों ने किया है। जैसा कि स्पष्ट है–

१. 'उत्तररामचरित' का नाम नायक के आधार पर।

२. 'अभिज्ञानशाकुन्तल' और 'रत्नावली' का नाम नायिका के आधार पर।

३. 'वेणीसंहार' का नाम प्रमुख घटना के आधार पर।

४. 'मुद्राराक्षस' का नाम राक्षस की उस मुद्रा के आधार पर रखा गया है, जो चाणक्य की सफलता का कारण है।

५. 'मृच्छकटिक' का नाम एक प्रमुख घटना के आधार पर रखा गया है।

ठीक उसी प्रकार 'शिशुपालवध' जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, शिशुपाल के नाम से, जो कि महाकाव्य का प्रतिनायक है, उसके आधार पर रखा गया है।

(ख) शिशुपालवध का वैशिष्ट्य और व्युत्पत्तिपरकता

सम्पूर्ण अलौकिक अलङ्कारों से अलंकृत शिशुपालवध के छन्दोमय शरीर पर नौ रसों की वर्षा कर उसे प्राणवान् और अमर बनाने वाले माघ कवि का व्यक्तित्व अहंता, ऋजुता और उदारता का विचित्र संघात था। शिशुपालवध जहाँ उनका यश: शरीर माना जाता है, वहीं वह उनके शारीरिक मनोवैज्ञानिक और व्यावहारिक जीवन की व्याख्या भी है। सम्पूर्ण ग्रन्थ के सम्यक् अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट बोध होता है कि यह महाकाव्य महाकवि माघ का प्रतिविम्ब और उस युग का प्रतिनिधि ग्रन्थ है।

ऐसा जान पड़ता है कि कवि में एक ऐसा दुर्निवार अहं था, जिससे विवश होकर उसे अपने बहुश्रुतत्त्व पाण्डित्य और चमत्कारी प्रतिभा का परिचय हठात् देना पड़ा। इसी अहं के वशीभूत होकर उन्होंने किरातार्जुनीयम् की शैली, वृत्ति और शब्दावली का अनुशरण भी सम्भवत: किया है। नि:सन्देह कवि के हृदय में यह प्रतिक्रिया जगी हुई थी कि किरातार्जुनीयम् की ख्याति और लोकप्रियता को दबाकर शिशुपालवध अपनी प्रतिष्ठा प्राप्त करे। शायद इसीलिए उन्होंने सादृश्यवाद को अपनाया। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि कुशल शिल्पी ने

भारवि के वस्तु और शिल्प का सादृश्य अपनाकर उसमें अपनी मौलिकता, अगाध परिचयचारुता की अमिट छाप छोड़ दी है।

कवि को सहज उदारता की वृत्ति विरासत के रूप में अवश्य मिली थी, किन्तु वह रजोगुणी प्रधान प्रवृत्ति थी। यश, प्रतिष्ठा और प्रशस्ति का भूखा कवि जो भी दान देता था, उसमें उसकी यशोलिप्सा लिपटी रहती थी। कवि विद्वान् वैभवशाली और विशालपरिचयचारुता सम्पन्न होते हुए भी वह जीवन और यश की सीमाओं से बँधा हुआ जान पड़ता है।

हालाँकि माघकाव्य में भवभूति की सी गर्वोक्ति, कालिदास की सी कमनीय स्वच्छन्दता और बाण की सी आत्माभिव्यक्ति का अभाव सा मिलता है। फिर भी उसने अपनी धार्मिक, शास्त्रीय और सामाजिक मान्यताओं को समन्वयवाद की झीनी चादर से लपेटने का भी कहीं-कहीं प्रयत्न किया है। यह निश्चित है कि माघ विशुद्ध वैदिक सनातनधर्मी परम्परा के पोषक और अनुगामी रहे। जैन एवं बौद्ध मान्यताओं का संरक्षण इसलिए स्वीकार किया कि उन दिनों गुजरात प्रदेश में अर्हत अनुयायी, सामन्त और श्रेष्ठियों का प्राधान्य या बाहुल्य रहा। यशोलिप्सु कवि ने बुद्धिकौशल द्वारा धार्मिक समन्वय स्थापित करने में वही चातुर्य दिखलाया है, जो भारवि ने किरातार्जुनीयम् में।

माघ के काव्य में रसोद्रेक की पर्याप्त शक्ति होने पर भी वस्तुतः माघ पंडित कवि हैं। उनके महाकाव्य में पदे-पदे अगाध पाण्डित्य और बहुज्ञता परिलक्षित होती है। सम्भवतः अन्य किसी संस्कृतकवि में इतना परिनिष्ठित ज्ञान न प्राप्त हो सके। माघ का पाण्डित्य सर्वगामी है। यथा–

'शीलं शैलतटात्पतत्वभिजनः सन्दह्यतां वह्निना।
मा श्रौषं जगति श्रुतस्य विफलक्लेशस्य नामाप्यहम्॥
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु मे सर्वदा।
येनैकेन विना गुणास्तृणवुसप्रायाः समस्ता अमी॥' (सुभाषितावलि)

और–

'नारीनितम्बफलके प्रतिबध्यमाना
हंसीव हेमरसना मधुरं ररास।
तन्मोचनार्थमिव नूपुरराजहंसा-
ञ्चक्रन्दुरार्तमुखरं चरणावलग्नाः॥' (सुभाषितावलि)

और–

'बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते
पिपासितैः काव्यरसो न पीयते।
न विद्यया केनचिदुद्धृतं कुलं
हिरण्यमेवार्जय निष्फलाः कला॥'

(औचित्यविचारचर्चा)

इन तीन श्लोकों में से प्रथम श्लोक से अनुमान होता है कि माघ सुशील, बहुत अभिजनों वाले, शास्त्रज्ञाता एवं बलशाली थे। तृतीय श्लोक से माघ के व्याकरणशास्त्र के विद्वान्, काव्यरसिक और उत्तम वंश का होना प्रतीत होता है। शिशुपालवध के आद्यन्त सम्यक् परिशीलन करने से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि महाकवि माघ परमैश्वर्य-सम्पन्न, कुलीन और व्याकरण के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इनके काव्यरसिक होने का प्रत्यक्ष प्रमाण तो उनकी अनुपम कृति शिशुपालवध से ही स्पष्ट हो जाता है। इसके साथ ही शिशुपालवध से ही उनके वेद, वेदान्त, उपनिषद, धर्मशास्त्र, मंत्र-तंत्र एवं योगशास्त्र, पुराण, इतिहास, छन्द, ज्योतिष, कामशास्त्र, आयुर्वेद, सङ्गीत, सामुद्रिकशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, हयशास्त्र एवं गजशास्त्र आदि में पूर्णतया निष्णात् होने के प्रचुर मात्रा में प्रमाण मिलते हैं। वे सांख्य, योग, बौद्ध आदि दर्शन के भी निष्णात् पण्डित जान पड़ते हैं। उनका काव्य व्याकरण के दुरूह प्रयोगों से भरपूर है। डॉ० व्यास ने लिखा है–कालिदास मूलतः कवि हैं और भट्टि कोरे वैयाकरण किन्तु माघ स्वतन्त्र पाण्डित्य को लेकर उपस्थित होते हैं। भारवि और भट्टि के परवर्ती माघ ने दोनों के आदर्शमूलक पाण्डित्य का प्रदर्शन किया है। व्याकरण के विशिष्ट प्रयोगों की दृष्टि से माघ का निम्नलिखित श्लोक द्रष्टव्य है, जिसमें लकारार्थ प्रक्रिया से सिद्ध होने वाली क्रियाओं का प्रयोग किया गया है। कौमुदीकार ने सिद्धान्तकौमुदी में इस श्लोक को उद्धृत किया है–

'पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दनं
मुषाण रत्नानि हरामराङ्गनाः।
विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा वली-
य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः॥'[१९]

माघ ने एकत्र व्याकरण शास्त्रीय उपमान भी प्रस्तुत किया है–

'अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा॥'[२०]

महाकवि माघ का व्याकरणशास्त्र पर पूरा अधिकार था। शिशुपालवध का उन्नीसवाँ सर्ग इसका पुष्ट प्रमाण है। तभी उनकी एकाक्षरी, द्वयाक्षरी रचनाएँ सम्भव हो सकी हैं। 'पा' (पाने, रक्षणे) धातु का दोनों अर्थो में चमत्कारिक ढङ्ग से एक साथ प्रयोग किया है। उनके अनुसार कृष्ण के वाण 'पा' धातु के दोनों (पीने और रक्षा करने) अर्थों का अनुशरण कर रहे हैं, क्योंकि ये वाण शुत्रओं का रक्त पीते हैं और विश्व की रक्षा भी करते हैं–

'उद्धतान्द्विषतस्तस्य निघ्नतो द्वितयं ययुः।
पानार्थे रुधिरं धातौ रक्षार्थे भुवनं शराः॥'[२१]

माघ ने यत्र-तत्र व्याकरण की नीरस परिभाषाओं को भी सरस उपमान के रूप में प्रस्तुत किया है। अल्पाक्षरा परिभाषाओं के समान ही शिशुपाल की गरीयसी आज्ञा का भी कभी तथा कहीं व्याघात नहीं होता था–

'परितः प्रमिताक्षरापि सर्वे
विषयं व्याप्तवती गता प्रतिष्ठाम्।
न खलु प्रतिहन्यते कुतश्चित्-
परिभाषेव गरीयसी यदाज्ञा॥'[२२]

माघ ने सामान्यभूत लुङ् यङ् लुननन्त क्रियापद तथा पाणिनि सम्मत प्रयोगों पर भी ध्यान दिया है। पर्यपूपुजत् (१/१४) अभिन्यवीविशत् (१/१५), अचूचुरत् (१/१६) आदि लुङ् लकार् के प्रयोग उसी भावना के प्रतीक हैं। ऐसे ही व्याकरण प्रयोगों की दृष्टि से महाकवि माघ का निम्नलिखित श्लोक द्रष्टव्य हैं–

'क्षिप्तं पुरो न जगृहे मुहुरिक्षुकाण्डं
नापेक्षतेस्म निकटोपगतां करेणुम्।
सस्मार वारणपतिः परिमीलिताक्ष-
मिच्छाविहारवनवासमहोत्सवानाम्॥'[२३]

महाकवि माघ के इन्हीं पाण्डित्यपूर्ण प्रयोगों के कारण ही उन्हें महावैयाकरण के विशेषण से विभूषित किया जाता रहा है।

महाकवि माघ के शिशुपालवध के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें दर्शनशास्त्र का भी अच्छा ज्ञान था। उन्होंने न केवल भारतीय आस्तिक दर्शनों का अपितु बौद्धदर्शन का भलीभांति अध्ययन किया था। सांख्यदर्शन में वे प्रकृति-विकृति तथा पुरुष शब्दों के प्रयोग के साथ ही पुरुष का कृष्ण के साथ तादात्म्य भी स्थापित किए है–

'उदासितारं निगृहीतमानसै-
गृहीतमध्यात्मदृशा कथञ्चन।
बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः
पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः।'[२४]

माघ ने योगदर्शन के यमनियमादि आठों अङ्गों, मैत्री-करुणा, मुदिता तथा उपेक्षा चारों चित्तवृत्तियों एवं अविद्या, अस्मिता आदि पञ्चक्लेशों का उल्लेख करते हुए लिखा है-

'मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मविदो विधाय
क्लेशप्रहाणमिह लब्धसबीजयोगाः।
ख्यातिं च सत्त्वपुरुषान्यतयाधिगम्य
वाञ्छन्ति तामपि समाधिभृतो निरोद्धुम्॥'[२५]

कवि ने वेदान्तमूलक सिद्धान्तों का भी अपने काव्य में प्रयोग किया है। निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन करते हुए कवि ने कृष्ण को ही मोक्ष प्राप्त करने वालों का एकमात्र प्राप्यस्थल बताया है-

'उदीर्णरागप्रतिरोधकं जनै-
रभीक्ष्णमक्षुण्णतयाऽतिदुर्गमम्।
उपेयुषो मोक्षपथं मनस्विन-
स्त्वमग्रभूमिर्निरपायसंश्रया॥'[२६]

माघ के निम्नलिखित श्लोक से उनके बौद्धदर्शन सम्बन्धी ज्ञान का पता चलता है, जिसमें बौद्धदर्शन के पाँचों स्कन्धों और अनात्मवादी सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है-

'सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्धपञ्चकम्।
सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम्॥'[२७]

इस प्रकार माघ के काव्य में प्रायः समस्त आस्तिक एवं नास्तिक दर्शनों का उल्लेख मिलता है, जिससे यह सिद्ध होता है कि माघ को दर्शनशास्त्र का अच्छा ज्ञान था।

यद्यपि संस्कृतकवियों में मुख्य रूप से महाकवि भारवि को राजनीति का विद्वान् माना जाता है, परन्तु यह कहना असङ्गत नहीं होगा कि भारवि का राजनीतिकज्ञान व्यावहारिक तथा अनुभवजन्य था और माघ का राजनीतिक ज्ञान

शास्त्रों के गहन अध्ययनों का परिणाम था। महाकवि माघ ने राजनीति के ग्रंथों का अनुशीलन किया था, जिसमें वे राजनीति के प्रमुख सिद्धान्तों से भलीभाँति परिचित थे। माघ के राजनीति सम्मत राजा के बारह भेदों का उल्लेख इस प्रकार है–

'उदेतुमत्यजन्नीहां राजसु द्वादशस्वपि।
जिगीषुरेको दिनकृदादित्येष्विव कल्पते।।'[२८]

राजनीति में वर्णित सात राज्याङ्गों का वर्णन करते हुए लिखा है–

'बुद्धिशस्त्रः प्रकृत्यङ्गो घनसंवृत्तिकञ्चुकः।
चारेक्षणो दूतमुखः पुरुषः कोऽपि पार्थिवः।।'[२९]

राजनीति में वर्णित शत्रुपक्ष के अट्‌ठारह तीर्थों का भी माघ ने उल्लेख किया है–

'कृत्वा कृत्यविदस्तीर्थेष्वन्तः प्रणिधयः पदम्।
विदां कुर्वन्तु महतस्तलं विद्विषदम्भसः।।'[३०]

एतावता शिशुपालवध का द्वितीय सर्ग राजनीतिक सिद्धान्तों से परिपूर्ण है, जिससे माघ के राजनीतिक ज्ञान की पुष्टि होती है।

महाकवि माघ निःसन्देह वैदिक सनातन-धर्म के अनुयायी थे। वेद और पुराणों का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। शिशुपालवध के एकादश एवं चतुर्दश सर्ग के अध्ययन से उनके वैदिक ज्ञान का पता चलता है। प्रभातवर्णन के प्रसङ्ग में कवि ने अग्निहोत्र का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है–

'प्रतिशरणमशीर्णज्योतिरग्न्याहितानां
विधिविहितविरिब्धैः सामिधेनीरधीत्य।
कृतगुरुदुरितौघध्वंसमध्वर्युवर्यै-
र्हुतमयमुपलीढे साधु साम्नाय्यमग्निः।।'[३१]

माघ को स्वरपरिवर्तन के सम्बन्ध में भी ज्ञान था। वे स्वर परिवर्तन के कारण होने वाले अर्थपरिवर्तन के नियमों से भी परिचित थे। अतएव उनके मतानुसार स्वर अथवा वर्ण के अशुद्ध उच्चारण से मंत्र यथावत् फल न देकर विपरीत फल देते हैं। अतः किसी कार्य के प्रति भिन्न-भिन्न फल प्रदान करने वाले दो समासों के विग्रह का स्वर द्वारा ही निर्णय किया जाता था–

'संशयाय दधतोः सरूपतां
दूरभिन्नफलयोः क्रियां प्रति।
शब्दशासनविदः समासयो-
र्विग्रहं व्यवससुः स्वरेण ते॥'[३२]

माघ का निम्नलिखित श्लोक 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' की भावना का द्योतक है-

'तदीशितारं चेदीनां भवांस्तमवमस्त मा।
निहन्त्यरीनेकपदे य उदात्तः स्वरानिव॥'[३३]

चतुर्दश सर्ग के अनेक श्लोकों (२०,२२,२३ आदि) में भी वेद विषयक अर्थो का निर्देश है, जिससे कवि के वैदिक ज्ञान की पुष्टि होती है।

महाकवि माघ को वेद, व्याकरण आदि के अतिरिक्त प्रायः सभी शास्त्रों का ज्ञान था। इसीलिए भोलाशङ्कर व्यास उन्हें 'आल राउन्डर स्कालर' मानते हैं। शिशुपालवध का निम्नलिखित श्लोक उनके सङ्गीतशास्त्रज्ञ होने का परिचायक है-

'रणद्भिराघट्टनया नभस्वतः
पृथग्विभिन्नश्रुतिमण्डलैः स्वरैः।
स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्च्छना-
मवेक्षमाण महतीं मुहुर्मुहुः॥'[३४]

माघ के काव्य में यत्र-तत्र आयुर्वेद के ऐसे सिद्धान्तों का उल्लेख मिलता है, जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि उनको आयुर्वेदशास्त्र का अच्छा ज्ञान था। उदाहरणार्थ निम्नलिखित श्लोक द्रष्टव्य है-

'चतुर्थोपायसाध्ये तु रिपौ सान्त्वमपक्रिया।
स्वेद्यमामज्वरं प्राज्ञः कोऽम्भसा परिषिञ्चति॥'[३५]

अर्थात् आद्य ज्वर को कोई भी व्यक्ति शीतल जल से नहीं सीञ्चता है। उसको प्रस्वेदकारी उपचार से शान्त किया जा सकता है। इसी प्रकार द्वितीय तथा तृतीय सर्ग में आयुर्वेद सम्बन्धी बातों का निर्देश मिलता है।

महाकवि माघ निश्चित रूप से ज्योतिष के ज्ञान से भी अछूते नहीं थे। वे कहते हैं कि आकाश में धूमकेतु का उदय होना शुत्रओं के विनाश का सूचक हुआ करता है-

'व्योम्नीव भ्रुकुटिच्छलेन वदने केतुश्चकारास्पदम्॥'[३६]

माघ ने सर्वसिद्धकारी पुष्य नक्षत्र की उपमा कृष्ण के सर्वदिग्गामी रथ के लिए प्रस्तुत करते हुए लिखा है–

'रराज सम्पादकमिष्टसिद्धेः
सर्वासु दिक्ष्वप्रतिषिद्धमार्गम्।
महारथः पुष्यरथं रथाङ्गी
क्षिप्रं क्षपानाथ इवाधिरूढः।।'[३७]

निम्नलिखित श्लोकों द्वारा महाकवि माघ के अश्वशास्त्र निष्णात होने का प्रमाण है:–

'तेजोनिरोधसमतावहितेन यन्त्रा
सम्यक्कशात्रयविचारवता नियुक्तः।
आरट्टजश्चटुलनिष्ठुरपातमुच्चै-
श्चित्रं चकार पदमर्धपुलायितेन।।'[३८]

और–

'अव्याकुलं प्रकृतमुत्तरधेयकर्म-
धाराः प्रसाधयितुमव्यतिकीर्णरूपाः।
सिद्धं मुखे नवसु वीथिषु कश्चिदश्वं
वल्गाविभागकुशलो गमयाम्बभूव।।'[३९]

निम्नलिखित पद्यों के द्वारा माघ के गजशास्त्र के विशेषज्ञ होने का ज्ञान प्राप्त होता है–

'गण्डूषमुज्झितवता पयसः सरोषं
नागेन लब्धपरवारणमारुतेन।
अम्भोधिरोधसि पृथुप्रतिमानभाग-
रुद्धोरुदन्तमुसलप्रसरं निपेते।।'[४०]

और–

'स्तम्भं महान्तमुचितं सहसा मुमोच
दानं ददावतितरां सरसाग्रहस्तः।
बद्धापराणि परितो निगडान्यलावीत्-
स्वातन्त्र्यमुज्ज्वलमवाप करेणुराजः।'[४१]

और–

'जज्ञे जनैर्मुकुलिताक्षमनाददाने
संरब्धहस्तिपकनिष्ठुरचोदनाभिः।
गम्भीरवेदिनि पुरः कवलं करीन्द्रे
मन्दोऽपि नाम न महानवगृह्य साध्यः।।'[४२]

कवि के साहित्य के विभिन्न अङ्गों-रससिद्धान्त, छन्द और अलङ्कारों की सिद्धहस्तता का कहना ही क्या है? यह सब तो कवि का अपना अधिकृत क्षेत्र है। जिधर से उसकी इच्छा हुई है, प्रसङ्ग आरम्भ कर दिया और जिधर से चाहा है, समाप्त किया है। राजनीति और कूटनीति जैसे विषयों में भी उसने साहित्यिक पदार्थों की चर्चा करके उन्हें हृदयङ्गम करने योग्य और अधिकाधिक उपादेय बना दिया है। माघ के अनुसार रसभाव के ज्ञाता कवि भावानुसार ही ओजगुणयुक्त प्रबन्धरचना अथवा प्रसादगुणयुक्त सुकुमार प्रबन्धरचना किया करते हैं। जैसा कि निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट है–

'तेजः क्षमा वा नैकान्तं कालज्ञस्य महीपतेः।
नैकमोजः प्रसादो वा रसभावविदः कवेः।।'[४३]

काव्यतत्त्व का सूक्ष्म पारखी ही उत्तमकोटि का कर्त्ता हो सकता है। माघ की दृष्टि में श्रेष्ठकवि शब्द और अर्थ दोनों की अपेक्षा करता है। भाव यह कि उसे शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार दोनों ही प्रिय थे। उदाहरणार्थ निम्नलिखित श्लोक ध्यातव्य है–

'नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे।
शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते।'[४४]

महाकवि माघ के निम्नलिखित श्लोक में एक ही स्थाईभाव अनेक सञ्चारीभाव के कैसे सहायक होते हैं? यथा–

'स्थायिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावाः सञ्चारिणो यथा।
रसस्यैकस्य भूयांसस्तथा नेतुर्महीभृतः।।"[४५]

महाकवि माघ का निम्नलिखित श्लोक भी अवलोकनीय है–

'क्षणशयितविबुद्धाः कल्पयन्तः प्रयोगा-
नुदधिमहति राज्ये काव्यवद्दुर्विगाहे।
गहनमपररात्रप्राप्तबुद्धिप्रसादाः
कवय इव महीपाश्चिन्तयन्त्यर्थजातम्।।'[४६]

महाकवि माघ ने प्रकृति का अत्यन्त अलंकृत एवं सजीव वर्णन किया है।
नवध में समुद्र, सरिता, वन, वृक्ष, पर्वत, मेघ, सूर्योदय ऋतु और
आदि प्राकृतिक दृश्यों का स्वाभाविक एवं सुन्दर वर्णन हुआ है। वस्तुतः प्रकृति को देखने और समझने की माघ की शक्ति अद्भुत है। माघ जिस भी प्राकृतिक दृश्य का वर्णन करते हैं, उसका ही चित्र नेत्रपटल पर उपस्थित हो जाता है। प्राची दिशा में उदित होते हुए सहस्त्ररश्मि का वर्णन सूर्योदय के दृश्य को अविस्मरणीय बना रहा है। यथा–

'विततपृथुवरत्रातुल्यरूपैर्मयूखैः।
कलश इव गरीयान्दिग्भिराकृष्यमाणः।
कृतचपलविहङ्गालापकोलाहलाभि-
र्जलनिधिजलमध्यादेष उत्तार्यतेऽर्कः॥'[४७]

अर्थात् चारों ओर फैली हुई मोटी रस्सियों की भाँति किरणों के द्वारा खीचे जाते हुए बड़े भारी कलश के समान यह सूर्य, चञ्चल पक्षियों के कलरव से युक्त दिशावधुओं के द्वारा समुद्र के जल से निकाला जा रहा है। इसमें भावात्मक अभिव्यञ्जना है।

इसी प्रकार रैवतक पर्वत की गोद में निडर होकर अठखेली करने वाली पर्वतीय नदियाँ अपने पति समुद्र से मिलने जा रही हैं। पुत्री के विदाई के समय रैवतक पर्वत चिड़ियों के करुण स्वर में रो रहा है–

'अपशङ्कमङ्कपरिवर्तनोचिता-
श्चलिताः पुरः पतिमुपैतुमात्मजाः।
अनुरोदितीव करुणेन पत्रिणां
विरुतेन वत्सलतयैष निम्नगा॥'[४८]

अर्थात् स्नेहपालिता पुत्री के पतिगृह जाने पर रोते हुए पिता के रूप में पर्वत और नदियों का कितना सुन्दर चित्रण है? प्रकृति वर्णन के ही अन्तर्गत माघ का वह श्लोक है, जिसके उपमा सौन्दर्य के कारण ही उन्हें **'घण्टा माघः'** की उपाधि प्राप्त हुई है–

'उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जावहिम-
रुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम्।
वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टाद्वय-
परिवारितवारणेन्द्रलीलाम्॥'[४९]

अर्थात् ऊपर फैलती हुई किरण रूपी रस्सियों से युक्त सूर्य एक ओर

उदित हो रहा है और चन्द्रमा दूसरी ओर अस्त हो रहा है। इससे यह पर्वत दोनों ओर लटकते घण्टों वाले श्रेष्ठ हाथी की शोभा धारण कर रहा है।

महाकवि माघ विविध शब्दालङ्कारों और अर्थालङ्कारों से 'शिशुपालवध' को सर्वतः अलंकृत कर दिया है। आलङ्कारिकों ने प्रायः अपने अलङ्कार ग्रंथों में माघकाव्य से सुन्दर श्लोक उद्धृत किए हैं। अनुप्रास का सुन्दर उदाहरण द्रष्टव्य है–

'मधुरया मधुवोधितमाधवी-
मधुसमृद्धिसमेधितमेधया।
मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मद-
ध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे॥'[५०]

ऐसा प्रतीत होता है कि मधुकर के गुञ्जन के साथ ही कवि भी गुञ्जन कर उठा है। पृथ्वी को आतङ्कित कर देने वाले शिशुपाल के बल का कथन करते हुए माघ ने सुन्दर दीपक अलङ्कार का उदाहरण प्रस्तुत किए हैं–

'बलावलेपादधुनापि पूर्ववत्-
प्रबाध्यते तेन जगज्जिगीषुणा।
सतीव योषित्प्रकृतिः सुनिश्चला-
पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि॥'[५१]

अर्थात् बल के दर्प के कारण आजकल भी उस विजिगीषु शिशुपाल के द्वारा हिरण्यकशिपु तथा रावण के रूप में पहले के समान ही संसार को प्रबाधित किया जा रहा है। सती स्त्री के सदृश दृढ़ स्वभाव भी जन्मान्तर में भी उसी व्यक्ति को ग्रहण करता है।

महाकवि माघ ने वसन्तऋतु का वैभववर्णन करते समय प्रकृतिचित्रण में यमक के साथ नाद (रिद्म) का कितना सुन्दर प्रयोग किया है? उसी से वर्ण्य की प्रतीति होने लगती है और पाठक तन्मय हो जाता है। उदाहरणार्थ द्रष्टव्य है–

'नवपलाशपलाशवनं पुरः
स्फुटपरागपरागतपङ्कजम्।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्-
ससुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः॥'[५२]

महाकवि माघ का अर्थगौरव अपरिमित एवं चिन्तनशील है। उनकी अर्थपूर्ण

उक्तियाँ काव्य को अधिक प्रभावी बनाने में समर्थ हैं। अर्थगौरव का एक सुन्दर उदाहरण अवलोकनीय है–

'प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ
विफलत्वमेति बहुसाधनता।
अवलम्बनाय दिनभर्तुरभून्न
पतिष्यतः करसहस्त्रमपि॥'[५३]

अर्थात् चन्द्रमा के पृष्ठवर्ती हो जाने पर सूर्य की हजारों किरणें भी उसे नहीं रोक पाती हैं, वह अस्त हो जाता है। उसी प्रकार चन्द्रमा (भाग्य) के प्रतिकूल (अनिष्ट) हो जाने पर मनुष्य के पास अनेकों साधन के रहते हुए भी उसका कार्यसिद्ध नहीं हो पाता है और सभी साधन व्यर्थ हो जाते हैं।

महाकवि माघ ने रैवतक पर्वत का श्रेष्ठ द्विज से समानता करते हुए उपमा में अद्भुत चमत्कार पैदा कर दिया है। उदाहरणार्थ–

'विद्वद्भिरागमपरैर्विवृतं कथञ्चि-
च्छ्रुत्वापि दुर्ग्रहमनिश्चितधीभिरन्यैः।
श्रेयान्द्विजातिरिव हन्तुमघानि दक्षं
गूढार्थमेषनिधिमन्त्रगणं विभर्ति॥'[५४]

माघ का पदलालित्य किसी से कम नहीं है। उनकी कोमलकान्तपदावली हठात् पाठक का मन मोह लेती है। पदलालित्य की दृष्टि से उनका निम्नलिखित श्लोक द्रष्टव्य है–

'कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजषण्डं
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः॥'[५५]

माघ के उपमा अलङ्कार के कुछ और उदाहरण प्रस्तुत हैं। निम्नलिखित पद्य में श्रीकृष्ण के मितभाषण को कितनी सुन्दरता के साथ महत्ता से जोड़ देते हैं–

'यावदर्थपदां वाचमेवमादाय माधवः।
विरराम महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः॥'[५६]

एक और उदाहरण अवलोकानीय है–

'त्वयि भौमं गते जेतुमरौत्सीत्स पुरीमिमाम्।
प्रोषितार्यमणं मेरोरन्धकारस्तटीमिव।।"[५७]

अर्थात् तुम्हारे (श्रीकृष्ण के) नरकासुर को जीतने चले जाने पर शिशुपाल ने इस नगरी को उसी प्रकार घेर लिया, जिस प्रकार सूर्य के अस्त होने पर अन्धकार मेरुपर्वततटी को घेर लिया करता है।

अर्थगौरव एवं अर्थगाम्भीर की दृष्टि से भी माघकाव्य उत्कृष्ट कोटि का ग्रन्थ है। राजा के सर्वाङ्गीण रूप का कितना संक्षिप्त कथन इस श्लोक में प्राप्त होता है–

'बुद्धिशस्त्रः प्रकृत्यङ्गो घनसंवृतिकञ्चुकः।
चारेक्षणो दूतमुखः पुरुषः कोऽपि पार्थिवः।'[५८]

अर्थात् 'बुद्धि रूपी शस्त्र वाला, प्रकृति रूपी (स्वामी) मंत्री आदि सात अङ्गों वाला, मंत्रगुप्ति रूपी धन कवच वाला, गुप्तचर रूपी नेत्र वाला तथा दूत रूपी मुख वाला कोई विशिष्ट ही पुरुष होता है। इस एक अनुष्टुप छन्द में राजनीति का समस्त सार माघ ने प्रस्तुत कर दिया है। इसी सर्ग का एक और श्लोक अर्थगौरव की महत्ता को सुप्रतिष्ठित करता हुआ द्रष्टव्य है–राजा के मंत्र के पाँच अङ्ग होते हैं–कार्य के प्रारम्भ का उपाय, कार्यसिद्धि में अपेक्षित सामग्री सञ्चय, देशकाल का उचित उपयोजन, विपत्प्रतीकार के उपाय और कार्य सिद्धि। इसी प्रकार बौद्धों के पाँच स्कन्ध हैं–रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार स्कन्ध। इस विस्तृत अर्थ को माघ ने एक छोटे से श्लोक में सञ्जो दिया है–

'सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्धपञ्चकम्।
सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मंत्रो महीभृताम्।।"[५९]

अर्थात् जिस प्रकार पाँच स्कन्धों के अलावा बौद्धों का आत्मा नहीं है, उसी प्रकार पाँच अङ्गों के अलावा राजा का और मंत्र नहीं है।

उपमाप्रयोग एवं अर्थगौरव की ही भाँति पदलालित्य का एक अत्यन्त सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत है। उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दों को इधर-उधर नहीं खिसकाया जा सकता। पदों का सुन्दर, मनोहर, अपरिवर्तनीय सन्निवेश ही पदों की ललितयोजना है। इस दृष्टि से माघ का–

"नवपलाशपलाशवनं पुरः
स्फुटपरागपरागतपङ्कजम्।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्
ससुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः।।" (शिशु० ६।१२)

यह श्लोक प्रसिद्ध है। पदलालित्य और लयात्मकता का एक और उदाहरण देखने योग्य है–

'वर्जयन्त्या जनैः सङ्गमेकान्त-
तस्तर्कयन्त्या सुखं सङ्गमे कान्ततः।
योषयैष स्मरासन्नतापाङ्गया
सेव्यतेऽनेकया सन्नतापाङ्गया॥'[६०]

महाकवि माघ का अलङ्कार प्रयोग कभी-कभी कृत्रिम तथा सायास दीखने लगता है। वर्णनों की दीर्घता में यदि अलङ्कारों का भी बहुल प्रयोग किया जाए तो काव्य की सहजता ही नष्ट हो जाती है। ऐसे स्थल पाण्डित्य का भले ही निर्वाह करते रहे हों किन्तु पाठक के हृदय में स्थित रसतन्तु को नहीं छू पाते। माघकाव्य का सम्पूर्ण उन्नीसवाँ सर्ग विविध काव्यबन्धों के कारण चित्रकाव्य का रूप प्रस्तुत करता है। चित्रालङ्कारों के प्रयोग में माघ भारवि से भी आगे निकल गये हैं। माघ ने चित्रालङ्कारों के भेदोपभेदों के प्रयोग में अपनी विशेषता की पराकाष्ठा कर दी है। शिशुपालवध के उन्नीसवें सर्ग में एकाक्षर श्लोक (१९/११४) द्व्यक्षर श्लोक (१९/६६,८६,९४,१००,१०४ आदि) एकाक्षरपाद श्लोक (१९/३) सर्वतोभद्र (१९/२७), चक्रबन्ध (१९/१२०), द्व्यर्थक श्लोक (१९/५८) त्र्यर्थकश्लोक (१९/११६) आदि विभिन्न प्रकार के चित्रालङ्कारों का तो व्यूह ही रच दिया है। पाश्चात्य विद्वानों ने ऐसे काव्यबन्धों को कुरुचि का द्योतक मानकर इनकी कटु आलोचना की है किन्तु भारतीय परम्परा ने इन्हें हेय नहीं माना अपितु चमत्कृतिमूलक कहा है। माघकाव्य में इस प्रकार का चमत्कार और पाण्डित्य पग-पग पर दिखाई पड़ता है।

माघ के विविध शास्त्रज्ञान के सदृश ही उनका शब्दभण्डार भी विलक्षण ही है। नये-नये शब्दों का प्रयोग तथा व्याकरणसम्मत विचित्र पदों का सन्निवेश सम्पूर्ण काव्य में विखरा पड़ा है। यह महाकवि माघ की निजी विशेषता है क्योंकि इनके अतिरिक्त किसी भी कवि के काव्यों में इस प्रकार की विशेषताओं की झलक देखने को नहीं मिलती।

शिशुपालवध का अङ्गी रस वीर है। शृङ्गार, हास्य आदि अन्य रस अङ्ग हैं, किन्तु यह काव्य वीररस प्रधान होने पर भी शृङ्गार रस एवं वीररस के समान ही प्रधान जान पड़ता है। कवि ने अत्यन्त सहृदयता एवं सरसता से अङ्ग स्वरूप रस का चित्रण किया है। सातवें सर्ग से लेकर बारहवें सर्ग तक शृङ्गार रस की ही प्रधानता है। वीर रस का तो वर्णन मुख्यतया अन्तिम तीन सर्गों में (अठ्ठारह

से बीस तक) ही है, जिनमें श्रीकृष्ण की एवं शिशुपाल की सेनाओं का तथा स्वयं उन दोनों के युद्ध का वर्णन किया गया है।

महाकवि माघ ने अपने काव्य शिशुपालवध में छन्दश्चयन के प्रयोग में भी विशेष पटुता दिखलाई है। उनके छन्दोविधान पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि छन्द: प्रयोग की प्रक्रिया निरन्तर विकास की ओर अग्रसर थी। चतुर्थ सर्ग में ही उन्होंने उपजाति, द्रुतविलम्बित, शालिनी और वसन्ततिलका आदि बाईस छन्दों का प्रयोग कर अपनी निपुणता प्रस्तुत की है।

प्रकृतिवर्णन, अलङ्कार, नूतनपदशैय्या, गम्भीर अर्थगौरव, विलक्षणपाण्डित्य रसोन्मेषवर्णनवैचित्र्य, और कल्पनागाम्भीर्य आदि गुणों से परिपूर्ण माघकाव्य को देखकर उनकी काव्यरचना की निपुणता का प्रमाण मिलता है। उनके पद्यों में एक-एक शब्द में गम्भीर अर्थ छिपे हुए जान पड़ते हैं क्योंकि उन्होंने शब्दों और अर्थों पर विचार करके गुणों एवं अलङ्कारों से सुसज्जित अपने महाकाव्य की रचना की है, जो उनकी निपुणता का परिचायक है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शिशुपालवध के वैशिष्ट्य और व्युत्पत्तिपरकता के विषय में जो सूक्तियाँ प्रचलित हैं, वे सर्वथा सत्य ही हैं। वास्तव में उनका महाकाव्य सम्पूर्ण गुणों, रसों, अलङ्कारों और पाण्डित्यप्रदर्शनों से परिपूर्ण है। उनके विषय में जो सूक्तियाँ प्रचलित हैं, उससे उनके काव्यवैशिष्ट्य की पूर्ति हो जाती है–

'उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
नैषधे (दण्डिनः) पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥'

तावद्भाभारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः।
उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः॥'

अर्थात् कालिदास की उपमा, भारवि का अर्थगौरव, नैषध अथवा दण्डी का पदलालित्य प्रशंसनीय है किन्तु माघकवि में ये तीनों ही गुण पाये जाते हैं। भारविकवि की कान्ति तभी-तक शोभा पाती है जब-तक माघ कवि का उदय नहीं होता लेकिन नैषधकाव्य के उदय होने पर कहाँ माघ तथा कहाँ भारवि? ऊपर की सूक्ति के आधार पर माघकवि श्रेष्ठ हुए तो नीचे वाली सूक्ति से नैषधकार श्रीहर्ष से पीछे हो जाते हैं, किन्तु माघकवि के संबंध में सूक्तियों का यह जाल दूसरे कवियों की अपेक्षा बहुत बड़ा है। अनेक तर्कों में वे सर्वश्रेष्ठ कवि स्वीकार किये गये हैं। क्या अलङ्कारों की छटा, क्या अर्थ और भाव की

गम्भीरता, क्या अन्य लौकिक विषयों का अगाध ज्ञानगौरव, क्या पदों की मनोहारिकता, क्या वर्ण्य विषय तथा भाषा पर उनका असीम अधिकार? सभी दृष्टियों से माघ को सर्वश्रेष्ठ कवि सिद्ध करने वाले आलोचकों ने उनकी बहुमुखी प्रसस्तियाँ गायी हैं। उनके एकमात्र महाकाव्य का गौरव संस्कृत समाज में शताब्दियों से उन्हीं की भाँति सर्वोपरि स्वीकार किया गया है–

'कृत्स्नप्रवोधकृत् वाणी भारवेरिव भारवेः।
माघनैव च माघेन कम्पः कस्य न जायते॥' (राजशेखर)

'माघेन विघ्नितोत्साहा नोत्सहन्ते पदक्रमे।
स्मरन्तो भारवेरेव कवयः कपयो यथा।'' (धनपाल)

अर्थात् सूर्य की भाँति जहाँ भारवि की कविता समग्र ज्ञान को प्रकाशित करने वाली है, वहीं माघ मास के समान माघ का नाम सुनकर किस (कवि) को कँपकँपी नहीं आ जाती है।

जिस प्रकार माघ महीने के ठिठुरते हुए जाड़े में बन्दर लोग सूर्य का स्मरण करते हैं और चुपचाप रहकर इधर-उधर उछल-कूद नहीं मचाते, उसी प्रकार माघ कवि की रचना का स्मरण करके बड़े-बड़े कवियों का उत्साह पद-योजना करने में ठंडा पड़ जाता है, चाहे वह भारवि के पदों का कितना ही स्मरण क्यों न करें?

इन दोनों सूक्तियों में यद्यपि इनके कर्त्ताओं का हृदय भारवि की ओर झुका है किन्तु उनके मस्तिष्क में माघ की धाक धँसी हुई है। इसी प्रकार एक स्थान पर माघ और कालिदास की चर्चा इस प्रकार है–

'पुष्पेषु जाती, नगरीषु काञ्ची,
नारीषु रम्भा, पुरुषेषु विष्णुः।
नदीषु गङ्गा, नृपतौ च रामः
काव्येषु माघः कवि कालिदासः॥'

साथ ही–

'नवसर्गगते माघः नवशब्दो न विद्यते।'

अर्थात् माघकृत शिशुपालवध महाकाव्य का नौ सर्ग समाप्त होने पर कोई ऐसा शब्द नहीं रह जाता, जिनका प्रयोग कविता के क्षेत्र में अन्यत्र हुआ हो।

'मेघे माघे गतं वयः'

अर्थात् कालिदास कृत मेघदूत और माघकृत माघकाव्य अथवा शिशुपालवध के अध्ययन एवं परिशीलन में सम्पूर्ण आयु चली गई।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन की पुष्टि इन सूक्तियों द्वारा हो जाती है। शिशुपालवध के वैशिष्ट्य के लिए ही आलोचकों ने इन सूक्तियों को बनाया है। साथ ही विवेचन में व्युत्पत्तिपरकता पद-पद पर स्पष्ट रूप से वर्णित है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि शिशुपालवध महाकाव्य सभी दृष्टिकोण से सर्वश्रेष्ठ है। हालाँकि उनकी रचना की छटा को निहारने की शक्ति अथवा उससे काव्यानन्द प्राप्त करने की क्षमता साधारण काव्यप्रेमियों से ऊपरी वर्ग के काव्यरसिकों में ही है। सचमुच वे माघ महीने की भाँति पण्डितमन्य नवयुवकों को भी कँपा देने वाले थे। यही कारण था कि पंडितलोग आजीवन माघ की इस एकमात्र अनूठी कृति के अनुशीलन में ही अपना समग्र जीवन लगा देते थे। अग्रिम अध्यायों में माघ के काव्य में समागत शास्त्रीय सन्दर्भो की विशद विवेचना की जाएगी।

सन्दर्भ :

१. क०वं०वर्ण०, श्लोक
२. प्र०च०, १४/५-१०
३. क०वं० वर्ण, श्लोक-५
४. क०वं०वर्ण०, श्लोक-३
५. क०वं०वर्ण०, श्लोक-५
६. शिशु०, ३/३६
७. शिशु०, ११/४०
८. शिशु०, ११/४७
९. शिशु०, ८/३१
१०. शिशु०, ४/१७
११. शिशु०, ३/७०
१२. शिशु०, ११/६
१३. शिशु०, ११/६४
१४. महाकवि माघ : जगन्नाथशर्मा पृ० ५८-६४
१५. शिशु॰, २०/४४
१६. शिशु०, २/११२

भूमिका

१७. न्यास०, २/१/१
१८. शिशु०, १६/८०
१९. शिशु०, १/५१
२०. शिशु०, २/११२
२१. शिशु०, १९/१०३
२२. शिशु०, १६/८०
२३. शिशु०, ५/५०
२४. शिशु०, १/३३
२५. शिशु०, ४/५५
२६. शिशु०, १/३२
२७. शिशु०, २/२८
२८. शिशु०, २/८१
२९. शिशु०, २/८२
३०. शिशु०, २/१११
३१. शिशु०, ११/४१
३२. शिशु०, १४/२४
३३. शिशु०, २/९५
३४. शिशु०, १/१०
३५. शिशु०, २/५४
३६. शिशु०, १/७५
३७. शिशु०, ३/२२
३८. शिशु०, ५/१०
३९. शिशु०, ५/६०
४०. शिशु०, ५/३६
४१. शिशु०, ५/४८
४२. शिशु०, ५/४९
४३. शिशु०, २/८३
४४. शिशु०, २/८६
४५. शिशु०, २/८७
४६. शिशु०, ११/६
४७. शिशु०, ११/६४

४८. शिशु०, ४/४७
४९. शिशु०, ४/२०
५०. शिशु०, ६/२०
५१. शिशु०, १/७२
५२. शिशु०, ६/२
५३. शिशु०, ९/६
५४. शिशु०, ४/३७
५५. शिशु०, ११/६४
५६. शिशु०, २/१३
५७. शिशु०, २/३९
५८. शिशु०, २/८२
५९. शिशु०, २/२८
६०. शिशु०, ४/४२

द्वितीय अध्याय
वेदाङ्गों के तत्त्व

वेदाङ्ग का अर्थ

वेदाङ्ग शब्द (वेद+अङ्ग) दो शब्दों से मिलकर बना है। वेदाङ्ग का अर्थ है–**'वेदस्य अङ्गानि'** अर्थात् वेद के अङ्ग। अङ्ग शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ भी यही है–**'अङ्ग्यन्ते ज्ञायन्ते एभिरिति अङ्गानि'** अर्थात् वे उपकारक तत्त्व अङ्ग कहलाते हैं, जिनसे वस्तु के स्वरूप को जानने में सहायता मिलती है। वेदाङ्ग वे साधन हैं, जो वेदों के वास्तविक अर्थ जानने में उपयोगी हैं। वेदाङ्गों के द्वारा मंत्रों का अर्थ, उनकी व्याख्या एवं यज्ञीय कर्मकाण्ड में उनके विनियोग का बोध होता है।

प्रारम्भ में वेदाङ्ग स्वतन्त्र विषय न होकर वेदाध्ययन के विशिष्ट प्रकार थे। तत्पश्चात् ये स्वतन्त्र विषयों के रूप में विकसित हुए। इस प्रकार वैदिकसाहित्य का विस्तार बढ़ने के साथ कर्मकाण्ड की जटिलता और दुरूहता ने वेद के अर्थ को और भी दुर्वोध बना दिया। तब क्रमशः ब्राह्मणसाहित्य के तुरन्त बाद से ही एक नवीन प्रकार की साहित्यरचना का प्रारम्भ हुआ, जो वेद का अर्थ जानने में तथा कर्मकाण्ड के प्रतिपादन में सहायक सिद्ध हुआ। यही साहित्य वेदाङ्ग कहलाया।

इस प्रकार से वैदिकसाहित्य के अन्तर्गत उपनिषदों के अनन्तर षड्-वेदाङ्गों का जो क्रम मिला, वह इस प्रकार है–

'शिक्षा व्याकरणं छन्दों निरुक्तं ज्योतिषं तथा।
कल्पश्चेति षड्ङ्गानि वेदस्याहुर्मनीषिणः॥'

अर्थात् मंत्रों के उचित उच्चारण के लिए शिक्षा का, कर्मकाण्ड और यज्ञीय अनुष्ठान के लिए कल्प का, शब्दों के रूप ज्ञान के लिए व्याकरण का, अर्थज्ञान के लिए शब्दों के निर्वचन के निमित्त निरुक्त का, वैदिक छन्दों की जानकारी के लिए छन्द का तथा अनुष्ठानों के उचित काल के निर्णय के लिए ज्योतिष

का उपयोग किया गया। ये वेदाङ्ग सामान्यतया सूत्रशैली में लिखे गये हैं। वैदिक कर्मकाण्ड, विनियोग एवं यज्ञविधि आदि के नियम बहुत विस्तृत और व्यापक थे। अत: संक्षेप में स्मरणार्थ सूत्रशैली को अपनाया गया।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वेद के स्वरूप तथा अर्थ के संरक्षण के लिए वेदाङ्गसाहित्य का उदय हुआ। षड्वेदाङ्गसाहित्य के विकास की परम्परा महाज्ञानी वेदव्यास के समय से भी पहले देखने को मिलता है। गुरु-शिष्य परम्परा द्वारा ज्ञानार्जन और आत्मचिन्तन के जो अनेक सम्प्रदाय चले आ रहे थे, उन्हीं के द्वारा वैदिक विद्या की विरासत षड्वेदाङ्गों के रूप में विकसित हुई। प्राचीन ऋषि आश्रमों द्वारा ही वेदशाखाओं और वैदिकसाहित्य की विभिन्न ज्ञानधाराओं के बाद वेदाङ्गों की रचना हुई।

षड्वेदाङ्गों के प्रकाश में आ जाने के बाद भारतीय साहित्य में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। इस नये कालखण्ड को 'उत्तर वैदिक युग' के नाम से जाना जाता था। इस युग के ज्ञानियों ने विषय, विचार और रचनाशैली की दृष्टि से एक नये जीवनसाहित्य को जन्म दिया। 'पाणिनिशिक्षा' में एक रूपक देते हुए लिखा गया है–

'छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ उच्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य, मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥'

(पा०शि०-श्लोक ४१,४२)

अर्थात् उस वेद भगवान् के शिक्षा नासिका, कल्प हाथ, व्याकरण मुख, निरुक्त कान, छन्द पैर और ज्योतिष आँख है।

महाकवि माघ ने जिस समय शिशुपालवध की रचना की उस समय वेदाङ्ग पूर्ण विकसित अवस्था में पहुँच चुका था। इस तथ्य का अनुमान माघ के निम्नलिखित पद्य से लगाया जा सकता है–

'अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा।' (२/११२)

कहने का भाव यह है कि महाकवि माघ ने पाणिनि के अष्टाध्यायी का गहन अध्ययन किया होगा क्योंकि 'न्यास' काशिका और महाभाष्य पाणिनीय व्याकरण के अन्यतम प्राचीन ग्रन्थ हैं। इन्होंने अपने ग्रन्थ में व्याकरणशास्त्र का

प्रयोजन भी बतलाया है। पस्पशा शब्द पस्पशाह्निकभाष्य के लिए ही प्रयुक्त किया गया है। महर्षि पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में **'रक्षोहागमलध्वसंन्देहा'** के द्वारा व्याकरणशास्त्र के प्रयोजन की पूर्णता बतलाया है। इसी को पस्पशाह्निकभाष्य भी कहा जाता है। इस आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इन्होंने पतञ्जलि के पस्पशाह्निकभाष्य का भी अध्ययन किया रहा होगा।

'अनुत्सूत्रपदन्यासा' में सूत्रशैली को विशेष महत्त्व देने का आभास होता है, क्योंकि इसकी पुष्टि के लिए उनका एक और पद्य देखने योग्य है–

'संक्षिप्तस्याप्यतोऽस्यैव वाक्यस्यार्थगरीयसः।
सुविस्तरतरा वाचो भाष्यभूता भवन्तु मे॥' (२/२४)

प्रस्तुत श्लोक के द्वारा माघ ने भाष्य की परिभाषा को भी रेखाङ्कित किया है। व्याकरणकार के लिए इस शैली का विशेष महत्त्व है। कहा भी गया है कि–**'अर्द्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यते वैयाकरणाः'** भाव यह कि कम से कम जितने कम पदों में किसी विशाल अर्थ को भरा जा सके उतना ही उस विज्ञान का लाघव माना जाता है। इससे इनके वैयाकरण होने की पुष्टि हो जाती है।

महाकवि माघ ने शिशुपालवध के ग्यारहवें एवं चौदहवें सर्ग में मंत्रों के उचित उच्चारण पर विशेष जोर दिया है। साथ ही यज्ञीय अनुष्ठान का विस्तृत विवेचन किया है। यत्र-तत्र शब्दों का निर्वचन भी किया है। छन्दःप्रयोग में तो वे बहुत ही निपुण जान पड़ते हैं। अनुष्ठानों के लिए उचित कालनिर्णय, शकुन और अपशकुन आदि के विचार को भी वर्णित किया है। इस आधार पर उनके वेदाङ्ग के विषय की जानकारी सिद्ध हो जाती है।

शिशुपालवध के अध्ययन के पश्चात् उनके पाण्डित्यप्रदर्शन को देखने पर भी यह अनुमान लगाया जा सकता है कि महाकवि माघ सम्पूर्णशास्त्रों के ज्ञाता थे। शिशुपालवध में वेदाङ्गों के सन्दर्भ में जो तथ्य मिलते हैं, उसके अनुसार उनका निम्नलिखित प्रकार से वर्णन किया जा सकता है–

शिक्षा

शिक्षा का अर्थ है–वर्णोच्चारण की विधि ज्ञात कराना। सायण ने ऋग्वेदभाष्य में **'स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा'** इस प्रकार शिक्षा का अर्थ दिया है। तात्पर्य यह है कि जिसमें स्वर एवं वर्ण आदि के उच्चारण की शिक्षा दी जाती है उसे शिक्षा कहते हैं। राजशेखर

ने शिक्षा का स्वरूप इस प्रकार बताया है– **'तत्र वर्णानां स्थानकरणप्रयत्नादिभिः निष्पत्तिनिर्णयनी शिक्षा आपिशलीयादिका'** अर्थात् जिसके द्वारा वर्णों के स्थान, करण, प्रयत्न एवं उच्चारण आदि के निष्पत्ति का निर्णय किया गया है, वह शिक्षा है। जैसे–आपिशल, याज्ञवल्क्य और पाणिनि आदि।

महाकवि माघ ने–मंत्रोच्चारण की विशेष निपुणता का उल्लेख शिशुपालवध में किया है, जो इस प्रकार है–

'शब्दितामनपशब्दमुच्चकै-
र्वाक्यलक्षणविदोऽनुवाक्यया।
याज्ययायजनकर्मिणोऽत्यज-
न्द्रव्यजातमपदिश्य देवताम्।।'[२]

उच्चारण का अत्यन्त महत्त्व है। पाणिनि ने इसीलिए स्पष्टतः कहा है–

'मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा
मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति
यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्।।'[३]

अर्थात् स्वर या वर्ण के उच्चारण दोष के कारण मंत्र अपने वास्तविक अर्थ को नहीं प्रकट करता और इस प्रकार वह वाग्वज्र बनकर उसी प्रकार यजमान का नाश करता है, जैसे–वृत्रासुर का हुआ था।

महाकवि माघ ने भी इस तथ्य की पुष्टि की है, जो इस प्रकार है–

'संशयाय दधतोः सरूपतां
दूरभिन्नफलयोः क्रियां प्रति।
शब्दशासनविदः समासयो-
र्विग्रहं व्यवससुः स्वरेण ते।।'[४]

तात्पर्य यह कि स्वर या वर्ण के शुद्ध उच्चारण नहीं होने पर दोषयुक्त मंत्र वास्तविक अर्थ को नहीं कहता है अर्थात् मंत्रोक्त फल नहीं देता है अपितु वह मन्त्रात्मक वाग्वज्र यजमान का ही नाश कर देता है। जिस प्रकार स्वर के दोष से यज्ञ करने वाला इन्द्र का शत्रु ही मारा गया।

तैत्तिरीय–उपनिषद् में शिक्षा के छः अङ्गों के नाम दिये गये हैं–वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम और सन्तान। **'वर्णः, स्वरः, मात्रा, बलं, साम, सन्तानः, इत्युक्तः शिक्षाध्यायः।'**[५]

वर्ण से अभिप्राय अक्षर से है। **'त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वावर्णाः शम्भुमते मताः'**[६] अर्थात् संस्कृत वर्णमाला में ६३ अथवा ६४ वर्ण हैं। वेदज्ञान के लिए वर्णमाला का शुद्ध ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है। इस सम्बन्ध में माघ का निम्नलिखित श्लोक अवलोकनीय है–

'वर्णैः कतिपयैरेव ग्रथितस्य स्वरैरिव।
अनन्ता वाङ्मयस्याहो गेयस्येव विचित्रता॥'[७]

मल्लिनाथ ने अपनी टीका में **'कतिपयैः परिमितैर्वर्णैः पञ्चाशतैव मातृकाक्षरैः'** अर्थात् कतिपय बावन या पचास अक्षरों का उल्लेख किया है। शिशुपालवध के २/७ श्लोक में माघ ने **'शुद्धवर्णा सरस्वती'** अर्थात् **'शुद्धवर्णा स्फुटाक्षरत्वात् स्वच्छकान्तिरभवत्'**, इस प्रकार से व्याख्या किया है। भाव यह है कि महाकवि माघ को वर्णमाला का शुद्ध ज्ञान था। यहाँ उपमान के माध्यम से यह तथ्य उद्घाटित हुआ है।

स्वर तीन प्रकार के होते हैं–उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। वेदों में स्वरभेद से अर्थभेद हो जाता है। महाकवि माघ को स्वरभेद का अच्छा ज्ञान था, जैसा कि उनके निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट है–

'तदीशितारं चेदीनां भवांस्तमवमस्त मा।
निहन्त्यरीनेकपदे य उदात्तः स्वरानिव॥'[८]

मल्लिनाथ ने अपनी टीका में **'अनुदात्तत्वान्नेडागमः कुतः। यश्चैद्यः उदात्तः स्वराननुदात्तानिवारीनेकपदे एकस्मिन्पदन्यासे, सुप्तिङन्तलक्षणे च निहन्ति हिनस्ति, नीचैः करोति च। अतिशूरत्वात्। अनुदात्तं पदमेकवर्जम्** (६/१/१५८) इति परिभाषावलाच्चेति भावः' लिखा है।

यहाँ पर उपमान के माध्यम से उदात्त स्वर **'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्'** इस परिभाषा से अनुदात्त और स्वरित स्वर को एक ही पद में नीचा कर देता है। इस प्रकार स्वरभेद से अर्थभेद हो जाता है। पुनश्च–

'प्रतिशरणमशीर्णज्योतिरग्न्याहितानां
विधिविहितविरिब्धैः सामधेनीरधीत्य।
कृतगुरुदुरितौघध्वंसमध्वर्युवर्यै-
र्हुतमयमुपलीढे साधु सान्नाय्यमग्निः॥'[९]

अर्थात् श्रेष्ठ पुरोहित ब्राह्मण लोग शास्त्रानुमोदित उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित

स्वरों के उच्चारण के साथ पापों को नाश करने वाले समिधा छोड़ने के मंत्रों का पाठ करके सम्यक् प्रकार से हवि डालने लगे।

इस उद्धरण के आधार पर महाकवि माघ के स्वर के उच्चारण के ज्ञान की पुष्टि हो जाती है। वे स्वर परिवर्तन के कारण होने वाले अर्थ परिवर्तन के नियमों से भी परिचित थे। अतएव उनके मतानुसार भी स्वर अथवा वर्ण के अशुद्ध उच्चारण से मंत्र यथावत् फल न देकर विपरीत फल देते हैं। अतः किसी कार्य के प्रति भिन्न-भिन्न फल प्रदान करने वाले दो समासों के विग्रह का स्वर द्वारा ही निर्णय किया जाता था, जैसा कि स्पष्ट है–

'संशयाय दधतोः सरूपतां
दूरभिन्नफलयोः क्रियां प्रति।
शब्दशासनविदः समासयो-
र्विग्रहं व्यवससुः स्वरेण ते॥' (शिशु०, १४/२४)

अर्थात् मंत्रों में जहाँ-कहीं ऐसे सन्देह उत्पन्न करने वाले समास आ जाते थे, जिनका विग्रह कई प्रकार से हो सकता था, तो ऐसे स्थलों पर व्याकरणशास्त्र के विद्वान पुरोहित लोग उनका उदात्तादि स्वर बदलकर अपने यजमान के प्रकृत कर्म के अनुकूल अर्थ का निश्चय विग्रह द्वारा कर रहे थे।

स्वरों के उच्चारण में लगने वाले समय को मात्रा कहते हैं। ये तीन है–ह्रस्व, दीर्घ, और प्लुत। ह्रस्व की एक मात्रा, दीर्घ की दो मात्रा और प्लुत की तीन मात्रा होती है। महाकवि माघ को मात्रा का अच्छा ज्ञान था। सम्पूर्ण शिशुपालवध छन्दोबद्ध है। बिना मात्राज्ञान के कोई भी श्लोक छन्दोबद्ध बन ही नहीं सकता।

वर्णोच्चारण में होने वाले प्रयत्न तथा उनके उच्चारण स्थान को बल कहते हैं। प्रयत्न दो हैं–आभ्यन्तर और बाह्य। स्थान-कण्ठ, तालु और ओष्ठ आदि आठ प्रकार के हैं। महाकवि माघ को बल के सम्बन्ध में भी भलीभाँति जानकारी थी, जैसा कि उनके निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट है–

'प्रकृतजपविधीनामास्यमुद्रश्मिदन्तं
मुहुरपिहितमोष्ठ्यैरक्षरैर्लक्ष्यमन्यः।
अनुकृतिमनुवेलं घट्टितोद्घट्टितस्य
व्रजति नियमभाजां मुग्धमुक्तापुटस्य॥'[१०]

अर्थात् नियमानुसार मंत्रों का जाप करने वाले तपस्वी लोग (उ ऊ प फ

ब भ म ≍प ≍फ-इन) जब ओष्ठ्य अक्षरों का उच्चारण करते हैं, तब उनके मुख का भीतरी भाग बार-बार खुलता और बन्द हो जाता है और जब अन्य अक्षरों का उच्चारण करते हैं, तब मुख के भीतर का भाग खुल जाता है और उनके दांतों की स्वच्छ किरणें चारों ओर फैल जाती है। इस प्रकार उनका मुख बार-बार उसी प्रकार खुलता और बन्द होता है, जिस तरह सीपी का मुँह खुलता और बन्द होता है।

समविधि से तात्पर्य स्पष्ट एवं सुस्वर से वर्णोच्चारण। वर्णो का स्पष्ट उच्चारण हो, किसी वर्ण को दबाकर न बोले, बहुत शीघ्रता से न बोले, स्वर एवं अर्थज्ञान के सहित प्रत्येक वर्ण का उच्चारण करे।[११] महाकवि माघ का निम्नलिखित श्लोक ध्यातव्य है–

'सप्तभेदकरकल्पितस्वरं
साम सामविदसङ्गमुज्जगौ।
तत्र सूनृतगिरश्चसूरयः
पुण्यमृग्यजुषमध्यगीषत।।'[१२]

अर्थात् सामवेद के ज्ञाता (उद्गाता) लोग हाथ के सञ्चालन विशेष से व्यक्त किये गये निषादादि (या कष्ट, मन्द आदि) सात स्वरों वाले सामवेद को स्खलनरहित अर्थात् कहीं पर स्खलित नहीं होते हुए उच्च स्वर से गाने लगे। सत्य तथा प्रिय बोलने वाले (होता लोग) कल्याणकारक ऋग्वेद और यजुर्वेद को पढ़ने लगे।

हस्तसञ्चालन के द्वारा स्वरोच्चारण नहीं करने पर उच्चारण करने वाले का वियोनि में जन्म होता है तथा हस्तसञ्चालन के द्वारा स्वर, वर्ण तथा अर्थ के साथ मंत्रों का उच्चारण करने वाला ऋग्वेदादि वेदों से पवित्र होकर ब्रह्मलोक में पूजित होता है, ऐसा पाणिनि भगवान् ने कहा है। यथा–

'हस्तहीनं तु योऽधीते स्वरवर्णविवर्जितम्।
ऋग्यजुःसामभिर्दग्धोवियोनि- मधिगच्छति।।
हस्तेन वेदं योऽधीते स्वरवर्णार्थैसंयुतम्।
ऋग्यजुःसामभिःपूतो ब्रह्मलोके महीयते।।'[१३]

इस प्रकार युधिष्ठिर के यज्ञ में सामवेद के गान करने वाले ऋत्विज् लोग हस्तसञ्चालन के द्वारा स्वरों का सङ्केत करते हुए उच्चारण करते थे।

संहितापाठ अर्थात् पदपाठ में प्रयुक्त शब्दों में संधि-नियमों का लगाना, सन्धि नियमों का ज्ञान और उनका यथास्थान प्रयोग करना आदि में महाकवि माघ का निम्नलिखित श्लोकद्रष्टव्य है–

'परितः प्रमिताक्षराऽपि सर्वे
विषयं व्याप्तवती गता प्रतिष्ठाम्।
न खलु प्रति हन्यते कुतश्चित्-
परिभाषेव गरीयसी यदाज्ञा॥'[१४]

अर्थात् जिस प्रकार व्याकरणशास्त्र के **'इको गुणवृद्धिः'** इत्यादि परिभाषा सूत्र यद्यपि थोड़े अच्छरों वाले होते हैं तथापि उनका अर्थ बहुत होता है, उनका सभी परवर्ती सूत्रों में अनुवृत्ति होती है और उसकी सर्वत्र प्रतिष्ठा होती है तथा कहीं उसका अवरोध नहीं होता। इसे उपमान के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि शिक्षा (वेदाङ्ग) का माघ को सम्यक् ज्ञान था। उन्होंने अपने इस ज्ञान को अपने महाकाव्य में यत्र-तत्र व्यक्त किया है।

व्याकरण

जिस शास्त्र के द्वारा शब्दों (पदों) की मीमांसा की जाती है, जिसके द्वारा प्रकृति-प्रत्यय का विवेचन किया जाता है, वह व्याकरणशास्त्र कहलाता है। पाणिनीय शिक्षा ने व्याकरण को **'मुखं व्याकरणं स्मृतम्'** अर्थात् वेद पुरुष का मुख माना है। जिस प्रकार व्यक्ति के शरीर में मुख अभिव्यक्ति एवं विश्लेषण का साधन है उसी प्रकार व्याकरण भी पद-पदार्थ एवं वाक्य-वाक्यार्थ की अभिव्यक्ति तथा प्रकृति-प्रत्यय के विश्लेषण का साधन है। व्याकरण का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है-**'व्याक्रियन्ते विविच्यन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम्'** अर्थात् जिसके द्वारा प्रकृति-प्रत्यय का विवेचन किया जाता है, वह व्याकरण है। यजुर्वेद में व्याकरण के सूक्ष्म रूप का वर्णन इस प्रकार है-

'दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः।
अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्राद्धां सत्ये प्रजापतिः॥'[१५]

अर्थात् प्रजापति ने रूपों में सत्य और अनृत (स्फोट और ध्वनि) का व्याकरण (विश्लेषण) किया है। उसने असत्य में अश्रद्धा और सत्य में श्रद्धा की प्रतिष्ठा की है।

राजशेखर ने **'व्याकरणे शब्दानामन्वाख्यानम्'** अर्थात् व्याकरण शब्दों की व्याख्या करता है, इस प्रकार किया है।

महाकवि माघ ने उपमान के माध्यम से व्याकरण की भूमिका निम्नलिखित प्रकार से वर्णित की है–

'निपातितसुहृत्स्वामिपितृव्यभ्रातृमातुलम्।
पाणिनीयमिवालोकि धीरैस्तत्समराजिरम्।।'[१६]

अर्थात् गिराये गये अथवा वीरगति को प्राप्ति हुए मित्र, स्वामी, चाचा, भाई और मामा वाले (पक्षा०-निपातन किये गये **'सुहृद्दुर्दौमित्रामित्रयोः (५/४/१५०) इति हृदयशब्दस्य हृद्भावो निपातितः। 'स्वामिन्नैश्वर्ये (५/२/१२६) इति मत्वर्थीनिपातः। 'पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः((४/२/३६) इति व्यडुलजन्तनिपाताः।** अर्थात् सुहृत, स्वामी, पितृव्य, भ्रातृव्य और मातुल शब्द जिसमें ऐसे उस युद्धाङ्गण को धीर (धैर्यवान, पक्षा० विद्वान्) लोगों ने पाणिनीय 'पाणिनिमुनिरचित अष्टाध्यायी' के समान देखा। लक्षण के अभाव में शब्दों की सिद्धि के लिए सूत्रों में सिद्ध शब्दों का ज्यों का त्यों प्रतिपादन करने को 'निपातन्' कहा है।

महाकवि माघ व्याकरण की परिभाषा की अर्थगुरुता को ध्यान में रखकर राजा को व्याकरण की परिभाषा के समान बताया है, जैसा कि निम्नलिखित पद्य से स्पष्ट है–

'परितः प्रमिताक्षराऽपि सर्वे
विषयं व्याप्तवती गता प्रतिष्ठाम्।
न खलु प्रतिहन्यते कुतश्चित्-
परिभाषेव गरीयसी यदाज्ञा।।'[१७]

अर्थात् **'परिभाषा ह्येकदेशे स्थित्वा सर्वशास्त्रमभिज्वलयति दीपवदिति भाष्यकारः।' 'इकोगुणवृद्धी (१/१/३) इत्यादिका परिभाषा।' सिचि वृद्धिः' (७/२/१) इत्यादिर्विषयः।** जिस प्रकार व्याकरणशास्त्र के 'इकोगुणवृद्धी' इत्यादि परिभाषा सूत्र यद्यपि थोड़े अक्षरों वाले होते हैं तथापि उनका अर्थ बहुत होता है, उसकी सभी परवर्ती सूत्रों में अनुवृत्ति होती है और उसकी सर्वत्र प्रतिष्ठा होती है, कहीं उसका अवरोध नहीं होता, उसी प्रकार राजा शिशुपाल की आज्ञा यद्यपि स्वल्पाक्षरों वाली होती है तथापि उसका अर्थ बहुत प्रभावकारी होता है, सम्पूर्ण राष्ट्र की समस्त दिशाओं में एवं सब स्थानों में वह प्रतिष्ठा पाती है और कहीं भी प्रतिहत नहीं होती।

पतञ्जलि ने अष्टाध्यायीसूत्र पर आधारित महाभाष्य लिखा है, उसे पस्पशाह्निक कहते हैं। महाकवि माघ ने एकत्र व्याकरणशास्त्रीय उपमान के माध्यम से इसका सङ्केत किया है, जो द्रष्टव्य है–

'अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा॥'[११]

मल्लिनाथ ने इस श्लोक की राजनीति और व्याकरणपरक व्याख्या की है और वृत्ति शब्द से अष्टाध्यायी की वामनजयादित्यरचित 'काशिकावृत्ति' अर्थ लिया है–**'वृत्तिः काशिकाख्यसूत्रव्याख्यानग्रन्थविशेषः'** साथ ही न्यास का अर्थ–**'न्यासो वृत्तिव्याख्यानग्रन्थविशेषः'** अर्थात् वृत्तिव्याख्यानग्रन्थ दिया है। बाण ने भी हर्षचरित में श्लेष के द्वारा **'कृतगुरुपदन्यासा लोक इव व्याकरणेऽपि'** नामक एक न्यासग्रन्थ का उल्लेख किया है। मल्लिनाथ के अनुसार–जिस प्रकार सूत्र (पाणिनि प्रणीत सूत्रों) अविरुद्ध पद (कृदन्त, तद्धितान्त और समस्त आदि पद) तथा न्यास (काशिकावृत्ति का व्याख्यानग्रन्थ) है, जिसमें ऐसी सुन्दर वृत्ति (काशिका सूत्रों के व्याख्यानात्मक ग्रन्थ) वाली तथा श्रेष्ठनिबन्धन (पतञ्जलि-मुनिप्रणीत महाभाष्यग्रन्थावली) भी शब्दविद्या (व्याकरणशास्त्र) पस्पश (व्याकरण के प्रयोजन को निर्दिष्ट करने वाला महाभाष्य का पस्पश नामक प्रथम आह्निक के बिना नहीं शोभती। भाव यह कि उसके न जानने से लोगों की अनुत्सूत्रपदन्यासा सदृवृत्तिः सन्निबन्धना गुणयुक्त भी व्याकरण के पढ़ने में प्रवृत्ति ही नहीं होती। अतः उसके बिना जिस प्रकार राजनीति में पग-पग पर नीतिशास्त्रानुकूल ही चलते हैं, भृत्यादि वर्ग की जीविका यथोचित है तथा कार्य के सिद्ध होने पर कार्यकर्त्ताओं की उचित भूमि, सोना, चांदी एवं घोड़ा आदि पारितोषिक रूप में देने की व्यवस्था है। इन गुणों से युक्त भी राजनीति गुप्तचरों की नियुक्ति से शून्य होने पर नहीं शोभती है।

पतञ्जलि ने महाभाष्य में–**'रक्षोहागमलध्वसन्देहाः प्रयोजनम्'** अर्थात् रक्षा (वेदों की रक्षा), ऊह (यथास्थान विभक्तियों आदि का परिवर्तन, आगम (निष्काम भाव से वेदादि का अध्ययन), लघु (संक्षेप में शब्दज्ञान), असन्देह (सन्देहनिराकरण) ये पाँच प्रकार के प्रयोजन बताये हैं, जिसका उल्लेख माघ ने भी किया है।

महाकवि माघ ने महाभाष्य के **'रक्षार्थं वेदानां अध्येयं व्याकरणम्'** के अनुसार वेदमंत्रों की रक्षा करना व्याकरण का एक प्रयोजन माना है; जैसा कि निम्नलिखित श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण ने नारदजी के लिए कहा है–

'कृतः प्रजाक्षेमकृता प्रजासृजा
सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना।
सदोपयोगेऽपि गुरुस्त्वमक्षयो
निधिः श्रुतीनां धनसंपदामिव॥'[२०]

भाव यह कि जिस प्रकार सन्तानों का कल्याण चाहने वाला पिता अपनी धनसम्पत्ति को लोहे आदि के बने सुदृढ़ पात्रों में सुरक्षित रखता है। ऐसा करके वह अपने पुत्रों की ओर से निश्चिन्त हो जाता है, क्योंकि ऐसी सुरक्षित निधि उचित ढंग से व्यय करने पर भी कभी नष्ट नहीं होती है। उसी प्रकार समस्त मानव जाति का कल्याण चाहने वाले ब्रह्मा ने आप जैसे सुयोग्यपात्र में वेद रूप निधि को सुरक्षित रखकर स्वयं निश्चिन्त हो गये हैं। उन वेदों का उपदेश आदि माध्यम से चाहे कितना उपयोग किया जाय परन्तु वह कभी समाप्त नहीं होगा। अतः आप उसके अक्षयनिधि हैं।

माघ ने महाभाष्य के **'ऊहश्चतर्कः'** के अनुसार यज्ञ की आवश्यकता के अनुसार वेदमन्त्रों के पदों का भिन्न-भिन्न विभक्तियों तथा भिन्न-भिन्न लिङ्गों में कल्पना करना ही ऊह है और यह व्याकरणज्ञान के द्वारा ही सम्भव है। उदाहरणार्थ–

'नाञ्जसा निगदितुं विभक्तिभि-
र्व्यक्तिभिश्च निखिलाभिरागमे।
तत्र कर्मणि विपर्यणीनमन्
मन्त्रमूहकुशलाः प्रयोगिणः॥'[२१]

अर्थात् उस यज्ञ क्रिया में ऊह (दूसरे रूप में प्रतिपादित शब्दों का लिङ्ग-वचनादि के भेद से परिवर्तन करने) में निपुण प्रयोक्ता (ऋत्विज्) के द्वारा भी शास्त्र में सब विभक्तियों (सुप्तिङ्रूप विभक्तियों, एकवचन-द्विवचनादि वचनों और पुल्लिङ्गादि तीन लिङ्गों) से कहना शक्य नहीं है, (अतएव आवश्यकतानुसार उन-उन स्थलों में) मंत्र (के विभक्ति, वचनों तथा लिङ्गों) को परिवर्तित कर दिया गया।

महाकवि माघ ने श्रुतिप्रामाण्य के कारण व्याकरण अध्ययन पर बल दिया है–

'शुद्धमश्रुतिविरोधि विभ्रतं
शास्त्रमुज्ज्वलमवर्णसङ्करैः।
पुस्तकैः सममसौ गणं मुहु-
र्वाच्यमानमशृणोद्द्विजन्मनाम्॥"[२२]

भाव यह कि ब्राह्मण लोग गोष्ठी (या स्वस्त्ययनपाठ) कर रहे थे, जो पवित्र, सदाचारी एवं वेदसम्मत मीमांसादि शास्त्रों से युक्त तथा कुलीन थे और असङ्कीर्ण अक्षरों वाले, श्रवणमधुर, व्याख्या किए जाते हुए (या-वेदानुकूल पुराणादिशास्त्र के अनुसार वंशादिक्रम से प्रस्तूयमान) पुस्तकों से युक्त थे, अर्थात् युधिष्ठिर ने दान देने के समय में प्रत्येक ब्राह्मण के गुणों एवं उनकी गोष्ठियों को सुना।

संक्षेप में समस्तशब्द ज्ञान कराना व्याकरण का एक प्रयोजन है, जैसा कि महाकवि माघ के निम्नलिखित श्लोकों से स्पष्ट है–

'नैतल्लघ्वपि भूयस्या वचो वाचातिशय्यते।
इन्धनौघधगप्यग्निस्त्विषा नात्येति पूषणम्॥'[२३]

अर्थात् थोड़े (परिमिताक्षर) भी इस (कृष्णोक्त) वचन का अधिक विस्तृत वचन से भी तुलना नहीं की जा सकती, क्योंकि इन्धनराशि को जलाने वाली भी अग्नि तेज से सूर्य का उल्लंघन नहीं करती है। इसी प्रकार **'अर्द्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः'** की अन्वर्थता अधोलिखित पद्य में दिखाई देती है–

'संक्षिप्तस्याप्यतोऽस्यैव वाक्यस्यार्थगरीयसः।
सुविस्तरतरा वाचो भाष्यभूता भवन्तु मे॥'[२४]

भाव यह कि जिस प्रकार सूत्र बहुत थोड़े अक्षरों में परन्तु अर्थगौरव से युक्त और सिद्धान्त रूप में कहा जाता है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता और उन सूत्रों के अनुकूल ही कार्य का प्रतिपादन करने वाला विस्तृत भाष्य होता है, उसी प्रकार अल्पाक्षर होते हुए भी अर्थगौरव से पूर्ण श्रीकृष्णोक्त वचन के सिद्धान्त को ही प्रतिपादन करने वाला मैं विस्तृत वचन कहूँगा।

महाकवि माघ ने महाभाष्य के **'व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिः न हि सन्देहादलक्षणम्'** के अनुसार पदों के अर्थ के सम्बन्ध में सन्देह का निराकरण भी व्याकरणज्ञान से ही सम्भव है। जैसे–

'संशयाय दधतोः सरूपतां
दूरभिन्नफलयोः क्रियां प्रति।
शब्दशासनविदः समासयो-
र्विग्रहं व्यवससुः स्वरेण ते॥'[२५]

अर्थात् व्याकरणशास्त्र के ज्ञाता वे (ऋत्विज् लोग) सन्देह (उत्पन्न करने) के लिए समान रूप वाले अर्थात् समान रूप होने से सन्देहोत्पादक (किन्तु) कार्य के प्रति भिन्न फल देने वाले दो समासों के विग्रह का स्वर के द्वारा निर्णय करते थे।

महाकवि माघ का निम्नलिखित श्लोक व्याकरण के जटिल प्रयोगों के कारण पाण्डित्यप्रदर्शन की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है-

'पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दनं
मुषाण रत्नानिहरामराङ्गना।
विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली-
य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः॥'[२६]

अर्थात् जिस रावण ने नमुचिशत्रु (इन्द्र) के साथ विरोध कर बार-बार 'अमरावती' पुरी को घेर लिया, 'नन्दन' बन को छिन्न-भिन्न कर दिया, रत्नों को चुरा लिया और देवाङ्गनाओं का अपहरण कर लिया, इस प्रकार उसने प्रतिदिन स्वर्ग को पीड़ित किया। इस पद्य में प्रयुक्त लुनीहि, मुषाण, अवस्कन्दादि क्रियाओं की व्याख्या मल्लिनाथ ने इस प्रकार से की है-**लुनीहिचिच्छेद।' ई हल्यघोः' ६/४/११३) इतीकारः। मुषाण-'मुषस्तेये' 'हलः श्नः शानज्झौ' (३।१।८३) इति श्नः शानजादेशः। अत्रावस्कन्देत्यादौ 'क्रियासमभिहारे लोट् लोटो हिस्वौ वा च तध्विमोः' ३/४/२) इत्यनुवृत्तौ 'समुच्चयेऽन्यतरस्याम' (३/४/३) इति विकल्पेन कालसामान्ये लोट्। तस्य यथोपग्रहं सर्वतिङादेशो हिस्वौ च। अवस्कन्दनादिक्रिया विशेषाणां समुच्चयः क्रिया समभिहारः। अत्र तिङ्वैचित्र्यात् सौशब्दाख्यो गुणः। 'सुपांतिङ्ां परावृत्तिः सौशब्दम्'** इति लक्षणात्' इस प्रकार से मल्लिनाथ की इस व्याख्या से माघ का व्याकरणविषयक पाण्डित्य स्पष्ट होता है।

महाकवि माघ निम्नलिखित पद्य में सुबन्ततिङन्त रूप एक पद में उदात्त-स्वर, अनुदात्तस्वर एवं स्वरित स्वर को किस प्रकार वाधित करता है? इसे बताना चाहते हैं-

'तदीशितारं चेदीनां भवांस्तमवमस्त मा।
निहन्त्यरीनेकपदे य उदात्तः स्वरानिव॥'[२७]

अर्थात् इस कारण आप चेदिपति (शिशुपाल) का अपमान (उसके साथ युद्ध करने का उपक्रम) न करें, जो (शिशुपाल) एक पद (स्थान या व्यवसाय-उद्योग) में शत्रुओं को उस प्रकार मारता है, जिस प्रकार (सुबन्ततिङन्तरूप) एक पद में (**'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्'** ६/१/१५८) के अनुसार (उदात्तस्वर) (अनुदात्त-स्वरित स्वर को) मारता-वाधित करता है। इस प्रकार माघ के उदात्तादि स्वरों के ज्ञान की परिकल्पना की जा सकती है।

महाकवि माघ अधोलिखित पद्य में व्याकरण के लिट् आदि के कुछ ठोस प्रयोग एकत्र करके माला रूप में किस प्रकार गुम्फित करते हैं? इसे बताना चाहते हैं–

'सस्नुः पयः पपुरनेनिजुरम्बराणि
जक्षुर्विसं धृतविकासिबिसप्रसूनाः।
सैन्याः श्रियामनुपभोगनिरर्थकत्व-
दोषप्रवादममृजन्नगनिम्नगानाम्॥'[२८]

अर्थात् सैनिकों ने स्नान किया, पानी पिया, कपड़े धोए तथा खिले हुए कमलों को ग्रहण किये हुए उन सैनिकों ने मृणालदण्डों को खाया। इस प्रकार नदियों की सम्पत्ति का भोग नहीं होने से वे सम्पत्तियाँ निरर्थक हैं, इस लोक-निन्दारूप दोष को उन्होंने दूर कर दिया। मल्लिनाथ ने अपनी टीका में **'सस्नुः स्नानं चक्रुः। पयः पानीयं पपुः। ष्णा शौचे, पा पाने लिट्। अम्बराण्यनेनिजु-रक्षालयन्। 'णिजिर शौचे'। जुहोत्यादित्वाल्लडि० 'श्लौ' (६/१/१०) इति द्विर्भावः। 'सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च' (६/४/१०९) इति झेर्जुसादेशः। 'णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ' इत्यभ्यासस्यगुणः। घसेर्लिटि 'गमहन' (६/४/१०९) इत्यादिना उपधालोपे चुत्वं 'शासिवसिघसीनां च' (८/३/६०) इति षत्वम्। स्नानाद्युपभोगेनोक्तनैरर्थ्यं निराचक्रुरित्यर्थः** इस प्रकार लिखा है। इससे महाकवि माघ के व्याकरण विषयक पाण्डित्य का ज्ञान प्राप्त होता है।

महाकवि माघ निम्नलिखित श्लोक में 'लट् स्मे' को भूतार्थे लट् के रूप में प्रयोग कर अपने वैयाकरणपाण्डित्य का परिचय दिया है–

'क्षिप्तं पुरो न जगृहे मुहुरिक्षुकाण्डं-
नापेक्षतेस्म निकटोपगतां करेणुम्।
सस्मार वारणपतिः परिमीलिताक्ष-
मिच्छाविहारवनवासमहोत्सवानाम्॥'[२९]

अर्थात् कोई गजराज सामने डाले गये गन्ने को (खाने के लिए) नहीं ग्रहण किया तथा समीप में स्थित हथिनी की इच्छा नहीं किया, किन्तु आनन्दप्रद स्वेच्छा विहार वाले वनवास को ही नेत्रों को बन्द किए हुए स्मरण करता रहा। मल्लिनाथ ने अपनी टीका में–**"निकटोपगतां समीपस्थां करेणुं करिणीं च नापेक्षते स्म नेच्छति स्म। 'लट् स्मे' (३/२/११८) इति भूतार्थे लट्। किन्तु परिमीलिताक्षं यथा तथेति स्मृत्यनुभावः'** लिखा है। इस प्रकार महाकवि माघ ने अपने व्याकरण सम्बन्धी विद्वता का परिचय दिया है।

महाकवि माघ ने अधोलिखित पद्य में **'धातूनामनेकार्थः'** अर्थात् धातुओं के अनेक अर्थ हैं। इस वैयाकरणसिद्धान्त के अनुसार भू आदि धातुओं में अनेक अर्थ सर्वदा ही विद्यमान रहते हैं, जो व्यवहार में प्रयुक्त न होने से अप्रकाशित रहते हैं और जब उपसर्ग के साथ उन धातुओं का प्रयोग किया जाता है तब वे अर्थ प्रकाशित हो जाते हैं, इस तथ्य का विवेचन किया है–

'सन्तमेव चिरमप्रकृतत्वाद-
प्रकाशितमदिद्युतदङ्गे।
विभ्रमं मधुमदः प्रमदानां
धातुलीनमुपसर्ग इवार्थम्॥'[३०]

अर्थात् मद्य के नशे ने प्रमदाओं के अङ्गों में चिरकाल से विद्यमान हो, किन्तु प्रयुक्त नहीं होने से अप्रकाशित विलास को उस प्रकार प्रकट कर दिया, जिस प्रकार (भू आदि) धातुओं में चिरकाल से अन्तर्हित हो किन्तु प्रयोग नहीं करने से अप्रकाशित अर्थ को (प्र, परा आदि) उपसर्ग प्रकाशित कर देते हैं।

महाकवि माघ ने व्याकरण सम्मत नवीन शब्दों का बाहुल्येन प्रयोग किया है–विभराम्बभूवे, पारेसमुद्रग, मध्येजलम् वैरायितारः, अघटतेः, निषेदिवान् तथा न्यधापिषाताम् इत्यादि प्रयोग इनके निदर्शन हैं। समभिहार में लोट् तथा स्मरणार्थ धातुओं में लङ् के स्थान पर लृट् लकार् का प्रयोग बहुधा देखने को मिलता है। इनके इन पाण्डित्यपूर्ण प्रयोगों के कारण ही उन्हें महावैयाकरण के विशेषण से विभूषित किया जाता रहा है। इनके व्याकरण सम्बन्धी पाण्डित्य की निपुणता निम्नलिखित श्लोक में भी देखने को मिलती है–

'केवलं दधति कर्तृवाचिनः
प्रत्ययानिह न जातु कर्मणि।
धातवः सृजतिसंहृशास्तयः
स्तौतिरत्र विपरीतकारकः॥'[३१]

अर्थात् सृज् (सृज् विसर्गे) सहृ ('सम-उपसर्ग पूर्वक हञ् हरणे') और शास् (शासु अनुशिष्टौ) धातु इन (श्रीकृष्ण भगवान्) के विषय में केवल कर्तृवाची प्रत्ययों को धारण करते हैं ('हरिः सृजति, हरिः संहरति एवं हरिः शास्ति' इस प्रकार प्रयुक्त होने से वे सर्वदा कर्तृवाचक प्रत्यययुक्त ही रहते हैं)। किसी समय कर्म में प्रत्ययों को नहीं धारण करते हैं। (कश्चित् हरिं सृजति, हरिं संहरति और हरिं शास्ति इस प्रकार कर्मवाचक प्रत्यय युक्त कभी नहीं प्रयुक्त होते; क्योंकि श्रीकृष्ण भगवान् की रचना, संहार या शासन करने वाला संसार में कोई भी नहीं है); परन्तु स्तु (ष्टुञ् स्तुतौ) धातु इनके विषय में विपरीत कारक वाला रहता हैं (जनो हरिं स्तौति) इस प्रकार कर्मवाचक प्रत्यय से ही युक्त रहता है, 'हरिः कञ्चित् स्तौति' इस प्रकार कर्तृवाचक प्रत्यय से युक्त नहीं होता, क्योंकि इन हरि की सब स्तुति करते हैं, हरि किसी की स्तुति नहीं करते हैं।

इस प्रकार से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि महाकवि माघ ने अपने महावैयाकरण के रूप को प्रायः प्रत्येक सर्ग में उद्धृत किया है। नूतन प्रयोगों एवं सिद्धान्तों से यह सिद्ध कर दिया है कि साहित्य के समान ही व्याकरण पर भी उनका असाधारण अधिकार था। व्याकरण की नीरस परिभाषाओं का उन्होंने अपनी मनोहर उपमाओं में सुन्दर प्रयोग किया है। संस्कृत व्याकारण के सूक्ष्म से सूक्ष्म नियमों का भी एकाध स्थलों को छोड़कर कहीं भी उल्लंघन नही किया है, और ऐसे-ऐसे शब्दों को गढ़कर प्रयोग किया है कि छन्दों की श्रुति मधुरता और भी बढ़ गई है। कवि के व्याकरण सम्बन्धी पाण्डित्य के प्रदर्शन के लिए कदाचित् ही कोई ऐसा श्लोक हो जिसमें उसने किसी सुन्दर, सुघड़ किन्तु नूतन शब्द का प्रयोग न किया हो।

छन्द

पाणिनीय शिक्षा के **'छन्दः पादौ तु वेदस्य'** के अनुसार छन्द वेदपुरुष के चरण हैं। वेदाध्ययन तथा वेदमन्त्रों के उच्चारण के लिए छन्दों का ज्ञान नितान्त आवश्यक है। वैदिक संहिताओं का अधिकांश भाग छन्दोमय है। वैदिक गद्य भी

छन्दोयुक्त ही माना जाता है। प्राचीन आर्षपरम्परा के अनुसार 'छन्द के बिना वाणी उच्चरित नहीं होती'।[३२] अत: वेदार्थ जानने के लिए छन्दोवेदाङ्ग का महत्त्व है। वेद के अध्येताओं में यह धारणा वद्धमूल है कि मन्त्र के ऋषि, देवता तथा छन्द को जाने बिना मन्त्रपाठ अथवा यजनयाजन सर्वथा निरर्थक होता है।

महर्षि यास्क ने छद् (ढक देना) धातु से छन्द: शब्द की व्युत्पत्ति सिद्ध की, अर्थात् छन्द वेदों को ढकने वाले साधन हैं। वेदों के आवरण हैं। वैदिक छन्दों की यह विशेषता रही है कि वे केवल अक्षरों की गणना पर नियत रहते हैं। गुरु, लघु वर्णो के किसी क्रम का कोई बन्धन इसमें नहीं होता। प्रधान वैदिक छन्द सात हैं–गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप, वृहती, जगती, पंक्ति तथा त्रिष्टुप्। शेष इनके अवान्तर भेदों के रूप में हैं।

महाकवि माघ का सबसे प्रिय छन्द अनुष्टुप कहा जा सकता है; क्योंकि इन्होंने शिशुपालवध में सबसे ज्यादा अनुष्टुप छन्दों की रचना की है। यह आर्ष छन्द है और रामायण तथा महाभारत में इसे सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। अन्य कवियों की अपेक्षा माघ की रचना में अधिक प्रकार के छन्दों का प्रयोग मिलता है। माघ ने ४१ छन्दों का प्रयोग किया है। छन्दों के वैविध्य से माघ की तत्सम्बन्धी अभिरुचि स्पष्ट है।

माघ के प्रयुक्त छन्दों की संख्या भी अन्य कवियों की अपेक्षा कहीं बहुत अधिक है। माघ के प्रयुक्त छन्द कम से कम सत्रह हैं, जिनके नाम हैं–अनुष्टुप, उपजाति, उद्‌गाता, वसन्ततिलका, रथोद्धता, प्रमिताक्षरा, औपच्छन्दसिक, शालिनी, वैतालीय, पुष्पिताग्रा, वंशस्थ, प्रहर्षिणी, मालिनी, द्रुतविलम्बित, रुचिरा और मञ्जुभाषिणी। इनमें से प्रत्येक में सत्तर से अधिक ही श्लोक रचे गये हैं। कई सुप्रतिष्ठित छन्दों में माघ ने एक ही श्लोक लिखा है, जैसे स्रग्धरा, स्रग्विणी और शिखरिणी। माघकाव्य में शार्दूलविक्रीडित में पाँच, मन्दाक्रान्ता में तीन और इन्द्रवज्रा में दो पद्य हैं। माघ ने अनेक अल्पप्रचलित छन्दों का प्रयोग किया है। यथा–कुटजा, कुररी–रुदिता, मेघविस्फूर्जिता, रमणीयक, अतिशायिनी आदि।

कई सर्गो में बहुविध छन्दों का प्रयोग किया गया है। चतुर्थ सर्ग के 'रैवतक पर्वत' के वर्णन में इन्होंने उपजाति, वसन्ततिलका, द्रुतविलम्बित और शालिनी आदि बाइस छन्दों का प्रयोग करके छन्द: प्रयोग में अपनी निपुणता दिखलाई है। माघ की विशेषता यह है कि वर्ण्य विषय के अनुरूप छन्दों को बदल दिया है। इसी प्रकार छठें सर्ग में ग्यारह छन्दों का प्रयोग किया है। महाकवि माघ ने सर्गान्त में छन्दों को बदलकर प्रयोग किया है।

माघ ने मुख्य रूप से अनुष्टुप छन्द का प्रयोग किया है, वह दूसरे तथा उन्नीसवें सर्ग का आधारभूत छन्द है। प्रथम सर्ग तथा द्वादश सर्ग में वंशस्थ छन्द का प्रयोग किया है। तीसरे में इन्द्रवज्रा, पाँचवें में वसन्ततिलका, छठे में द्रुतविलम्बित, सातवें में पुष्पिताग्रा, आठवें में प्रहर्षिणी, नवें में प्रमिताक्षरा, दसवें में स्वागता, ग्यारहवें में मालिनी, तेरहवें में मञ्जुभाषिणी, चौदहवें में रथोद्धता, पन्द्रहवें में उद्गाता, सोलहवें में वैतालीय, सत्रहवें में रुचिरा, अठ्ठारहवें में शालिनी तथा बीसवें सर्ग में औपच्छन्दसिक वृत्त का प्रयोग किया है।

छन्दों के साथ ही चित्रवन्ध आते हैं। इन्हें चित्रालङ्कार भी कहते हैं। चित्रबन्धों की अतिशय प्रशंसा उस युग में थी। किसी का महाकवि बनना चित्रबन्धरचना के बिना असम्भव सा था। वह युग समाप्त हुआ और चित्रबन्धों की आलोचना प्रारम्भ हो गई। परवर्ती युग के अनेक काव्यशास्त्रज्ञों ने चित्रबन्धों की धज्जियाँ उड़ाई हैं और इसे काव्य का अनभिप्रेत विकार माना। हमें इन चित्रों को माघकालिक समीक्षा की दृष्टि से ही देखना उचित है। माघ ने इनकी रचना में अद्भुत सफलता पाई है।

कलावादिता की दृष्टि से माघ के चित्रवन्धों में सर्वतोभद्र, गोमूत्रिका, मुरजवन्ध, एकाक्षर तथा द्वयाक्षर आदि चित्रवन्ध सफल रचनाएँ हैं तथा रस की दृष्टि से बसन्ततिलका, मालिनी, द्रुतविलम्बित आदि छन्दों का प्रयोग अवश्य ही प्रशंसनीय है।

माघ ने छन्दों को कहीं-कहीं भावानुगामी बनाया है। निम्नलिखित श्लोक में मालिनी का प्रयोग इसी सङ्गति की अभिव्यक्ति करता है–

मालिनी छन्द का लक्षण–'ननमयययुतेयं मालिनी भौगिलोकैः।'

उदाहरणार्थ–

'विकचकमलगन्धैरन्धयन्भृङ्गमालाः
सुरभितमकरन्दं मन्दमावाति वातः।
प्रमदमदनमाद्यद्यौवनोद्दामरामा-
रमणरभसखेदस्वेदविच्छेददक्षः॥'[३३]

इस प्रकार ग्यारहवें सर्ग के लिए मालिनी का चयन नितान्त कलात्मक है। प्रातःकाल की समरसता का मालिनी से सुयोग प्रत्यक्ष है। इसी प्रकार पञ्चम सर्ग में वसन्ततिलका छन्द की छटा रमणीय है। यथा–

वसन्ततिलका का लक्षण–वसन्ततिलका तभजा जगौगः।'

यथा–

'छायामपास्य महतीमपि वर्तमाना-
मागामिनीं जगृहिरे जनतास्तरूणाम्।
सर्वे हि नोपगतमप्यपचीयमानं
वर्धिष्णुमाश्रयमनागतमभ्युपैति॥'[३४]

ऐसा प्रतीत होता है कि प्रहर्षिणी और स्वागता छन्द उस युग में कामविलास वर्णन के लिए अधिक उपयुक्त माने जाते थे। माघ ने कामविलास वर्णन में इनका प्रयोग किया है–

प्रहर्षिणी का लक्षण–'म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्।'

उदाहरणार्थ–

'स्निह्यन्ती दृशमपरा निधाय पूर्णं
मूर्तेन प्रणयरसेन वारिणेव।
कन्दर्पप्रवणमनाः सखीसिसिक्षा-
र्लक्ष्येण प्रतियुवमञ्जलिं चकार॥'[३५]

स्वागता का लक्षण–'स्वागतेति रनभागुरुयुग्मम्।'

यथा–

'सञ्जितानि सुरभीण्यथ
यूनामुल्लसन्नयनवारिरुहाणि।
आययुः सुघटितानि सुरायाः
पात्रतां प्रियतमावदनानि॥'[३६]

माघ का सबसे प्रिय छन्द अनुष्टुप है। जिसमें उन्होंने २२६ श्लोकों की रचना की है।

अनुष्टुप का लक्षण–

'पञ्चमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः।
षष्ठं गुरु विजानीयात् एतत् श्लोकस्य लक्षणम्॥'

यथा–

'अनिर्लोडितकार्यस्य वाग्जालं वाग्मिनो वृथा।
निमित्तादपराद्धेषोर्धानुष्कस्येववल्गितम्॥'[३७]

कई छन्दों में माघ ने एक ही श्लोक लिखा है–जैसे–

शिखरिणी छन्द का लक्षण– 'रसैरुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी।'

यथा–

'धरस्योद्धर्ताऽसि त्वमिति ननु सर्वत्र जगति
प्रतीतस्तत्किं मामतिभरमधः प्रापिपयिषुः।
उपालब्धेवोच्चैर्गिरिपतिरिति श्रीपतिमसौ
बलाक्रान्तः क्रीडद्द्विरदमथितोर्वीरुहरवैः॥'[३८]

स्रग्धरा का लक्षण– 'म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्।'

काचित्कीर्णा रजोभिर्दिवमनुविदधे भिन्नवक्त्रेन्दुलक्ष्मी-
रश्रीकाः कश्चिदन्तर्दिश इव दधिरे दाहमुद्भ्रान्तसत्त्वाः।

यथा–

'भ्रेमुर्वात्या इवान्याः प्रतिपदमपरा भूमिवत्कम्पमापुः।
प्रस्थाने पार्थिवानामशिवमिति पुरो भावि नार्यः शशंसुः॥'[३९]

स्रग्विणी छन्द का लक्षणः– 'रैश्चतुर्भियुतास्रग्विणी संमता।'

यथा–

'वर्जयन्त्या जनैः सङ्गमेका-
स्तर्कयन्त्या सुखं सङ्गमे कान्ततः।
योषयैष स्मरासन्नतापाङ्गया
सेव्यतेऽनेकया सन्नतापाङ्गया॥'[४०]

इसके अलावा शार्दूलविक्रीडित ५, मन्दाक्रान्ता में ३ और इन्द्रवज्रा में दो हैं।

शार्दूलविक्रीडित छन्द का लक्षण– 'सूर्याश्वैर्मस्जस तताः सगुरवःशार्दूल-विक्रीडितम्॥'

राहुस्त्रीस्तनयोरकारि सहसा येनाश्लथालिङ्गन-
व्यापारैकविनोददुर्ललितयोः कार्कश्यलक्ष्मीर्वृथा।
तेनाक्रोशत एव तस्यमुरजित्तत्काललोलानल-
ज्वालापल्लवितेन मूर्धविकलं चक्रेण चक्रे वपुः॥'[४१]

मन्दाक्रान्ता का लक्षण–'मन्दाक्रान्ताम्वुधि रस नगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्।'
यथा–

'गत्वोद्रेकं जघनपुलिने रुद्धमध्यप्रदेशः
क्रामन्नूरुद्रुमभुजलताः पूर्णनाभीह्रदान्तः।
उल्लङ्घ्योच्चैः कुचतटभुवं प्लावयन् रोमकूपान्
स्वेदापूरो युवतिसरितां व्याप गण्डस्थलानि।।'[४२]

माघकाव्य में जिन छन्दों का प्रयोग जितनी बार हुआ है, उनका सर्ग और श्लोक के अनुसार क्रम निम्नलिखित है–

वशंस्थ छन्द–	१/१-७३,९/८६
पुष्पिताग्रा छन्द–	१/७४,४/२०,२९,४७,५०,५६,७/१-७३
शार्दूलविक्रीडित छन्द–	१/७५,१६/८४,१७/६९,१९/१२०,२०/७८
अनुष्टुप छन्द–	२/१-११५, १९/१-११७
औपच्छन्दसिक–	१/११६, ६/७२, ६/७५,१६/८०,१६/८५,२०/१-७६
द्रुतविलम्बित–	१/११७,४/२१,४/३२,४/६०,६/१-७१,७८
उपजाति–	३/१-८१,४/१-१८,२७,२९,३३,३५,६३,६/७४
पञ्चकावली रुचिरा या धृतश्री–	३/८२
वसन्ततिलका–	४/१९, २२, २५, २८, ३१, ३४, ३७, ४०, ४३, ४६, ४९, ५२, ५५, ५८, ६१, ६४, ५/१-६८, ६/७७, ७९, १४/८७, २०/७७
शालिनी–	४/२३,१६/८३,१८/१-७९
पथ्या–	४/२४
प्रहर्षिणी–	४/२६,३८,५३,५९,८/१-७०,१४/८८,१६/८२
जलधरमाला–	४/३०
प्रमिताक्षरा–	४/३६,९/१-८५
कुररीरुता–	४/४१
स्त्रग्विणी–	४/४२
मत्तमयूर–	४/४४,६/७६
दोधक–	४/४५
आर्या–	४/४८,५१
जलोद्धतगति–	४/५४
रथोद्धता–	४/५७, १४/१-८५
भ्रमरविलसित–	४/६२

मालिनी–	४/६५,६८,७/७५,१०/९१,११/१-६६
पृथ्वी–	४/६६
वंशपत्रपतित–	४/६७
शिखरिणी–	५/६९
कुटजा–	६/७३
मन्दाक्रान्ता–	७/७४, ९/८७,१८/८०
अतिशायिनी–	८/७१
स्वागता–	१०/१-९०
महामालिका–	११/६७
उपजाति–	१२/१-७६
इन्द्रवज्रा–	१४/८६
हरिणी–	१२/७७
मञ्जुभाषिणी–	१३/१-६८
रमणीयक–	१३/६९
उद्गता–	१५/१-९५
स्रग्धरा–	१५/९६
वैतालीय–	१६/१-७९
रुचिरा–	१७/१-६८
	१९/११८
वैश्वदेवी–	१९/११९
मेघविस्फूर्जिगा–	२०/७९

इस प्रकार महाकवि माघ ने छन्दों के चयन में विशेष पटुता प्रदर्शित की है। भावगाम्भीर्य तथा चित्रालङ्कारों के प्रयोग में अनुष्टुप् जैसे सरल छन्द का क्रमशः सर्ग दो और उन्नीस में उपयोग किया है। छन्दोविधान पर विचार करने से ज्ञात होता है कि छन्दःप्रयोग की प्रक्रिया क्रमशः विकसित होती जा रही थी। महाकवि कालिदास के अतिप्रिय छः छन्दों के अनुपात में भारवि ने बारह छन्दों और माघ ने सोलह छन्दों में अपना वैशिष्ट्य दिखाया है। भारवि ने किरातार्जुनीय के पाँचवें एवं अठ्ठारहवें सर्गों में सोलह छन्दों का प्रयोग करके छन्दोनिपुणता प्रदर्शित की है तो माघ ने चतुर्थ सर्ग में उपजाति, वसन्ततिलका, द्रुतविलम्बित एवं शालिनी आदि बाइस छन्दों का प्रयोग करके भारवि से अपनी उत्कृष्टता सिद्ध की है। रैवतक वर्णन में पर्वत की निसर्गश्री के चित्रण में माघ ने वर्ण्यविषयानुकूल विविध छन्दों का प्रयोग किया है जो उनके छन्द प्रयोग के औचित्य को रेखाङ्कित करता है।

निरुक्त

निरुक्त उस वेदाङ्ग का नाम है जो शब्दों की व्याख्या करता है तथा इस प्रकार की जाने वाली व्याख्या भी निरुक्त कहलाती है।[४३] देवताध्याय ब्राह्मण में, दूसरे अर्थ में निर्वचन शब्द का प्रयोग किया गया है। यास्क ने भी शब्द की व्याख्या की इस पद्धति के लिए निर्वचन शब्द का ही प्रयोग किया है। प्रारम्भ में निरुक्त शास्त्र के दो विषय रहे हैं–

१. देवताओं के स्वरूप को स्पष्ट करना।

२. निर्वचन द्वारा (मंत्रों) शब्दों को स्पष्ट करना।

कालान्तर में साध्य की अपेक्षा साधन पर अधिक बल दिए जाने के कारण देवविद्या तथा मन्त्रार्थ की अपेक्षा निर्वचन को ही निरुक्त का प्रमुख विषय समझा जाने लगा। यास्क ने यद्यपि अनेक स्थलों पर 'इति नैरुक्ताः' लिखा है, इससे उनके पूर्व निरुक्ताचार्य रहे होंगे, यह सिद्ध होता है। भाषा के विशेष व्याख्याता व्याकरणशास्त्र के अतिशय विकास के कारण सामान्य व्याख्याता निरुक्त का ह्रास होता गया। फलतः यह समूचा शास्त्र अपने अन्तिम दो ग्रन्थों यास्क के निघण्टु और निरुक्त में ही सीमित रह गया।

महाकवि माघ के बारे में कहा जाता है– **'नवसर्गगते माघे नव शब्दों न विद्यते'** सहृदयों की इस अवधारणा से उनके शब्दज्ञान का अनुमान लगाया जा सकता है। यद्यपि अन्य शास्त्रों की तरह निरुक्त के सैद्धान्तिक पक्षों का उन्होंने स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है तथापि शब्दों की व्याख्या तथा उसके अर्थ के बारे मे यत्र-तत्र उनकी अवधारणा देखी जा सकती है।

यथा–

'असम्पादयतः कञ्चिदर्थं जातिक्रियागुणैः।
यदृच्छाशब्दवत्पुंसः संज्ञायै जन्म केवलम्॥'[४४]

अर्थात् जाति (गोत्व आदि), क्रिया (पाचकत्व आदि) और गुण (शुक्लत्व आदि) के द्वारा किसी अर्थविशेष को सम्पादन नहीं करते हुए (डित्थ-डवित्थ आदि) यदृच्छा शब्द के समान जाति (ब्राह्मणत्वादि), क्रिया (अध्ययनादि) तथा गुण (शौर्यादि) के द्वारा किसी (पुण्य, कीर्ति, पुरुषार्थ आदि) प्रयोजन की सिद्धि को नहीं करते हुए पुरुष का जन्म केवल (देवदत्त, यज्ञदत्त आदि) नाम के लिए है।

यहाँ माघ बताना चाहते हैं कि यदि शब्द से अर्थविशेष का सम्पादन न हो तो उसका प्रयोग प्रयोजन की सिद्धि नहीं करता।

तथा–

'यावदर्थपदां वाचमेवमादाय माधवः।
विरराम महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः॥'[४५]

अर्थात् इस प्रकार (२/८-१३) परिमित अर्थ-पदवाला वचन कहकर श्रीकृष्ण भगवान् चुप हो गये, क्योंकि बड़े लोग स्वभाव से ही थोड़ा बोलते हैं (बात को बढ़ा-चढ़ाकर नहीं बोलते।)

यहाँ 'यावदर्थपदां वाचम्' का अर्थ मल्लिनाथ इस प्रकार करते हैं–'अभिधेयसम्मिताक्षराम्' अर्थात् माघ अभिधेय (अर्थ) सम्मित अक्षरों के प्रयोग पर बल देते हैं, जो उनकी निर्वचन पद्धति को इङ्गित करता है।

प्रस्तुत पद्य भी उनकी इस धारणा को रेखाङ्कित करता है–

'संक्षिप्तस्याप्यतोऽस्यैव वाक्यस्यार्थगरीयसः।
सुविस्तरतरा वाचो भाष्यभूता भवन्तु मे॥'[४६]

अर्थात् सिद्धान्तभूत होने के कारण संक्षिप्त (अल्पाक्षर) होने पर भी अर्थगौरवयुक्त इसी (कृष्णोक्त) वचन के अत्यन्त विस्तृत मेरे वचन भाष्यरूप हैं।

भाव यह कि जिस प्रकार सूत्र बहुत थोड़े अक्षरों में परन्तु अर्थगौरव से युक्त और सिद्धान्त रूप में कहा जाता है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता और उन सूत्रों के अनुकूल ही कार्य का प्रतिपादन करने वाला विस्तृत भाष्य होता है, उसी प्रकार अल्पाक्षर होते हुए भी अर्थगौरव से पूर्ण श्रीकृष्णोक्त वचन के सिद्धान्त को ही प्रतिपादन करने वाला मैं विस्तृत वचन कहूँगा।

माघ कहते हैं कि पदार्थ की सङ्गति वाला सन्दर्भ कष्ट से कहा जाता है–

'बह्वपि स्वेच्छया कामं प्रकीर्णमभिधीयते।
अनुज्झितार्थसम्बन्धः प्रबन्धो दुरुदाहरः॥'[४७]

अर्थात् अपनी इच्छा के अनुसार असङ्गत-(नीतिशास्त्रविरुद्ध) वचन बहुत कहा जा सकता है, किन्तु कार्यसङ्गति को नहीं छोड़ने वाला सन्दर्भ (वचन) दुःख से कहा जा सकता है।

महाकवि माघ एक स्थान पर विशकलित अर्थवाली का भी करते जो निरुक्तशास्त्रसिद्धान्त के अनुकूल है–

'इति विशकलितार्थामौद्धवीं वाचमेना-
मनुगतनयमार्गामर्गलां दुर्नयस्य।
जनितमुदमुदस्थादुच्चकैरुच्छ्रितोरः
स्थलनियतनिषण्णश्रीश्रुतां शुश्रुवान् सः॥'[४८]

अर्थात् वे (श्रीकृष्ण भगवान्) सम्यक् प्रकार से इस तरह (२/११७) विचरित अर्थवाले, राजनीति का अनुगमन करने वाले अर्थात् राजनीति के अनुकूल, (बलराम के उद्धत वचन रूपी) दुर्नीति के लिए अर्गलारूप (आगल के समान रोकने वाले) तथा हर्षजनक और (श्रीकृष्ण भगवान् के) उन्नत वक्षः-स्थल में सर्वदा निवास करने वाली पत्नी रूपिणी लक्ष्मी (अथ च-वक्षःस्थल पर सर्वदा निवास करने वाली शोभा) से सुने गये वचन को सुने हुए वे (श्रीकृष्ण भगवान् आसन से) उठ गये।

इस प्रकार निरुक्त के सैद्धान्तिक पक्ष को स्पष्ट रूप से सङ्कलित न करने पर भी निरुक्तशास्त्र में उनकी पैनी दृष्टि का अनुमान किया जा सकता है।

महाकवि माघ निरुक्तकार की प्रवृत्ति का यत्र-तत्र अनुसरण करते दिखाई देते हैं। यथा–

'ज्वलतः शमनाय चित्रभानोः
प्रलयाप्लावमिवाभिदर्शयन्तः।
ववृषुर्वृषनादिनो नदीनां
प्रतटारोपितवारि वारिवाहाः॥'[४९]

इसकी टीका में मल्लिनाथ लिखते हैं– **'वृषवद्वृषभवन्नदन्ति गर्जन्तीति वृषनादिनः** (मेघाः) निरुक्तकार भी **'नदना भवन्ति नद्यः'** ऐसा लिखा है।

महाकवि माघ अनेक ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं जिसमें बहुत से ऐतिहासिक और शास्त्रीय तथ्य शब्दों की निरुक्ति करने पर निकलते हैं। उदाहरणार्थ एक पद्य देखें–

'गतं तिरश्चीनमनूरुसारथेः
प्रसिद्धमूर्ध्वज्वलनं हविर्भुजः।
पतत्यधो धाम विसारि सर्वतः
किमेतदित्याकुलमीक्षितं जनैः॥'[५०]

अनूरुसारथे:–**अविद्यमानावूरू यस्य सोऽनूरुः स सारथिर्यस्य तस्यानूरु-सारथेः सूर्यस्य,** इसी प्रकार यहाँ सूर्य का जो सारथी है, वह लंगड़ा है, उसकी जंघाएँ नहीं हैं, यह आशय व्यक्त होता है, जबकि केवल सूर्य कहने से यह तथ्य अनुक्त रह जाता है। उनकी यह प्रवृत्ति अधिकांश पद्यों में दिखाई देती है।

कहीं-कहीं प्रसिद्धतम समस्त शब्दों को अलग कर प्रस्तुत करते हैं यथा–

'अभूदभूमिः प्रतिपक्षजन्मनां
भियां तनूजस्तपनद्युतिर्दितेः।
यमिन्द्रशब्दार्थनिसूदनं हरे-
र्हिरण्यपूर्वं कशिपुं प्रचक्षते।।'[५१]

मल्लिनाथ ने अपनी टीका में लिखा है–**अत्र हिरण्यशब्दपूर्वकत्वं कशिपु शब्दस्यैव न तु संज्ञिनस्तदर्थस्येति शब्दपरस्य कशिपुशब्दस्यार्थ गतत्वेनाप्रयोज्यस्य प्रयोगादवाच्यवचनाख्यार्थ दोषमाहुः 'यदेवावाच्यवचनमवाच्यवचनं हि तत्' इति। एवं विधविषये शब्द परेणार्थलक्षणेति कथंचित्संपाद्यमित्युक्तमस्माभिः 'देवपूर्वं गिरिं ते' (मेघदूते पूर्व ञ्च२)। धनुरुपपदमस्मै वेदमभ्यादिदेश (किरातार्जुनीये १८/ञ्चञ्च) इत्येतद्व्याख्यानावसरे सञ्जीविन्यां घण्टापथे च। विशेषश्चात्र-अयं दैत्यमपदिश्य हिरण्यपूर्वं कशिपुं प्रचक्षते संज्ञात्वेन प्रयुङ्क्ते।**

इस प्रकार महाकवि माघ निर्वचन पटु होने से शब्दों के प्रयोग में सावधान दिखाई देते हैं। वर्ण्यविषय को अधिकाधिक संप्रेषणीय बनाने वाले नये पर्यायों का प्रयोग भी करते हैं। ऐसे प्रयोगों का इनके महाकाव्य में बाहुल्य है। व्युत्पत्ति-निमित्तक शब्दों के प्रयोग में उनकी निर्वचन पटुता परिलक्षित होती है।

ज्योतिष

वैदिक यज्ञों तथा अन्य शुभ मुहूर्तों के निर्धारण, नक्षत्रों की स्थिति आदि के ज्ञान के लिए ज्योतिष नामक वेदाङ्ग का अत्यन्त महत्त्व है। ज्योतिष नामक वेदाङ्ग का अपना एक विशिष्ट महत्त्व है। यह शास्त्र यज्ञों का काल विधान बताता है।

'वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः
कालानि पूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं
यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम्।।'

(वेदाङ्ग ज्योतिष श्लोक ३)

यज्ञ सम्पादन के लिए शुद्ध समय नितान्त आवश्यक है। नक्षत्र, तिथि, पक्ष, मास, ऋतु, वर्ष आदि सभी समयखण्डों के साथ भिन्न-भिन्न वैदिक यज्ञों के विधान की व्यवस्था थी। विविध ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णो के लिए भिन्न-भिन्न ऋतुओं में अग्न्याधान का विधान किया गया था। ज्योतिष के इसी महत्त्व के कारण विद्वानों का यह आग्रह था कि जो व्यक्ति ज्योतिष को भलीभाँति जानता है, वही यज्ञ को यथार्थ रूप में जानता है।

ऋग्वेद में अनेक ऐसे प्रसङ्ग मिलते हैं, जिनसे ऋषियों का ज्योतिषज्ञान व्यक्त होता है। मलमास, सूर्यग्रहण की रीति, सूर्य के दक्षिणावस्थित होने पर वर्षा, विभिन्न ऋतुओं का उल्लेख आदि ऐसे ही प्रसङ्ग हैं।

महाकवि माघ निश्चित रूप से ज्योतिष के ज्ञान से अछूते नहीं थे। शिशुपालवध में ग्रहों, नक्षत्रों, मासों और ऋतुओं का जो विवेचन मिलता है उससे उनके ज्योतिषज्ञान का परिचय प्राप्त होता है। सूर्य और चन्द्र ग्रहों की स्थितियों का भी वर्णन प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त शकुन और अपशकुन के विषय में भी अच्छा ज्ञान था। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि महाकवि माघ ज्योतिषशास्त्र के विभिन्न पहलुओं से भलीभाँति परिचित थे। उदाहरणार्थ–

'ओमित्युक्तवतोऽथ शार्ङ्गिण इति व्याहृत्य वाचं नभ
स्तस्मिन्नुत्पतिते पुरः सुरमुनाविन्दोः श्रियं बिभ्रति।
शत्रूणामनिशं विनाशपिशुनः क्रुद्धस्य चैद्यं प्रति
व्योम्नीव भ्रुकुटिच्छलेन वदने केतुश्चकारास्पदम्॥'[५२]

अर्थात् जिस प्रकार चन्द्रमा के उदित होने पर केतु तारा का उदय होना शत्रुओं (राजाओं) के विनाश का सूचक माना जाता है, जैसा कि शास्त्र में कहा गया है–**'चन्द्रमभ्युत्थितः केतुः क्षितीशानां विनाशकृत'**, यहाँ पर 'केतु' एक विशेष प्रकार का उत्पात, केतु नाम का एक तारा है, जिसका आकाश में उदित होना विनाश का सूचक माना जाता है–**'केतुर्द्युतौ पताकायां ग्रहोत्पातारिलक्ष्मेसु'** (अमरकोष), उसी प्रकार भ्रुवः कुटिः भ्रकुटिः सा एव छलं तेन भ्रकुटिच्छलेन क्रोध के कारण कृष्ण की टेढ़ी भौंहें नहीं अपितु वे उत्पात के सूचक केतु नामक तारा हैं।

'सार्धमुद्धवसीरिभ्यामथासावासदत्सदः।
गुरुकाव्यानुगां बिभ्रच्चान्द्रीमभिनभः श्रियम्॥'[५३]

यहाँ पर उपमान के माध्यम से चन्द्र और गुरु तथा शुक्र ग्रहों की गति की

समानता कृष्ण और बलराम तथा उद्धव से की गई है। भाव यह कि महाकवि माघ को चन्द्र और ग्रहों की गतियों के विषय में अच्छा ज्ञान था।

उपर्युक्त श्लोक का भाव यह कि जिस प्रकार चन्द्रमा की अपेक्षा वृहस्पति तथा शुक्र की शोभा कम होती है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण भगवान् की अपेक्षा उद्धव तथा बलरामजी की शोभा कम थी और वे दोनों श्रीकृष्ण भगवान् के पीछे-पीछे चल रहे थे, यह सूचित होता है। श्रीकृष्ण को चन्द्र, उद्धवजी को बृहस्पति, बलरामजी को शुक्र तथा सभामण्डप की आकाश के साथ उपमा दी गई है। इससे सिद्ध होता है कि माघ नक्षत्रों की स्थिति से सम्यक् रूप से अवगत थे।

निम्नलिखित श्लोक से चन्द्रग्रहण की स्थिति के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। इसमें कूटनीति को उपमान के माध्यम से प्रस्तुत किया है। यथा–

'नीतिरापदि यद्गम्यः परस्तन्मानिनो ह्रिये।
विधुर्विधुन्तुदस्येव पूर्णस्तस्योत्सवाय सः॥'[५४]

अर्थात् आपत्ति में फँसे हुए शत्रु पर चढ़ाई करनी चाहिए, यह जो नीति है, वह मानीपुरुष के लिए लज्जाजनक है। पूर्ण चन्द्रमा पर जिस प्रकार राहु आक्रमण करता है, उसी प्रकार समृद्धि से पूर्ण शत्रु पर आक्रमण करना मानीपुरुष के हर्ष के लिए होता है।

महाकवि माघ को सूर्य के उत्तरायण और दक्षिणायन होने की स्थिति का एवं उसके प्रभाव का समुचित ज्ञान निम्नलिखित श्लोक में परिलक्षित होता है–

'कौबेरदिग्भागमपास्य मार्गमागस्त्यमुष्णांशुरिवावतीर्णः।
अपेतयुद्धाभिनिवेशसौम्यो हरिर्हरिप्रस्थमथ प्रतस्थे॥'[५५]

अर्थात् जिस प्रकार उत्तरायण (मकर की संक्रान्ति से मिथुन की संक्रान्ति तक) सूर्य की किरणें तीक्ष्ण होने से असह्य रहती है, उसके बाद दक्षिणायन होने पर वही सूर्य किरणें मन्द होने से सह्य हो जाती हैं, उसी प्रकार जब-तक अपने बलरामजी के मत के अनुसार शिशुपाल से युद्ध करने का विचार था, तब-तक श्रीकृष्ण भगवान् का शरीर तेज क्रोध के कारण उग्र हो रहा था किन्तु उद्धव जी के वचन सुनने के बाद युद्ध का विचार छोड़ देने पर उनके शरीर की कान्ति सौम्य आह्लादिका हो गई, ऐसे वे युधिष्ठिर के यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए हस्तिनापुर चल देते हैं।

'जगत्पवित्रैरपि तं न पादैः स्प्रष्टुं जगत्पूज्यमयुज्यतार्कः।
यतो वृहत्पार्वणचन्द्रचारु तस्यातपत्रं बिभरांबभूवे॥'[५६]

अर्थात् सूर्य जगत्पूज्य उन भगवान् श्रीकृष्ण को अपनी जगत्पवित्र किरणों से भी स्पर्श नहीं कर सका, क्योंकि भगवान् के ऊपर भृत्यों ने पूर्णिमा के विशाल चन्द्रमा की भांति सुन्दर छत्र धारण किया था।

प्रस्तुत श्लोक में प्रकृति के नियमानुसार सूर्य और चन्द्र का उदय और अस्त होना, ये दोनों परिस्थितियाँ विपरीत हैं। एक का समय दिन और एक का रात है। यहाँ पर काल की गति का ज्ञान होता है।

महाकवि माघ सर्वसिद्धकारी पुष्यनक्षत्र की उपमा कृष्ण के सर्वदिग्गामी रथ के लिए प्रस्तुत करते हुए लिखा है–

'रराज संपादकमिष्टसिद्धेः
सर्वासु दिक्ष्वप्रतिषिद्धमार्गम्।
महारथः पुष्यरथं रथाङ्गी
क्षिप्रं क्षपानाथ इवाधिरूढः।।'[५७]

अर्थात् महारथी भगवान् श्रीकृष्णजी, इष्ट सिद्धि करने वाले एवं जिसका मार्ग सभी दिशाओं में अप्रतिषिद्ध था, ऐसे शीघ्रगामी पुष्यरथ (क्रीड़ारथ) में पुष्य नक्षत्र स्थित चन्द्रमा की भाँति सुशोभित हो रहे थे। आशय यह है कि–पुष्यनक्षत्र इष्टसिद्धिदायक और सर्वदिक् गमन के लिए शुभ होता है।

महाकवि माघ की नक्षत्रविषयक योग्यता का अनुमान निम्नलिखित श्लोक से मालूम हो जाता है। इस श्लोक में उपमान के माध्यम से नक्षत्र समूहों और द्वारकापुरी की प्राचीरों की ऊँचाईयों का मापदण्ड ज्ञात होता है–

'यस्याश्चलद्वारिधिवारिवीचि-
च्छटोच्छलच्छङ्खकुलाकुलेन।
वप्रेण पर्यन्तचरोडुचक्रः
सुमेरुवप्रोऽन्वहमन्वकारि।।'[५८]

महाकवि माघ को शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष में नक्षत्रों के होने वाले प्रभाव का अच्छा ज्ञान था, क्योंकि पक्ष दो होते हैं। यद्यपि निम्नलिखित श्लोक में द्वारकापुरी की रमणियों के मुख की शोभा को नक्षत्र समूहों के साथ उपमान के माध्यम से व्यक्त किया गया है–

'क्षितिप्रतिष्ठोऽपि मुखारविन्दै-
र्वधूजनश्चन्द्रमधश्चकार।
अतीतनक्षत्रपथानि यत्र
प्रासादशृङ्गाणि वृथाध्यरुक्षत।।'[५९]

निम्नलिखित श्लोक में रोहिणी नक्षत्र का स्वामी चन्द्रमा है, ऐसा ज्ञात होता है–

'कला दधानः सकलाः स्वमाभि-
रुद्भासयन्सौधसिताभिराशाः।
यां रेवतीजानिरियेष हातुं
न रौहिणेयो न च रोहिणीशः॥'[६०]

महाकवि माघ श्लेष के माध्यम से बतलाते हैं कि भाग्य के प्रतिकूल होने पर सभी साधन व्यर्थ हो जाते हैं। चन्द्रोदय के समय चन्द्रमा के प्रतिकूल होने पर सहस्रों किरणों वाला भी सूर्य अस्त हो ही जाता है। भाव यह कि भाग्य के साथ न देने पर ग्रह-नक्षत्र भी कुछ नहीं कर सकते–

'प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ
विफलत्वमेति बहुसाधनता।
अवलम्बनाय दिनभर्तुरभू-
न्न पतिष्यतः करसहस्रमपि॥'[६१]

गमन के समय छींक होना, अपशकुन माना जाता है। निम्नलिखित श्लोक से महाकवि माघ का यह मन्तव्य ज्ञात होता है–

'अपयाति सरोषया निरस्ते
कृतकं कामिनि चुक्षुवे मृगाक्ष्या।
कलयन्नपि सव्यथोऽवतस्थे-
ऽशकुनेन स्खलितः किलेतरोऽपि॥'[६२]

निम्नलिखित श्लोक में महाकवि माघ के हस्तनक्षत्रों का ज्ञान मालूम होता है–

'इति मदमदनाभ्यां रागिणः स्पष्टरागा-
ननवरतरतश्रीसङ्गिनस्तानवेक्ष्य।
अभजत परिवृत्तिं साथ पर्यस्तहस्ता
रजनिरवनतेन्दुर्लज्जयाधोमुखीव॥'[६३]

भाव यह कि स्त्रियों का स्वभाव ही है कि वे सुरतक्रीड़ा में निमग्न किसी दम्पत्ति को देखकर हाथों को हिलाती हुई लज्जा से अपना मुख नीचे कर लेती हैं और वहाँ से दूर हट जाती हैं। तात्पर्य यह है कि धीरे-धीरे रात बीतने लगी, हस्तनक्षत्र आकाश में से नीचे आ गया और चन्द्रमा पश्चिम दिशा में लटक गया।

माघ के निम्नलिखित श्लोक से दुरुधरायोग का ज्ञान प्राप्त होता है। दुरुधरायोग कब बनता है? इसका उल्लेख भी इस श्लोक में है। यथा–

'पवनात्मजेन्द्रसुतमध्यवर्तिना-
नितरामरोचि रुचिरेण चक्रिणा।
दधतेव योगमुभयग्रहान्तर-
स्थितिकारितं दुरुधराख्यमिन्दुना॥'[६४]

अर्थात् ज्योतिषशास्त्र में चन्द्रमा जब सूर्य के अतिरिक्त किन्हीं अन्य दो ग्रहों के मध्य में स्थित होता है, तब दुरुधरायोग होता है।

महाकवि माघ ने निम्नलिखित श्लोक में क्रमशः छींक होना, अमङ्गल का द्योतक और उल्का के समान माना है, जो प्रियतम के अपशकुन की सूचना देता है।

'क्षणमात्ररोधि चलितेन कतिपयपदं नतभ्रुवः।
स्रस्तभुजयुगगलद्वलयस्वनितं प्रतिक्षुतमिवोपशुश्रुवे॥'[६५]

और भी–

'अभिवर्त्म वल्लभतमस्य विगलदमलायतांशुका।
भूमिनभसि रभसेन यती विरराज काचन समं महोल्कया॥'[६६]

निम्नलिखित श्लोक में ये सभी उत्पात की घटनाएँ शिशुपाल पक्षीय राजाओं के भावी अमङ्गल की सूचना दे रही है–

'काचित्कीर्णा रजोभिर्दिवमनुविदधे भिन्नवक्त्रेन्दुलक्ष्मी-
रश्रीकाः काश्चिदन्तर्दिश इव दधिरे दाहमुद्भ्रान्तसत्त्वाः।
भ्रेमुर्वात्या इवान्याः प्रतिपदमपरा भूमिवत्कम्पमापुः
प्रस्थाने पार्थिवानामशिवमिति पुरो भावि नार्यःशशंसुः॥'[६७]

निम्ललिखित श्लोक में सूर्यग्रहण की स्थिति, राहु नामक ग्रह और इनके माध्यम से पराजय की सूचना मिलती है। यथा–

'प्रतिपक्षजिदप्यसंशयं युधि
चैद्येन विजेष्यते भवान्।
ग्रसते हि तमोपहं मुहुर्ननु
राहाह्वमहर्पतिं तमः॥'[६८]

अर्थात् अनेक शत्रुओं का विनाश करने वाले होकर भी आप युद्धभूमि में शिशुपाल से निश्चित ही पराजित होंगे। सम्पूर्ण अन्धकारराशि को नष्ट करने वाले

दिनपति सूर्य को राहु नामक एक अन्धकार बार-बार निगलता है। भाव यह कि जिस प्रकार राहु के ग्रसने पर सूर्य का तेज निस्सार हो जाता है, ठीक उसी प्रकार आपकी भी शिशुपाल से पराजय निश्चित है।

इस प्रकार से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि महाकवि माघ को ज्योतिषशास्त्र का अच्छा ज्ञान था। ग्रहों, नक्षत्रों के प्रभाव से लेकर सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण की स्थित का ज्ञान और उसका प्रभाव कैसा होगा? आदि का ज्ञान था। शकुन और अपशकुन के बारे में भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। उपर्युक्त विवेचन से उनके ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान का पता लगता है। भाव यह कि माघ को गणित का अच्छा ज्ञान था, जिसके माध्यम से वे ग्रहों और नक्षत्रों की स्थिति को देखकर समझ जाते थे कि इनका दैनिकजीवन में क्या उपयोग है?

कल्प

कल्प का अर्थ है–यज्ञीय विधियों का समर्थन और प्रतिपादन। इसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है-'**कल्पो वेदविहितानां कर्मणामानुपूर्व्येण कल्पना-शास्त्रम्**''[६९] अर्थात् वैदिक कर्मो की क्रमबद्ध व्यवस्थित कल्पना करने वाला शास्त्र कल्प है। सायण ने भी कल्प का लगभग यही अर्थ किया है-'**कल्प्यते समर्थ्यते यागप्रयोगोऽत्र, इति व्युत्पतो।**'[७०] अर्थात् यज्ञीय प्रयोगों का समर्थन तथा प्रतिपादन करने वाले शास्त्र कल्प हैं। राजशेखर ने '**कल्पे मन्त्रविनियोगः वर्णितः**' अर्थात् कल्प में मंत्रों का विनियोग वर्णित है।

महाकवि माघ भी लगभग उपर्युक्त कथनों से सहमत हैं, जैसा कि उनके उदाहरणों से स्पष्ट है–

माघ का श्रुति (मंत्र) विषयक ज्ञान अत्यन्त प्रशंसनीय है। प्रातःकाल के समय इन्होंने अग्निहोत्र का सुन्दर वर्णन किया है। हवनकर्म में आवश्यक सामधेनी ऋचाओं का उल्लेख किया है। यथा–

'प्रतिशरणमशीर्णज्योतिरग्न्याहितानां
विधिविहितविरिब्धैः सामिधेनीरधीत्य।
कृतगुरुदुरितौघध्वंसमध्वर्युवर्यै-
हुतमयमुपलीढे साधु साम्नाय्यमग्निः।''[७१]

अर्थात् अग्निहोत्रियों के प्रत्येक गृह (अग्निहोत्रशालाओं) में सम्यक् प्रकार से जलती हुई अग्नि, शास्त्रोक्त विधि से एक श्रुत्यादि स्वरों का उच्चारण करने

वाले श्रेष्ठ ऋत्विजों के द्वारा सामधेनी (अग्नि को प्रज्वलित करने वाला 'प्र वो वाजा' इत्यादि मन्त्र विशेष) को पढ़कर बड़े-बड़े पाप समूहों के विनाशपूर्वक हवन किये गये (अथवा-वहन किये गये बड़े-बड़े पाप समूहों को नष्ट करने वाले) हविषविशेष को सम्यक् प्रकार से आस्वादन कर (जला) रही है।

महाकवि माघ वैदिक स्वरों की विशेषता से भी भलीभाँति परिचित थे। स्वरभेद से अर्थभेद हो जाया करता है, इस नियम का उल्लेख उनके निम्न-लिखित श्लोक में मिलता है–

'संशयाय दधतोः सरूपतां
दूरभिन्नफलयोः क्रियां प्रति।
शब्दशासनविदः समासयो-
र्विग्रहं व्यवससुः स्वरेण ते॥'[७२]

अर्थात् व्याकरणशास्त्र के ज्ञाता वे (ऋत्विज्) लोग, सन्देह (उत्पन्न करने) के लिए समान रूप वाले अर्थात् समान रूप होने से सन्देहोत्पादक, (किन्तु) कार्य के प्रति भिन्न फल देने वाले दो समासों के विग्रह का स्वर के द्वारा निर्णय करते थे।

एक पद में होने वाला उदात्तस्वर अन्य स्वरों को अनुदात्त बना डालता है–एक स्वर के उदात्त होने पर अन्य स्वर 'निघात' हो जाते हैं। इस स्वरविषयक प्रसिद्ध नियम का प्रतिपादन माघ ने शिशुपाल के वर्णन में बड़ी ही सुन्दर रीति से किया है–

'तदीशितारं चेदीनां भवांस्तमवमस्त मा।
निहन्त्यरीनेकपदे य उदात्तः स्वरानिव॥'[७३]

अर्थात् इस कारण आप चेदिपति (शिशुपाल) का अपमान (उसके साथ युद्ध करने का उपक्रम) न करें, जो (शिशुपाल) एक पद (स्थान या व्यवसाय-उद्योग) में शत्रुओं को उस प्रकार मारता है, जिस प्रकार (सुबन्ततिङन्तरूप) एक पद में उदात्तस्वर (अनुदात्त-स्वरित स्वर को) मारता-वाधित करता है।

महाकवि माघ ने चौदहवें सर्ग (श्लोक १४/१९-३१) में युधिष्ठिर के राजसूययज्ञ का बड़ा ही विस्तृत तथा सुन्दर वर्णन किया है। महाकवि माघ ने यज्ञ वर्णन में वैदिक कर्मों की क्रमबद्ध व्यवस्थित कल्पना की है। महाकवि के उपर्युक्त उद्धरणों से यज्ञीय विधियों का समर्थन और प्रतिपादन हो जाता है। इसकी पुष्टि के लिए उनका निम्नलिखित श्लोक द्रष्टव्य है–

'नापचारमगमन्क्वचित्क्रियाः
सर्वमत्र समपादि साधनम्।
अत्यशेरत परस्परं धियः
सत्रिणां नरपतेश्च सम्पदः॥'[७४]

अर्थात् उस यज्ञ में कहीं पर भी किसी विधि का अपचार (अभाव या विपर्यास आदि दोष अर्थात् किसी द्रव्य के अभाव में उसके प्रतिनिधि द्रव्य का उपयोग करना आदि) नहीं हुआ, क्योंकि सभी साधन सम्पन्न (सम्यक् प्रकार से संगृहीत) थे; यज्ञकर्त्ता ऋत्विजों की बुद्धि अर्थात् ज्ञान एवं राजा युधिष्ठिर की सम्पत्ति (यज्ञसामग्री) दोनों ही परस्पर में अत्यधिक हो रही थी।

कल्पसूत्र मुख्यतः चार प्रकार के हैं–श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र तथा शुल्वशुत्र।

श्रौतसूत्र का मुख्य विषय वेदप्रतिपादित महत्त्वपूर्ण यज्ञों के विधि-विधानों को सूत्ररूप में क्रमबद्ध सङ्कलित करना है। महाकवि माघ ने भी राजनीति की चर्चा के दौरान सूत्रों की विशेषताओं का वर्णन किया है। भाव यह कि माघ ने भी सूत्रशैली पर जोर दिया है। यथा–

'संक्षिप्तस्याप्यतोऽस्यैव वाक्यस्यार्थगरीयसः।
सुविस्तरतरा वाचो भाष्यभूता भवन्तु मे॥'[७५]

अर्थात् सिद्धान्तभूत होने के कारण संक्षिप्त सूत्रों की विस्तार पूर्वक व्याख्या उनकी विशेषताओं को प्रकाशित करने के लिए की जाती है। और भी–

'परितः प्रमिताक्षरापि सर्वं
विषयं व्याप्तवती गता प्रतिष्ठाम्।
न खलु प्रतिहन्यते कुतश्चिद्-
परिभाषेव गरीयसी यदाज्ञा॥'[७६]

अर्थात् **'परिभाषा ह्येकदेशे स्थित्वा सर्वशास्त्रमभिज्वलयति दीपवदिति भाष्यकारः।'** अत्यन्त थोड़े अक्षरों वाली (अत्यन्त छोटी) भी सम्पूर्ण देश में व्याप्त हुई तथा प्रामाण्य को प्राप्त गौरवयुक्त जिस शिशुपाल की आज्ञा, थोड़े अक्षरों वाली, सम्पूर्ण लक्ष्यों में व्याप्त (प्रवृत्त होने वाला) कहीं पर भी वाधित नहीं होने से प्रतिष्ठा को प्राप्त विशिष्ट अर्थ को कहने वाली परिभाषा के समान कहीं भी नहीं रुकती है।

श्रौतसूत्रों में दक्षिण, आहवनीय तथा गार्हपत्य इन तीनों अग्नियों की स्थापना का भी विधान है। महाकवि माघ ने अग्निवेदी पर तीनों अग्नियों का उल्लेख उपमान के माध्यम से राजनीतिविषयक चर्चा में कही है। यथा–

'जाज्वल्यमाना जगतः शान्तये समुपेयुषी।
व्यद्योतिष्ट सभावद्यामसौ नरशिखित्रयी।।'[७७]

अर्थात् संसार (में होने वाले उपद्रवों) की शान्ति के लिए एकत्रित तथा अतिशय दीप्यमान मानवरूपी अग्नित्रय (दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि तथा आहवनीयाग्नि) सभामण्डपरूप वेदी पर सुशोभित हुआ।

भाव यह कि संसार की शान्ति के लिए एकत्रित अत्यधिक प्रज्वलित होती हुई दक्षिणाग्नि आदि तीनों अग्नि वेदी पर जिस प्रकार शोभित होती हैं और वैसा होने से संसार की शान्ति अवश्यमेव होती है, उसी प्रकार शिशुपालादि से पीड़ित संसार की शान्ति के लिए एकत्रित अपने-अपने तेज से दीप्यमान वे तीनों सभामण्डप में शोभने लगे, और इस सम्मिलन से संसार में अवश्यमेव शान्ति स्थापित होगी यह भी सूचित हुआ।

महाकवि माघ मानव के जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त के सम्पूर्ण कर्त्तव्यों एवं अनुष्ठानों का वर्णन किए हैं। गृह्यसूत्र में नित्यप्रति किये जाने वाले धार्मिक विधानों, गृहयज्ञों का वर्णन भी महाकवि माघ ने किया है। मनुष्य के विभिन्न संस्कारों, पञ्चमहायज्ञों, पाकयज्ञों गृहनिर्माण और गृहप्रवेश आदि का विस्तृत विधान गृह्यसूत्रों में किया गया है। रीति एवं उपचार का वर्णन इनका मुख्य विषय है। संस्कारों के सम्बन्ध में तत्कालीन आचार-नियमों का जो विविध विधान प्राप्त होता है उससे भारतीय-जीवन की पवित्रता का भलीभाँति परिचय प्राप्त होता है।

माघ ने धर्मसूत्र के अन्तर्गत विभिन्न पारमार्थिक, राजनैतिक तथा सामाजिक कर्त्तव्यों, वर्णों तथा आश्रमों के कर्त्तव्य, विवाह, प्रायश्चित आदि सामाजिक नियमों एवं राजधर्म, प्रजाधर्म आदि विषयों का विस्तृत विवेचन किया है।

'किं नु चित्रमधिवेदि भूपतिर्दक्षयन्द्विजगणानपूयत।
राजतः पुपुविरे निरेनसः प्राप्य तेऽपि विमलं प्रतिग्रहम्।।'[७८]

अर्थात् राजा युधिष्ठिर 'यज्ञवेदी' पर ब्राह्मणों को विपुल दक्षिणा से सन्तुष्ट करके पवित्र हो गये। इसमें आश्चर्य की क्या बात थी? किन्तु वे ब्राह्मण लोग भी निष्पाप राजा से विशुद्ध दान प्राप्त कर पवित्र हो गये-यह सचमुच आश्चर्य की बात थी।

इस श्लोक में यज्ञवेदी शब्द का प्रयोग है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि महाकवि माघ को वेदी का स्थान चुनने, नापने तथा रचना करने से सम्बद्ध विषयों का अच्छा ज्ञान था। यज्ञवेदीनिर्माण की रीति का विवेचन शुल्वसूत्रों में वर्णित है, क्योंकि जिस याज्ञिकविधान का विवरण शिशुपालवध में है, उसकी प्रक्रिया का ज्ञान एवं विनियोग शुल्वसूत्रों के विना हो ही नहीं सकता। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि महाकवि माघ को शुल्वसूत्रों का भी अच्छा ज्ञान था।

इस प्रकार हम महाकवि माघ के यज्ञ वर्णन के विवेचन के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उन्हें कल्प का अच्छा ज्ञान था। उन्होंने वैदिककर्म, यज्ञीयविधियों, मानवकर्त्तव्यों, धार्मिकविधानों, राजनैतिक एवं सामाजिक कर्त्तव्यों, वर्णों तथा आश्रमों के कर्त्तव्यों तथा राजधर्म एवं प्रजाधर्म का साङ्गोपाङ्ग विवेचन किया है।

सन्दर्भ :

१. सायण ऋग्वेदभाष्य०, पृष्ठ ४७
२. शिशु०, वध, १४/२०
३. पाणिनीय शिक्षा, ५२
४. शिशु०वध, १४/२४
५. तै०उ०, १-२
६. पा०शिक्षा, ३
७. शिशु०वध, २/७२
८. शिशु०वध, २/९५
९. शिशु०वध, ११/४१
१०. शिशु०वध०, ११/४२
११. पा०शिक्षा०, ३२,३३,३४,३५
१२. शिशु०वध०, १४/२१
१३. पा०शिक्षा, ५४-५५
१४. शिशु०वध, १६/८०
१५. यजुर्वेद, १९-७७
१६. शिशु०व०, १९/७५
१७. शिशु०व०, १६/८०
१८. महाभाष्य आ०, १

१९. शिशु०व०, २/११२
२०. शिशु०व०, १/२८
२१. शिशु०व०, १४/२३
२२. शिशु०व०, १४/३७
२३. शिशु०व०, २/२३
२४. शिशु०व०, २/२४
२५. शिशु०व०, १४/२४
२६. शिशु०व०, १/५१
२७. शिशु०व०, २/९५
२८. शिशु०व०, ५/२८
२९. शिशु०व०, ५/५०
३०. शिशु०व०, १०/१५
३१. शिशु०व०, १४/६६
३२. दुर्गाचार्य, निरुक्तवृत्ति ७/२, नाच्छन्दसि वागुच्चरति। भरत, नाट्यशास्त्र १४/४५ छन्दहीनो न शब्दोऽस्ति न छन्दः शब्दवर्जितम्।
३३. शिशु०व०, ११/१९
३४. शिशु०व०, ५/१४
३५. शिशु०व०, ८/३५
३६. शिशु०व०, १०/१
३७. शिशु०व०, २/२७
३८. शिशु०व०, ५/६९
३९. शिशु०व०, १५/९६
४०. शिशु०व०, ४/४२
४१. शिशु०व०, २०/७८
४२. शिशु०व०, ७/७४
४३. द्र०मुण्डकोपनिषद, ११५
४४. शिशु०व०, २/४७
४५. शिशु०व०, २/१३
४६. शिशु०व०, २/२४
४७. शिशु०व०, २/७३
४८. शिशु०व०, २/११८
४९. शिशु०व०, २०/७०

५०. शिशु०व०, १/२
५१. शिशु०व०, १/४२
५२. शिशु०वध, १/७५
५३. शिशु०वध, २/२
५४. शिशु०वध, २/६१
५५. शिशु०वध, ३/१
५६. शिशु०वध, ३/२
५७. शिशु०वध, ३/२२
५८. शिशु०वध, ३/३७
५९. शिशु०वध, ३/५२
६०. शिशु०वध, ३/६०
६१. शिशु०वध, ९/६
६२. शिशु०वध, ९/८३
६३. शिशु०वध, १०/९१
६४. शिशु०वध, १३/२२
६५. शिशु०वध, १५/९१
६६. शिशु०वध, १५/९२
६७. शिशु०वध, १५/९६
६८. शिशु०वध, १६/५७
६९. विष्णुमित्र-कृत ऋक्प्रातिशाख्य की वृत्ति, पृष्ठ १३
७०. सायण, ऋग्वेदभाष्यभूमिका
७१. शिशु०वध, ११/४१
७२. शिशु०वध, १४/२४
७३. शिशु०वध, २/९५
७४. शिशु०वध, १४/३२
७५. शिशु०वध, २/२४
७६. शिशु०वध, १६/८०
७७. शिशु०वध, २/३
७८. शिशु०वध, १४/३५

तृतीय अध्याय

धर्म के तत्त्व

संस्कृत के सभी महाकवि भारतीय संस्कृति के प्रति अतिशय आस्थावान् हैं। संस्कृति की कोई निश्चित परिभाषा नहीं की जा सकती है। उसकी मात्र अनुभूति कृतियों, दर्शनों और उदाहरणों से होती है। विशिष्ट भूभाग, जनसमूह निवास की लम्बी अवधि, उस क्षेत्र के अधिनिवासी व्यक्तियों के विशिष्ट जीवन मूल्यों के प्रति आस्था और मान्यता संस्कृति के महत्त्वपूर्ण घटक हैं। धर्म और संस्कृति एक दूसरे के पूरक हैं। भारतीय संस्कृति में धर्म अनस्यूत होने के कारण आध्यात्मिकभावना, सहिष्णुता, सदाचार, पुनर्जन्म, मोक्ष, अभयत्व की भावना एवं कर्त्तव्यों की सजगता आदि में धार्मिक भावना परिव्याप्त है। शिशुपालवध का कथानक महाभारत पर आश्रित है। महाभारत के सम्बन्ध में कहा गया है–

'धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।।'[1]

अतः इस महाकाव्य में भी महाभारत के सन्दर्भ में कथित उक्त धारणाएँ अन्वर्थ दिखाई देती हैं।

महाकवि माघ कथावस्तु का विन्यास धार्मिक मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में करते हैं। यत्र-तत्र उनके मानस में समाहित धर्मशास्त्रीय सिद्धान्त स्पष्टतः व्यक्त हो गये हैं। यह स्थिति प्रायः पात्रों के संवादों एवं सूक्तियों में बहुधा उपलब्ध है। शिशुपालवध एक सहृदयहृदयसंवेद्य महाकाव्य है। अतः धर्म के तत्त्वों का क्रमबद्ध विवेचन करना माघ का लक्ष्य नहीं है, तथापि उनके वर्णनों में धर्मशास्त्रीय तत्त्वों का पर्याप्त विवरण सहज रूप से उपलब्ध है।

धर्म का अर्थ

धारण करना अर्थ का प्रतिपादक ञकारेत्संज्ञक-'धृञ् धारणे' धृ धातु भ्वादगणीय है। धृ धातु से **'अर्तिस्तु सु हु सृ धृ क्षि क्षु भा या वा पदियक्षिनी भ्यो मन्'** उणादिगणीय सूत्र द्वारा मन् (म) प्रत्यय करने पर **'सार्वधातुकार्ध-**

धातुकयोः' सूत्र से 'धृ' के ऋकार का गुण अर् होता है और तब 'धर्म' शब्द की सिद्धि होती है। इस प्रकार धर्म शब्द की व्युत्पत्ति–**'ध्रियते इति धर्मः'** अर्थात् जिसके द्वारा धारण किया जाय, वह धर्म है। अथवा **'ध्रियन्ते भावाः (पदार्थाः) येन सः धर्मः'** अर्थात् जिसके द्वारा अन्य सारे पदार्थ नियमपूर्वक धारण किये जाते हों, वह धर्म है।

धर्म का स्वरूप

प्राचीन काल से ही धर्म भारतीय समाज का प्रमुख अङ्ग रहा है। वेद, स्मृति, दर्शन, पुराण, धर्मसूत्र, गृह्यसूत्र, रामायण और महाभारत आदि धार्मिक ग्रन्थों में इसके स्वरूप का स्पष्टीकरण किया गया है। "वेद में धर्म मूलतः धार्मिक आचारों का प्रतिपादक है।"[२] ब्राह्मणग्रन्थों में भी धर्म का तात्पर्य धार्मिक कर्त्तव्य ही है। यथा-**धर्मस्य गोपाप्ता जनतिःतमभ्युत्कृष्टमेवं विदभिषेक्ष्यन्ने-तयार्चाभिमन्त्रयेत्**'।[३] वस्तुतः धार्मिक कर्म मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति कराते हैं। अत एव आनन्द और निःश्रेयस प्रदान करने वाले तत्त्व को धर्म नाम से अभिहित किया गया है–'**अथातो धर्म व्याख्यास्यामः। यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः**'[४] वशिष्ठस्मृति में '**श्रुति स्मृति विहितो धर्मः।**'[५] याज्ञवल्क्यस्मृति में–

'श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
सम्यक् सङ्कल्प यः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम्।।'[६]

गौतम धर्मसूत्र में–'**वेदो धर्ममूलम्। तद्विदां च स्मृतिशीले।**'[७] आपस्तम्ब धर्मसूत्र में-'**धर्मधज्ञः समयः प्रमाणं वेदाश्च।**'[८] आदि ग्रंथों में परिभाषित किया गया है।

'सर्वतन्त्रपदार्थलक्षणसङ्ग्रह' नामक ग्रन्थ में धर्म के अनेक लक्षण बताये गये हैं–'**अन्याश्रितत्त्वे सति स्वतन्त्रता शून्यो धर्मः**', '**विहित कर्मजन्यः धर्मः**'। '**दम्भम् विनायः क्रियते स धर्मः**', '**अलौकिक भोगः साधनत्वेन विहितक्रियाधर्मः**', '**वेद प्रतिपाद्यः प्रयोजनवदर्थो धर्मः**', '**धरति लोकान् इति धर्मः**', '**ध्रियते अनेन इति धर्मः**', '**सत्याज्जायते, दययादानेन च वर्धते, क्षमायां तिष्ठति, क्रोधान्नश्यति?**

मनु ने धर्म का विश्लेषण करते हुए लिखा है–

'वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्यं च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।।'[१०]

अथवा

'वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचाराश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव॥'[११]

मनुस्मृतिकार धर्म का लक्षण पुनः इस प्रकार देते हैं–

'धृतिःक्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥'[१२]

इन सभी लक्षणों के आधार पर यही कहा जा सकता है कि वेद, स्मृति विहित नीति निर्धारित तथा आत्मप्रेरित सत्कर्म ही धर्म है। इस प्रकार मानव के सारे करणीय कृत्य धर्म के अन्तर्गत आते हैं।

माघ की ईश्वर विषयक आस्था–

महाकवि माघ की भारतीय सन्दर्भ में धर्म शब्द के अर्थ की जो व्याप्ति है, उसके अनुसार कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ध्यान रखते हुए अपने वर्णनों को पल्लवित करते हैं। भारतीय धर्म में आस्थावान् एक या अनेक देवताओं में अटूट श्रद्धा रखता है। महाकवि माघ ने तो **'लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारु'** कहकर अपने महाकाव्य का प्रणयन किया है। इससे विष्णु के प्रति उनकी श्रद्धा और आस्था स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। शिशुपालवध के अनेक स्थलों पर कृष्ण (विष्णु) के प्रति उनकी अकृतिम श्रद्धा व्यक्त होती है।[१३] माघ कृष्ण को विष्णु का अवतार मानते हैं। इस सन्दर्भ में प्रस्तुत पद्य द्रष्टव्य है–

'सटाच्छटाभिन्नघनेन बिभ्रता
नृसिंह! सैहीमतनुं तनुं त्वया।
स मुग्धकान्तास्तनसङ्गभङ्गुरै-
रुरोविदारं प्रतिचस्करे नखैः॥'[१४]

माघ की महापुरुषों, ऋषियों-मुनियों के अलौकिक प्रभाव में भी आस्था दिखाई देती है। यथा–

'हरत्यघं सम्प्रति हेतुरेष्यतः
शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः।
शरीरभाजां भवदीयदर्शनं
व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम्॥'[१५]

यहाँ तक कि कवि जिस किसी वस्तु का दर्शन करता है, उसमें देवरूप

दिखाई देता है। माघ का रैवतक, हिरण्यगर्भ, शिव और कृष्ण के समान दिखाई देता है। यथा–

'सहस्रसंख्यैर्गगनं शिरोभिः पादैर्भुवं व्याप्य वितिष्ठमानम्।
विलोचनस्थानगतोष्णरश्मिनिशाकरं साधु हिरण्यगर्भम्।।'[१६]

और–

'क्वचिज्जलापायविपाण्डुराणि
धौतोत्तरीयप्रतिमच्छवीनि।
अभ्राणि बिभ्राणमुमाङ्गसङ्ग–
विभक्तभस्मानमिव स्मरारिम्।।'[१७]

श्रीकृष्ण की सेना द्वारका से निकलती है। इस अवसर पर महाकवि माघ सृष्टि, गङ्गावतरण और वेदों का प्रादुर्भाव उपमान रूप में प्रस्तुत करते हैं। यथा–

'प्रजा इवाङ्गादरविन्दनाभेः
शम्भोर्जटाजूटतटादिवापः।
मुखादिवाथ श्रुतयो विधातुः
पुरान्निरीयुर्मुरजिद्ध्वजिन्यः।।'[१८]

महाकवि माघ वैष्णवधर्म के पक्के अनुयायी होते हुए भी उन्होंने अन्य सम्प्रदायों और धर्मो के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त की है। एक ओर तो यज्ञ, हवन आदि की चर्चा करके ब्राह्मणधर्म को पुनरुज्जीवित करना चाहते हैं, तो दूसरी ओर बौद्धधर्म के अमूल्य सन्देशों की ओर सहृदय का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं। शिशुपालवध २/२८ में बौद्धों के पञ्चस्कन्ध, १५/५८ में बोधिसत्त्व, १९/११२ में जिन का श्रद्धापूर्ण निरूपण है, जिसमें महाकवि माघ की धार्मिक उदारता स्पष्ट है।

महाकवि माघ के निम्नलिखित श्लोक के आधार पर भी यह कहा जा सकता है कि वे भी **'वेदोऽखिलोधर्ममूलम्'** स्वीकार करते थे क्योंकि उन्होंने **'अक्षयो निधिः श्रुतीनाम्'** लिखा है। जैसा कि स्पष्ट है–

'कृतः प्रजाक्षेमकृता प्रजासृजा
सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना।
सदोपयोगेऽपि गुरुस्त्वमक्षयो
निधिः श्रुतीनां धनसम्पदामिव।।'[१९]

भाव यह कि जिस प्रकार लोककल्याणकर्त्ता ब्रह्मा ने सत्पात्ररूप आपको समस्त वेदों को सौंपकर (पढ़ाकर) निश्चिन्त हो, उन वेदों के अनुसार लोक में उपदेश को करते रहने पर भी कभी समाप्त नहीं होने वाले वेदों का निधि आपको बनाया है। आपको पिता ब्रह्मा ने समस्त वेदों का अध्ययन कराया है तथा आप उनके अनुसार लोक में उपदेश देते रहते हैं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि धर्म का मूल वेद है।

महाकवि माघ भी यह स्वीकार करते हैं कि जिसके द्वारा अन्य सारे पदार्थ नियमपूर्वक धारण किये जाते हों वह धर्म है। ऐसा लगता है कि श्रीकृष्ण को वे धर्मरूप ही मानते हैं; अत: वे कहते हैं–

'युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनो
जगन्ति यस्यां सविकासमासत।
तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विष-
स्तपोधनाभ्यागमसंभवा मुदः॥'[२०]

इस तथ्य को और भी स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है–

'सप्ततन्तुमधिगन्तुमिच्छतः
कुर्वनुग्रहमनुज्ञया मम।
मूलतामुपगते प्रभो त्वयि
प्रापि धर्ममयवृक्षता मया॥'[२१]

अर्थात् हे भगवन्! मैं यज्ञ करना चाहता हूँ, अत: उसके लिए आप अनुज्ञा प्रदान कर मुझे अनुग्रहीत करें। मूल में आपको ही प्राप्त करके मैंने धर्ममय वृक्ष का पद प्राप्त किया है। पाणिनिशिक्षा (श्लोक ४१, ४२) में लिखा है कि उस वेद भगवान् के शिक्षा नासिका, कल्प हाथ, व्याकरण मुख, निरुक्त कान, छन्द पैर और ज्योतिष आखें हैं। भाव यह है कि यही भगवान् श्रीकृष्ण ही माघ के अनुसार भी सब कुछ हैं। प्रस्तुत पद्यों से **'धरति लोकान् इति धर्मः'** की भी पुष्टि हो जाती है।

'अलौकिक भोगः साधनत्वेन विहितः क्रिया धर्मः' की पुष्टि निम्नलिखित श्लोक द्वारा किया है। जिसमें यह बताया गया है कि जो जिस इच्छा से आया था, उसकी उन सभी इच्छाओं की पूर्ति हो गई। यथा–

'नाना वाप्तवसुनाऽर्थकाम्यता
नाचिकित्सितगदेन रोगिणा।
इच्छताशितुमनाशुषा न च
प्रत्यगामि तदुपेयुषा सदः।।'[२२]

'अथातो धर्मव्याख्यास्यामः यतोऽभ्युदयः निःश्रेयस सिद्धिः सधर्मः की पुष्टि के लिए महाकवि माघ ने यज्ञप्रकरण के प्रसङ्ग में बताया है कि उस यज्ञ में सामवेद का सुखकर गान हो रहा था; उससे अलौकिक आनन्द की रसानुभूति हो रही थी। साथ ही निःश्रेयस के लिए भी कहा है कि जो जिस इच्छा से आया था; उसकी सम्पूर्ण इच्छाओं की पूर्ति भी हो गई थी। भाव यह कि जहाँ पर साक्षात् विष्णुजी पधारे हों; वहाँ पर किसकी कौन सी पूर्ति नहीं हो सकती है? अर्थात् सभी। शायद इसीलिए मुमुक्षुओं को उनका ही ध्यान करना बताया है। यथा–

**'ग्राम्यभावमपहातुमिच्छवो
योगमार्गपतितेन चेतसा।
दुर्गमेकमपुनर्निवृत्तये यं
विशन्ति वशिनं मुमुक्षवः।।'[२३]**

इस प्रकार से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि धर्म जीवन का वह संविधान है जो व्यक्ति के व्यक्तिगत सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक कर्त्तव्यों की व्याख्या करके कर्त्तव्यपालन के लिए प्रेरित करता है। वस्तुतः धर्म नीतिनियमों का अवलम्बन, व्यक्तित्वविकास, चरित्रनिर्माण जिसमें श्रमशीलता, मितव्ययिता, जिम्मेदारी, ईमानदारी आदि जो मानव गरिमा के अनुकूल है; उन सब का समन्वय है।

धर्म का अर्थ साम्प्रदायिक परम्पराओं का निर्वाह नहीं, वरन् कर्त्तव्यपालन है। किसी सम्प्रदायविशेष में आस्था रखना, उसकी प्रथापरिपाटी अपनाना, एक समुदायविशेष की रीतिनीति हो सकती है, किन्तु धर्म का जिस व्यापक रूप में प्रयोग होनाा चाहिए उसे मानवीय कर्त्तव्यों का समन्वय ही कहा जा सकता है। धर्म मनुष्य की सर्वोपरि आवश्यकता है। जीवन की सार्थकता अपने आप को धर्मपरायण बना लेना है। महाकवि माघ के उपर्युक्त उद्धरण उनके धर्मपरायण होने के द्योतक हैं।

धर्म केवल ईश्वर विषयक विश्वास का द्योतक न होकर सारे कर्त्तव्यविधान

का अवबोधक है। इस प्रकार माघ के काव्य में समाज के विविध घटकों के धर्मों (कर्त्तव्यों) का उपयुक्त-निर्देश प्राप्त होता है। माघ ने ब्राह्मण (ऋषिमुनि) क्षत्रिय (राजा) तथा वैश्य आदि का वर्णन करते समय उनके धर्मो (कर्त्तव्यों) का भी सङ्केत करते हैं। माघ का यह निरूपण धर्मशास्त्रसम्मत होते हुए भी युगबोधसमन्वित और मौलिक है। माघकाव्य में अतिथिसत्कार, प्रजा का सुख, यज्ञ, दान, गुरुजनों का सम्मान, सहिष्णुता एवं निर्भयता आदि का यथास्थल निरूपण प्राप्त होता है, जिसे धर्म अथवा कर्त्तव्य के व्यापकफलक में ही समाहित माना जाएगा।

वर्णाश्रम धर्म

भारतीय संस्कृति में वर्ण और आश्रम की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। वर्ण चार है–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र। आश्रम भी चार हैं–ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। यह विभाजन कर्म की दृष्टि से है। प्रारम्भ में यह प्राकृतिकश्रम विभाजन व्यक्तिगत था, बाद में पैतृक हो गया। पुरुषसूक्त का–'

'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत॥'[२४]

यह कथन श्रम अथवा कार्य विभाजन का रूपकात्मक रूप है। दार्शनिक दृष्टि से सांख्य के अनुसार तीन गुण हैं–सत्त्व, रजस् एवं तमस्। इनके आधार पर वर्णविभाजन माना जाता है। सत्त्वगुण (ज्ञान अथवा प्रकाश) ब्राह्मणवर्ण, रजोगुण (क्रिया अथवा शक्ति) क्षत्रियवर्ण और तमोगुण (अन्धकार, लोभ एवं मोह) वैश्यवर्ण, तमोगुण में ही अन्धकार की जड़ता शूद्रवर्ण। वर्ण जाति से भिन्न है। वर्ण सैद्धान्तिक तथा वैचारिक संस्था है, जबकि जाति का आधार जन्म अथवा प्रजाति है। वस्तुतः भारतीय दृष्टि से इसके गुण तथा कर्म के आधार पर उक्त चार विभाग हैं। जैसा कि गीता में भगवन् श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है–

'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्त्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥'[२५]

इस प्रकार चार प्रकार के आश्रमों में स्थित चार प्रकार के मनुष्य नहीं हैं अपितु एक ही मनुष्य के जीवनक्रम की चार स्थितियाँ हैं।

महाकवि माघ के शिशुपालवध में सभी वर्णो और आश्रमों का तात्त्विक स्वरूप भले ही स्पष्ट नहीं है किन्तु उनके वर्णनों में विधीयमानकर्त्तव्य पात्रों के कार्यव्यापारों और वक्तव्यों में व्यक्त हुए हैं। माघ का एतद्विषयक निरूपण

अत्यन्त संश्लिष्ट है, क्योंकि वर्णनों में एक ही प्रसङ्ग में ब्राह्मण (ऋषि) क्षत्रिय एवं वैश्य एक साथ चित्रित हुए हैं।

ब्राह्मणधर्म और क्षत्रियधर्म (राजधर्म)–

शुक्ल यजुर्वेद (२०/२५) में कहा गया है–

'यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेयं यत्र देवा महाग्निना॥'

तात्पर्य यह है कि जहाँ ब्राह्मण और क्षत्रिय परस्पर एक-दूसरे के सहयोगी होते हैं, वह लोक पुण्यवान् होता है। इस कथन का स्वारस्य प्रथम सर्ग में श्रीकृष्ण के पास नारद के आगमन और उनके वार्तालाप में स्पष्ट है। आकाश से उतरते हुए नारद की तेजस्विता तथा धरती पर आने पर उनके रूप का वर्णन तथा वार्तालाप में उनकी उदात्त भावनाएँ एक तपस्वी ब्राह्मण का सटीक रेखाङ्कन करती हैं। यथा–

'दधानमम्भोरुहकेसरद्युती-
र्जटाः शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम्।
विपाकपिङ्गास्तुहिनस्थलीरुहो
धराधरेन्द्रं व्रततीततीरिव॥'[२६]

'पिशङ्गमौञ्जीयुजमर्जुनच्छविं
वसानमेणाजिनमञ्जनद्युति।
सुवर्णसूत्राकलिताधराम्बरां
विडम्बयन्तं शितिवाससस्तनुम्॥'[२७]

विहङ्गराजाङ्गरुहैरिवायतै-
र्हिरण्मयोर्वीरुहवल्लितन्तुभिः।
कृतोपवीतं हिमशुभ्रमुच्चकै
र्घनं घनान्ते तडितां गणैरिव॥'[२८]

अजस्रमास्फालितवल्लकीगुण
क्षतोज्ज्वलाङ्गुष्ठनखांशुभिन्नया।
पुरः प्रवालैरिव पूरितार्धया
विभान्तमच्छस्फटिकाक्षमालया॥'[२९]

उपर्युक्त पद्यों में माघ एक तपस्वी ब्राह्मण का वेश–पीली मूँज की मेखला,

मृगचर्म, धौतवस्त्र, यज्ञोपवीत एवं माला आदि का सुन्दर वर्णन करते हैं; जैसा कि वेशभूषा की दृष्टि से धर्मशास्त्रीयग्रन्थों में ब्राह्मण के लिए विधान किया गया है। ब्राह्मण लोककल्याण की कामना से अध्ययनाध्यापन के साथ राजा तथा समाज का मार्गदर्शन करता है। यहाँ पर नारद के माध्यम से माघ एक ब्राह्मण के कर्त्तव्य (धर्म) का शास्त्रविहित विन्यास करते हैं। श्रीकृष्ण के द्वारा नारद के प्रति व्यक्त भावनाओं में एक तपस्वी (ब्राह्मण) का स्वरूप उन्मीलित है। यथा–

'हरत्यघं सम्प्रति हेतुरेष्यतः
शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः।
शरीरभाजां भवदीयदर्शनं
व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम्॥'[३०]

अर्थात् आपका दर्शन शरीरधारियों के तीनों कालों (भूत, वर्तमान और भविष्य) की पवित्रता की सूचना देता है; क्योंकि (वर्तमानकाल में तो) वह पापों को नष्ट करता है, भविष्य के कल्याण का कारण होता है तथा पूर्वकाल (भूतकाल) में किए गये सुकृतों का परिणाम होता है।

तात्पर्य यह है कि बिना सुकृत किए पुण्यात्माओं का दर्शन मिलने वाला नहीं है। वर्तमान में पापों का नाश करता है तथा भविष्य के मङ्गल की सूचना देता है। इस प्रकार जो व्यक्ति तीनों कालों में पवित्र कर्मों वाला होता है, उसे ही आप जैसे (महान देवता) का दर्शन मिलता है। यह पुण्यकार्य धर्मानुपालन से ही संभव होता है जो श्रुति और स्मृति में निरूपित है–

'कृतः प्रजाक्षेमकृता प्रजासृजा
सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना।
सदोपयोगेऽपि गुरुस्त्वमक्षयो
निधिः श्रुतीनां धनसंपदामिव॥'[३१]

अर्थात् प्रजावर्ग के कल्याणकर्त्ता तथा सत्पात्र (रूप सुयोग्य पुत्र) में रखने से निराकुल चित्तवाले ब्रह्मा ने आपको निरन्तर उपयोग करने पर भी वेदों का क्षयहीन (अक्षय) विशालनिधि (खजाना) उस प्रकार बनया है, जिस प्रकार सन्तान का कल्याणकर्त्ता तथा सुन्दर (दृढ़तम) (भाण्डादि) वर्तन में रखने से निराकुल चित्तवाला सन्तानोत्पत्तिकर्त्ता पिता धनसम्पत्तियों का सर्वदा व्यय करने पर भी समाप्त नहीं होने वाला महान् निधि पुत्र को बनाता है।

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार अपनी सन्तति का शुभचिन्तक पिता उनके

भविष्य के उपयोग के लिए बहुत सी धनसम्पत्ति एकत्र करके लोहे की तिजोरियों अथवा कड़ाहों में रखकर निश्चिन्त रहता है और अधिकाधिक मात्रा में उस धन के रहने के कारण सर्वदा उचित व्यय (उपयोग) करने पर भी जैसे वह धन नहीं चुकता, उसी प्रकार निखिल विश्व की प्रजा के मङ्गलकारी भगवान् ब्रह्मा ने आपको (नारदजी को) श्रुतियों का निधि बनाया है। आप जैसे सुयोग्य पात्र में वेदों की अमूल्य निधि को सौंपकर वे बिल्कुल निश्चिन्त हो गये हैं। इस प्रकार आप श्रुतियों के अक्षय निधि हैं और सर्वदा घूम-घूम कर उपदेश देने पर भी आपकी वह ज्ञाननिधि समाप्त नहीं होती है। ऐसे वेदनिधि देवर्षि का दर्शन किसके लिए मङ्गलकारी न होगा?

'विलोकनेनैव तवामुना मुने
कृतः कृतार्थोऽस्मि निवर्हितांहसा।
तथापि शुश्रूषुरहं गरीयसी-
र्गिरोऽथवा श्रेयसि केन तृप्यते।।'[३२]

अर्थात् हे मुनि! यद्यपि पाप को दूर करने वाले आपके इस दर्शन से ही मैं कृतकृत्य हो गया हूँ तथापि मैं आपकी प्रयोजनवती वाणी सुनने का (बहुत ही) इच्छुक हूँ, क्योंकि अपने कल्याण से कौन तृप्त होता है? अर्थात् अपने कल्याण से कभी कोई सन्तुष्ट नहीं होता। अधिक से अधिक कल्याण की सबको इच्छा बनी रहती है। दर्शनलाभ से कृतकृत्य होने पर भी मैं आपकी प्रयोजनवती वाणी सुनकर और भी कल्याणभाजन बनूँगा।

ब्राह्मण के प्रति राजा का अर्थात् बुद्धिमान हितैषी के प्रति शासक का कैसा व्यवहार होना चाहिए? यह भी इसी प्रसङ्ग में कृष्ण द्वारा किये गए नारद के स्वागत वर्णन में महाकवि माघ निर्दिष्ट करते हैं। इस दृष्टिकोण से अधोलिखित पद्य अवलोकनीय है—

'गतस्पृहोऽप्यागमनप्रयोजनं
वदेति वक्तुं व्यवसीयते यया।
तनोति नस्तामुदितात्मगौरवो
गुरुस्तवैवागम एष धृष्टताम्।।'[३३]

श्रीकृष्ण इस प्रकार विनय प्रकट करते हुए नारदजी के आने का कारण बड़ी चतुरता से पूछते हैं—निस्पृह रहते हुए भी आप आने का कारण कहें, यह कहने वे लिए जो (धृष्टता मुझे) उद्यत कर रही है, हमारी उस धृष्टता को मेरे

को कहने (या उत्पन्न करने) वाला आपका प्रशस्त आगमन ही बढ़ा रहा है। यहाँ पर कितनी वाक्चातुरी और शिष्टता भरी हुई है। विरक्त नारदजी के द्वारका आगमन का प्रयोजन पूछना धृष्टता है, किन्तु उस धृष्टता को प्रोत्साहन देने वाला स्वयं उन्हीं का आगमन है।

महाकवि माघ का अधोलिखित पद्य ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को रेखाङ्कित करता है–

'विद्वद्भिरागमपरैर्विवृतं कथञ्चि-
च्छ्रुत्वापि दुर्ग्रहमनिश्चितधीभिरन्यैः।
श्रेयान् द्विजातिरिव हन्तुमघानि दक्षं
गूढार्थमेष निधि मन्त्रगणं विभर्ति॥'[३४]

अर्थात् यह रैवतक गिरि श्रेष्ठ ब्राह्मण की भाँति आगमपरायण अर्थात् निधि की खोज में रहने वालों (ब्राह्मण पक्ष में, मंत्रशास्त्र के साधनों और विधानों को जानने वालों) से किसी प्रकार प्रकाश में लाई गई तथा अन्य अनिश्चित बुद्धि वालों द्वारा सुनने पर भी (अर्थात् यहाँ निधि है अथवा यह मंत्र है-ऐसा सुनकर भी) दुष्प्राप्य एवं दारिद्रय (पापों) को नष्ट करने में समर्थ गूढ़ अर्थ वाली अर्थात् छिपे हुए धन वाली (पक्ष में, अप्रकट अर्थ वाले) निधियों को मंत्र की भाँति (पक्ष में, मंत्र को गुप्त निधि की भाँति) धारण किए हुए है। भाव यह कि जिस प्रकार एक श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मण अनेक गोपनीय मंत्रों को जानता है, उसी प्रकार यह रैवतक भी अनेक प्रचुर धनराशि वाली निधियों को भीतर छिपाये हुए है।

महाकवि माघ का प्रस्तुत पद्य ब्राह्मण और क्षत्रिय (राजा) के पारस्परिक सम्बन्धों के कार्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। यथा–

'हस्तस्थिताखण्डितचक्रशालिनं
द्विजेन्द्रकान्तं श्रितवक्षसं श्रिया।
सत्यानुरक्तं नरकस्य जिष्णवो
गुणैर्नृपाः शार्ङ्गिणमन्वयासिषुः॥'[३५]

श्रीकृष्ण के चलने पर दूसरे राजा लोग भी उनके पीछे-पीछे चल पड़े। श्रीकृष्ण के हाथ में अखण्डित सुदर्शनचक्र था। इन राजाओं के हाथों में अखण्डित चक्रों के चिह्न थे। श्रीकृष्ण द्विजराज अर्थात् चन्द्रमा के समान सुन्दर थे तो ये राजा लोग द्विजराजों अर्थात् उत्तम ब्राह्मणों के प्यारे थे। श्रीकृष्ण के हृदय में लक्ष्मी विराजमान थीं तो इन राजाओं के वक्षस्थल भी शोभा सम्पन्न थे। श्रीकृष्ण अपनी प्रिया सत्यभामा में अनुरक्त थे तो ये सब भी सत्य आचरणों में

प्रेम रखने वाले थे। श्रीकृष्ण ने नरकासुर को पराजित किया था तो राजाओं ने भी अपने शुभ कर्मो द्वारा नरक को जीत लिया था। इस प्रकार इन राजाओं ने प्रयाण में श्रीकृष्ण का अनुकरण ही नहीं किया, अपितु गुणों में भी वे यथाशक्ति उनका अनुकरण कर रहे थे।

महाकवि माघ अधोलिखित पद्य में यम-नियम की बातें करते हैं। यह गुण ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों दोनों के लिए महत्त्वपूर्ण है। यथा–

'वशिनं क्षितेरयनयाविवेश्वरं
नियमो यमश्च नियतं यतिं यथा।
विजयश्रिया वृतमिवार्कमारुता-
वनुसस्त्रतुस्तमथ दस्त्रयोः सुतौ।।'[३६]

यहाँ पर यम और नियम कहने से माघ का आशय **'अहिंसासत्यास्तेय-ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः'** और **'शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः'** से है।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्राह्मणों के स्वाभाविक कर्मों (धर्मों) का विवरण इस प्रकार करते हैं–

'शमोदमस्तपः शौचक्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानं मास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।।'[३७]

अर्थात् शम–(अन्तःकरण का निग्रह), दम–(इन्द्रियों का दमन), शौच–(बाह्यान्तः की शुद्धि) तप–(धर्म के लिए कष्ट सहिष्णुता) क्षान्ति–(क्षमाभाव), आर्जवम्–(मन, इन्द्रिय और शरीर की सरलता) आस्तिकता–शास्त्रविषयज्ञान और परमात्मतत्त्व का अनुभव; ये सब ब्राह्मणों के स्वाभाविक कर्त्तव्य हैं। यहाँ पर माघ का आशय गीता के उपर्युक्त आशय की पुष्टि करता है।

मनुस्मृति में ब्राह्मणों के कर्त्तव्यों को इस प्रकार से रेखाङ्कित किया गया है–

'अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्।।'[३८]

इस प्रकार अध्ययन-अध्यापन, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान लेना, दान देना आदि ब्राह्मणों का कर्त्तव्य है।

याज्ञवल्क्यस्मृति में भी ब्राह्मणों के कर्त्तव्यों की इस प्रकार से पुष्टि की गई है–

'प्रतिग्रहोऽधिको विप्रेयाजनाध्यापने।'[३९]
'प्रतिग्रहोऽयापनं च याजनं ब्राह्मणेऽधिकम्।'[४०]

अर्थात् अध्यापन करना, यज्ञ कराना तथा दान लेना ब्राह्मणों के विशिष्ट कर्म है।

महाकवि माघ ब्राह्मणों के विशिष्ट कर्मों का उल्लेख यज्ञप्रकरण में इस प्रकार करते हैं–

अध्ययन-अध्यापन, एवं यज्ञ कराने की दृष्टि से माघ के अधोलिखित पद्य अवलोकनीय हैं–

'शुद्धमश्रुतिविरोधि विभ्रतं
शास्त्रमुज्ज्वलमवर्णसङ्करैः।
पुस्तकैः सममसौ गणं मुहु-
र्वाच्यमानमशृणोद्द्विजन्मनाम्॥'[४१]

राजा युधिष्ठिर ने आचरण से पवित्र, वेदाविरुद्ध (पुराणादि) शास्त्र को धारण करते (हाथ में लिए या अभ्यास द्वारा कण्ठस्थ किए हुए), वर्णसङ्करता से हीन अर्थात् सत्कुलोत्पन्न ब्राह्मणसमूह को, (अपशब्द रहित होने से) शुद्ध (सुनने में मधुर होने से) कान के अनुकूल व्याख्यान किए जाते हुए (अथवा वेदाविरुद्ध पुराणादि शास्त्रों से अन्वयगुणादि के क्रम से प्रस्तुत किए जाते हुए), असङ्कीर्ण अक्षरों वाले पुस्तकों के (पुस्तकाक्षर वाक्यों के) सहित गोष्ठी (या-स्वस्त्ययन) करते हुए सुना।

तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण लोग गोष्ठी अथवा (स्वस्त्ययनपाठ) कर रहे थे, जो पवित्र, सदाचारी, वेदसम्मत मीमांसादि शास्त्रों से युक्त तथा कुलीन थे और असङ्कीर्ण अक्षरों वाले, श्रवणमधुर, व्याख्या किए जाते हुए या-वेदानुकूल पुराणादि शास्त्र के अनुसार वंशादिक्रम से प्रस्तूयमान पुस्तकों से युक्त थे; अर्थात् युधिष्ठिर ने दान के समय में प्रत्येक ब्राह्मणों के गुणों एवं गोष्ठियों को सुना।

'शब्दितामनपशब्दमुच्चकै-
र्वाक्यलक्षणविदोऽनुवाक्यया।
याज्यया यजनकर्मिणोऽत्यज-
न्द्रव्यजातमपदिश्य देवताम्॥'[४२]

मीमांसाशास्त्र में पारङ्गत ऐसे यज्ञकर्त्ता पुरोहित (ब्राह्मण) लोग, जिनके

में कभी अशुद्धियाँ नहीं होती थी, उच्च स्पष्ट स्वर से याज्याश्रुति का कर आवाहित देवताओं को लक्ष्य करके अग्नि में आहुतियाँ छोड़ने लगे।

'नाञ्जसा निगदितुं विभक्तिभि-
र्व्यक्तिभिश्च निखिलाभिरागमे।
तत्र कर्मणि विपर्यणीनमन्
मन्त्रमूहकुशलाः प्रयोगिणः॥'[४३]

अर्थात् लिङ्ग, वचन इत्यादि के भेद से शब्दों के अर्थों को बदलने में निपुण पुरोहित (ब्राह्मण) लोग उस यज्ञ में वेदोक्त सम्मत समस्त विभक्ति, वचन और लिङ्गों के द्वारा कठिन मंत्रों के अर्थों में बड़ी कुशलता से उक्त फेरबदल कर देते थे।

महाकवि माघ निम्नलिखित पद्यों में ब्राह्मणों के दान लेने का सङ्केत करते हैं–

'दक्षिणीयमवगम्य पङ्क्तिशः
पङ्क्तिपावनमथ द्विजव्रजम्।
दक्षिणः क्षितिपतिर्व्यशिश्रण-
द्दक्षिणाः सदसि राजसूयकीः॥'[४४]

और भी–

किं नु चित्रमधिवेदि भूपति-
र्दक्षयन्द्विजगणानपूयत।
राजतः पुपुविरे निरेनसः
प्राप्य तेऽपि विमलं प्रतिग्रहम्॥'[४५]

महाकवि माघ अधोलिखित पद्य में अर्घ्यदान लेने के अधिकारी का निरूपण इस प्रकार करते हैं–

'स्नातकं गुरुमभीष्टमृत्विजं
संयुजा च सह मेदिनीपतिम्।
अर्घभाज इति कीर्तयन्ति षट्
ते च ते युगपदागताः सदः॥'[४६]

स्नातक, गुरु, बंधु, पुरोहित, जामाता तथा राजा आदि छहों को अर्घ्य का पात्र अर्थात् पूज्य बतलाया है।

'शोभयन्ति परितः प्रतापिनो
मंत्रशक्तिविनिवारितापदः।
त्वन्मखं मुखभुवः स्वयंभुवो
भूभुजश्च परलोकजिष्णवः॥'[147]

शत्रुओं को सन्तप्त करने वाले (तेजस्वी) वेदमंत्रों की शक्ति से (विचार-शक्ति से) दैवी और मानुषी विपत्तियों को दूर करने वाले, परलोक को जीतने वाले (शत्रुओं को पराजित करने वाले) स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न ब्राह्मण तथा राजा लोग तुम्हारे इस यज्ञ को चारों ओर से सुशोभित कर रहे हैं। प्रस्तुत पद्य से नारद के ब्रह्मा के पुत्र होने से ब्राह्मण की पुष्टि हो जाती है।

राजधर्म (क्षत्रियधर्म)

राजधर्म का विवेचन अनेक ग्रन्थों में प्राप्त होता है। यहाँ पर 'धर्म' शब्द कर्त्तव्य के अर्थ में ही प्रयुक्त है। राजा समाज का आदर्श माना जाता है। महाकवि माघ राजा के छोटे-मोटे कर्त्तव्यों से लेकर सेना की छोटी-मोटी बातों तक का विवेचन करते हैं। सन्धि-विग्रह आदि गुणों के प्रयोगों के अवसरों पर वे अपनी युक्तियों तथा परस्पर विरोधी तर्कों से उसे इतना सुगम बना देते हैं कि उनकी सूझ-बूझ पर विस्मित होना पड़ता है। उद्धव और बलराम के मुख से तथा युधिष्ठिर और भीष्म के मुख से भी उन्होंने राजनीति की जटिल से जटिल समस्याओं पर ऐसे उपादेय हल प्रस्तुत करते हैं; जो आज प्रजातन्त्र के युग में उसी प्रकार प्रयोग में लाये जा सकते हैं। प्रजा की सर्वविध हित-रक्षा और राजा के विशेष व्यापक अधिकारों को ध्यान में रखते हुए वे जिस राजतन्त्र की समर्थिका राजनीति की चर्चा अपने महाकाव्य में की है, वह भारतीयसभ्यता एवं संस्कृति की परम्परा के सर्वथा अनुकूल ही है। राजनीति की जटिल गुत्थियों पर वे जो प्रसङ्गगत विचार व्यक्त करते हैं, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि उनका यह ज्ञान कोरा किताबी ज्ञान नहीं है। शिशुपालवध का द्वितीय सर्ग कवि की राजनीतिज्ञता का प्रमाण कहा जा सकता है। राजनीतिक दाँव-पेचों की ऐसी कोई चीज उसमें नहीं छूट पायी है, जिसकी कमी की ओर ध्यान जा सके। वे परस्पर विरोधी विचारों को आमने-सामने रखकर उचित पक्ष के निर्णय का जो प्रसङ्ग उपस्थित करते हैं, उससे पाठकों को भी दैनिक कार्यो में आवश्यक राजनीति का अपेक्षित ज्ञान हो जाता है।

गीता में क्षत्रियधर्म का निर्देश इस प्रकार है–

'शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वर भावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।।'[४८]

याज्ञवल्क्यस्मृति में क्षत्रिय का प्रमुख कर्त्तव्य प्रजा का पालन करना बताया गया है–

'प्रधानं क्षत्रिये कर्म प्रजानां परिपालनम्।'[४९]

आचार्य शुक्र क्षत्रियों के तीन कर्त्तव्यों का उल्लेख करते हैं–सज्जनों की रक्षा करना, दुष्टों का नाश करना, कर लेना। यथा–

'संद्रक्षणं दुष्टानाशः स्वांशादानं तु क्षत्रिये।'[५०]

तदनुसार शिशुपालवध में क्षत्रिय अथवा राजा की रीति-नीति का शोभन निरूपण प्राप्त होता है। माघ क्षत्रियधर्म का अत्यन्त व्यापक विन्यास करते हैं। उनके अधोलिखित पद्यों में राजनीति के माध्यम से कहे गये; राजा (क्षत्रिय) के कर्त्तव्यों का सङ्केत इस प्रकार प्राप्त होता है। यथा–

'सम्पदा सुस्थिरं मन्यो भवति स्वल्पयापि यः।
कृतकृत्यो विधिर्मन्ये न वर्धयति तस्य ताम्।।'[५१]

अर्थात् जो (राजादि) थोड़ी सी सम्पत्ति पा जाने पर अपने को सुस्थिर या निश्चित मान लेता है, उसकी उस स्वल्प सम्पत्ति को कृतार्थ विधाता भी नहीं बढ़ाता है–ऐसा मैं मानता हूँ। तात्पर्य यह है कि राजा को समृद्धिमान् रहते हुए भी तावन्मात्र से सन्तुष्ट होकर चुप नहीं बैठना चाहिए।

'विपक्षमखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा।
अनीत्वा पङ्क्तां धूलिमुदकं नावतिष्ठते।।'[५२]

अर्थात् शत्रु का समूल नाश किए बिना प्रतिष्ठा की प्राप्ति दुर्लभ है, क्योंकि धूलि को विना कीचड़ बनाये पानी भूमि पर नहीं ठहरता है।

'विधाय वैरं सामर्षे नरोऽरौ य उदासते।
प्रक्षिप्योदर्चिषं कक्षे शेरते तेऽभिमारुतम्।।'[५३]

जो व्यक्ति पहले ही से रूठे हुए शत्रु के साथ बैर ठानकर उसकी उपेक्षा करता है अथवा उसकी ओर से उदासीन हो जाता है, वह घास की ढेर में जलती हुई आग को डालकर हवा के सामने सोता है अर्थात् घास की ढेर में जलती हुई

आग डालकर हवा के रुख पर सोने वाले व्यक्ति के समान रूठे हुए शत्रु के साथ विरोधकर उसकी उपेक्षा करने वाला व्यक्ति मारा जाता है।

'पादाहतं यदुत्थाय मूर्द्धानमधिरोहति।
स्वस्थादेवावमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः॥'[५४]

अर्थात् जो धूल पैर से आहत होने पर उड़कर आहत करने वाले के शिर पर चढ़-चढ़ जाती है, वह अपमान होने पर भी वेफिक्र अथवा शान्त बैठे रहने वाले व्यक्ति से अच्छी ही है।

महाकवि माघ राजनीति के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग तो अनेक स्थलों पर करते हैं—छः गुण, तीन शक्ति, तीन उदय तथा अङ्ग पञ्चक आदि पारिभाषिक शब्दों की चर्चा इन पद्यों में द्रष्टव्य है—

'षडगुणाः शक्तयस्तिस्रः सिद्धयश्चोदयास्त्रयः।'[५५]

राजा के सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधीभाव ये छः गुण हैं। पैसा दे-लेकर सुलह करने का नाम सन्धि है, विग्रह का अर्थ है—अपकार करना, यान चढ़ाई करने को कहते हैं, आसन का तात्पर्य है उपेक्षा करना, संश्रय है—दूसरे की शरण लेना तथा द्वैधीभाव का अर्थ है—एक के साथ सुलह करके उसकी सहायता से दूसरे से विग्रह करना।

प्रभुशक्ति, मन्त्रशक्ति और उत्साहशक्ति नामक तीन शक्तियाँ होती हैं। कोष, दुर्ग एवं दण्डसम्पत्ति को प्रभुशक्ति कहते हैं, कोश का अर्थ है खजाना, दुर्ग किले को कहते हैं, जो अच्छी तरह प्राकार और परिखा आदि से सुरक्षित हो तथा चतुरङ्गिनी सेना की सम्पत्ति का नाम ही दण्डसम्पत्ति है। विज्ञान को मन्त्रशक्ति तथा पराक्रम को उत्साहशक्ति कहते हैं।

भूमि, सुवर्ण तथा मन्त्र तीन सिद्धियाँ हैं। चय, अपचय तथा स्थान तीन उदय हैं। चय का अर्थ है वृद्धि, अपचय कहते हैं—विनाश तथा स्थान उस अवस्था को कहते हैं, जिसमें न वृद्धि हो न विनाश।

'सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्धपञ्चकम्।
सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम्॥'[५६]

कार्यों के आरम्भ करने का उपाय, कार्यों की सिद्धि में उपयोगी वस्तुओं का सङ्ग्रह, देश तथा काल (स्थान तथा समय) का यथायोग्य विभाजन, विपत्तियों को दूर करने के उपाय और कार्यों की सिद्धि—ये पाँच अङ्ग ही राजाओं

के मन्त्र हैं। यहाँ पर बलरामजी के कहने का आशय यह है कि यदि राजाओं के सहाय आदि पाँच अङ्ग ठीक रहते हैं; तो उनके संधि-विग्रह आदि समस्त कार्य अनायास सिद्ध हो जाते हैं; ऐसी अवस्था में उन्हें मन्त्रणा करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती, अतएव हम लोगों के भी सहायादि पाँच अङ्ग ठीक-ठीक व्यवस्थित हैं; इस कारण हमारी विजय अवश्य ही होगी। एतदर्थ मन्त्रणा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। हम लोगों को अब शीघ्रातिशीघ्र शिशुपाल से लड़ने के लिए प्रस्थान कर देना चाहिए। कुछ अन्य पारिभाषिक शब्द भी अवलोकनीय हैं–

'उदेतुमत्यजन्नीहां राजसु द्वादशस्वपि।
जिगीषुरेको दिनकृदादित्येष्विव कल्पते॥'[५७]

अर्थात् बारह प्रकार के राजाओं के मध्य में विजयाभिलाषी राजा अकेला होने पर भी बारहों आदित्यों के मध्य में दिनकर सूर्य की भाँति इच्छा शक्ति को न छोड़ते हुए अपनी उन्नति में समर्थ होता है। बारह प्रकार के आदित्यों की भाँति बारह प्रकार के राजा इस प्रकार हैं–शत्रु, मित्र, शत्रु का मित्र, मित्र का मित्र, शत्रु के मित्र का मित्र पार्ष्णिग्राह अर्थात् अपने पीछे सहायता पहुँचाने के लिए स्वयं आने वाला, पार्ष्णिग्राहासार अर्थात् अपने पक्ष में सहायता के लिए बुलाया हुआ राजा, आक्रन्दासार अर्थात् शत्रु के पक्ष में सहायतार्थ बुलाया हुआ राजा, विजिगीषु अर्थात विजयाभिलाषी, मध्यम तथा उदासीन। इन बारहों में से प्रथम पाँच आगे चलने वाले या सामने रहने वाले होते हैं, पार्ष्णिग्राह आदि चार विजिगीषु के पीछे रहने वाले होते हैं, मध्यम सम्मिलित हुए दोनों पक्षों का वध करने में समर्थ अतएव स्वतन्त्र होता है और उदासीन उनके मण्डल से बाहर रहता है, यह भी स्वतन्त्र तथा सबसे बली होता है।

'बुद्धिशस्त्रः प्रकृत्यङ्गो घनसंवृतिकञ्चुकः।
चारेक्षणो दूतमुखः पुरुषः कोऽपि पार्थिवः॥'[५८]

अर्थात् बुद्धिरूपी शस्त्रवाला, प्रकृति (स्वामी, मन्त्री आदि सात) रूपी अङ्गों वाला, मन्त्र अत्यन्त गोपन रूप कवचवाला, गुप्तचररूप नेत्रोंवाला और दूतरूपी मुखवाला कोई भी पुरुष राजा होता है (या कोई राजा भी पुरुष होता है)।

तात्पर्य यह है कि जिसकी बुद्धि ही शस्त्र है, वह अर्थात् कोई राजा शस्त्रप्रयोग से शत्रु का वध करता है, पर वह बुद्धि से ही शत्रुवधरूप कार्य को पूरा कर लेता है, क्योंकि शस्त्रप्रयोग से सिद्धि में सन्देह रहता है पर बुद्धिप्रयोग से नहीं। प्रकृति (स्वामी, मन्त्री, मित्र, कोष, राष्ट्र, किला तथा सेना ये सात

अथवा–नागरिकसमूह) ही जिसके अङ्ग हैं वह अर्थात् कोई राजा अपने हाथ-पैर आदि अङ्गों से कार्य करता है, पर यह इन प्रकृतियों से कार्य को पूरा कर लेता है, क्योंकि इनके अभाव में राजसत्ता का ही अभाव हो जाता है। किये गये अत्यन्त गुप्तमन्त्र ही जिसके कवच हैं; वह अर्थात् कोई राजा दृढ़ कवच पहनकर आत्मरक्षा करता है, परन्तु वह अपने मन्त्र को अत्यन्त गुप्त रखकर ही उसी के द्वारा आत्मरक्षा करता है, अन्यथा मन्त्र के भेद होने से राज्य का भेद हो सकता है। गुप्तचर ही जिसके नेत्र हैं वह अर्थात् कोई राजा अपने मुख में स्थित नेत्रों से जहाँ तक वे नेत्र जाते हैं वहाँ तक देखता है, परन्तु वह अपने गुप्तचरों को अपने तथा शत्रु के राष्ट्रों में भेजकर उनके द्वारा सर्वत्र के वृत्तान्त को देखता अथवा मालूम करता है, अन्यथा अपने तथा शत्रु के राज्य के वृत्तान्त बहुत कम ज्ञात हो सकेंगे। दूत ही हैं मुख जिसके; वह अर्थात् कोई अपने मुख से कहकर कोई आदेश आदि देता है, पर वह दूतों के द्वारा अपना सन्देश पहुँचाता है अन्यथा मूक (गूंगे) के समान किसी वाग्व्यवहार को ही नहीं कर सकता। ऐसा (इन लक्षणों से युक्त) पुरुष ही राजा (वास्तविक कुशल शासक एवं सर्वप्रिय राजा) होता है अथवा–जो इन लक्षणों से युक्त राजा है वही (विलक्षण गुणसम्पन्न बिरले व्यक्तियों में गणनीय) होता है। अतएव शस्त्रादि प्रयोग की अपेक्षा बुद्धि आदि से काम लेना ही प्रशस्त मार्ग है।

महाकवि माघ अधोलिखित पद्य में राजाओं के राज्यसम्बन्धी विविध विषयों पर विचार करने के लिए ब्राह्ममुहूर्त का समय उपयुक्त बताते हैं–

'क्षणशयितविबुद्धाः कल्पयन्तः प्रयोगा
नुदधिमहति राज्ये काव्यवद्दुर्विगाहे।
गहनमपररात्रप्राप्तबुद्धिप्रसादाः
कवय इव महीपाश्चिन्तयन्त्यर्थजातम्।।'[५९]

अर्थात् राजा लोग कवि की ही भाँति रात्रि के पिछले प्रहर में जागकर राज्य की चिन्ता में लगकर साम, दाम आदि उपायों पर विचार करते हुए धर्म, अर्थ एवं काम की चिन्ता करते हैं।

माघ प्रस्तुत पद्य में पदभ्रष्ट राजा की ओर सङ्केत करते हैं–

'चिरमतिरसलौल्याद्बन्धनं लम्भितानां
पुनरयमुदयाय प्राप्य धाम स्वमेव।
दलितदलकपाटः षट्पदानां सरोजे
सरभस इव गुप्तिस्फोटमर्कः करोति।।'[६०]

अर्थात् कोई पदभ्रष्ट राजा पुनः अपने पद को प्राप्तकर विषयलोलुपता से स्वयं आकर चिरकाल तक पड़े स्वजनों को कारागार का फाटक तोड़कर मुक्त कर देता है।

माघ प्रस्तुत पद्य में राजा के कर्त्तव्य को रेखाङ्कित करते हैं–

'क्षणमयमुपविष्टः क्ष्मातलन्यस्तपादः
प्रणतिपरमवेक्ष्य प्रीतमह्नाय लोकम्।
भुवनतलमशेषं प्रत्यवेक्षिष्यमाणः
क्षितिधरतटपीठादुत्थितः सप्तसप्तिः।'[६१]

अर्थात् जिस प्रकार कोई महाराज सिंहासन पर बैठकर थोड़ी देर तक प्रणतजनों को आदर देकर तुरन्त ही अपने सम्पूर्ण राज्य को देखने के लिए चल पड़ता है, उसी प्रकार सूर्य ने भी पहले धरती पर अपने पैर रखे (किरणें फैलायी) और फिर प्रणत लोगों को सन्तुष्ट कर समग्र धरातल को देखने की इच्छा से उदयाचल के सिंहासन से उत्थान कर दिया। यहाँ भले ही माघ ने राजा को उपमान बनाया है किन्तु वे कहना चाहते हैं कि राजा को भी नियमित रूप से प्रतिदिन धरती के निरीक्षण के लिए निकलना चाहिए।

माघ निम्नलिखित पद्य में राजाओं के छत्र और सेना का सङ्केत भी करते हैं जो उसके विशिष्ट प्रभाव के लिए उचित ही है–

'शौरेः प्रतापोपनतैरितस्ततः
समागतैः प्रश्रयनम्रमूर्तिभिः।
एकातपत्रा पृथिवीभृतां गणै-
रभूद्बहुच्छत्रतया पताकिनी॥'[६२]

वह सेना भगवान् श्रीकृष्ण के प्रताप से उपनत (नम्र, अतएव) विनय से नम्रीभूत राजसमूहों से बहुत छत्रों वाली होने से केवल छत्रोंवाली ही हो गई अर्थात् श्रीकृष्ण भगवान् के प्रताप से आये हुए बहुत से छत्रधारी राजाओं के छत्र ही उस सेना में दिखलाई पड़ते थे। इस प्रकार वह केवल एक छत्रमयी दिखाई पड़ रही थी।

माघ अधोलिखित पद्य में राजा की मर्यादा की ओर ध्यानाकृष्ट करते हैं–

'निःशेषमाक्रान्तमहीतलो जलैश्च-
लन्समुद्रोऽपि समुज्झति स्थितिम्।
ग्रामेषु सैन्यैरकरोदवारितैः किम-
व्यवस्थां चलितोऽपि केशवः॥'[६३]

चलते हुए अर्थात् प्रलयकाल में क्षुब्ध होकर समुद्र भी अपनी जलराशि से समग्र भूमण्डल को व्याप्तकर अपनी मर्यादा का उल्लंघन कर देता है, किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण ने चलते हुए भी अपने असंख्य सैनिकों द्वारा सम्पूर्ण भूमण्डल को आक्रान्त करके क्या ग्रामों में तनिक भी कहीं अव्यवस्था होने दी या मर्यादा को छोड़ दी? अर्थात् तनिक भी अव्यवस्था नहीं होने दी।

महाकवि माघ प्रस्तुत पद्य में भगवान् श्रीकृष्ण की विनयशीलता का निरूपण करते हैं–

'अवलोक एव नृपतेः स्म दूरतो
रभसाद्रथादवतरीतुमिच्छतः।
अवतीर्णवान्प्रथममात्मना हरि-
र्विनयं विशेषयति संभ्रमेण सः॥'[६४]

अर्थात् राजा युधिष्ठिर दूर से ही भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर हर्ष के साथ जब-तक अपने रथ से नीचे उतरना ही चाह रहे थे कि उनसे पूर्व ही शीघ्रता के साथ अपने रथ से उतरकर भगवान् श्रीकृष्ण ने विशेष विनयशीलता दिखलाई।

माघ अधोलिखित पद्य में राजा युधिष्ठिर के धर्मराज कहलाने के कारण को रेखाङ्कित करते हैं–

'सप्ततन्तुमधिगन्तुमिच्छतः कुर्वनुग्रहमनुज्ञया मम।
मूलतामुपगते प्रभो त्वयि प्रापि धर्ममयवृक्षता मया॥'[६५]

हे भगवन्! मैं यज्ञ करना चाहता हूँ, अतः उसके लिए आप अनुज्ञा प्रदान कर मुझे अनुगृहीत करें। मूल में आप ही को प्राप्त करके मैंने धर्ममय वृक्ष का पद प्राप्त किया है।

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार मूल अर्थात् जड़ के न होने से वृक्ष कुछ देर भी नहीं ठहर सकता, उसी प्रकार मूल में आपके अनुग्रह के बिना मेरी धर्मराजरूपी वृक्षता नहीं ठहर सकती।

माघ का अधोलिखित पद्य भी धर्म की दृष्टि से अवलोकनीय है–

'स्वापतेयमधिगम्य धर्मतः
पर्यपालयमवीवृधं च यत्।
तीर्थगामि करवै विधानत-
स्तज्जुषस्व जुहवानि चानले॥'[६६]

मैंने जिस धन को धर्मपूर्वक पाकर उसकी रक्षा की तथा उसे बढ़ाया, उस धन को विधिपूर्वक मैं सत्पात्रों में दान करूँगा, आप उसका सेवन (स्वीकार) करें तथा मैं अग्नि में हवन करूँगा। धन का अर्जन और सत्पात्र को दान भारतीय संस्कृति का वैशिष्ट्य रहा है। इस दृष्टि से माघ ने उक्त पद्य में दान का निरूपण किया है।

'किं विधेयमनया विधीयतां
त्वत्प्रसादजितयार्थसंपदा।
शाधि शासक जगत्त्रयस्य
मामाश्रवोऽस्मि भवतः सहानुज॥'[६७]

अथवा आपके अनुग्रह से प्राप्त इस धनसम्पत्ति का और दूसरा क्या उपयोग होगा? आप ही पहले इसका सदुपयोग करें। हे तीनों लोकों के स्वामी! मुझे मेरे कर्त्तव्य की शिक्षा दीजिए। अपने सभी भाईयों समेत मैं आपकी आज्ञा के अधीन हूँ।

'सादिताखिलनृपं महन्महः
सम्प्रति स्वनयसम्पदैव ते।
किं परस्य स गुणः समश्नुते
पथ्यवृत्तिरपि यद्यरोगिताम्॥'[६८]

इस समय तुम्हारा महान् प्रताप अपनी नीति की महिमा से ही समस्त राजाओं को पराजित करने वाला बना हुआ है (इसमें मेरी कोई महिमा नहीं है); क्योंकि पथ्य सेवन करने वाला यदि नीरोग होता है, तो इसमें दूसरे का कौन गुण है? अर्थात् कोई नहीं, किन्तु वह पथ्य सेवन करने वाले का ही गुण है।

'तत्सुराज्ञि भवति स्थिते पुनः
कः क्रतुं यजतु राजलक्षणम्।
उद्धृतौ भवति कस्य वा भुवः
श्रीवराहमपहाय योग्यता॥'[६९]

इस कारण (अपने पराक्रम से विजयलाभ, निरुपद्रव एवं पुत्रवत् स्नेह-पूर्वक प्रजारक्षणादि करने) से सुयोग्य आप जैसे राजा के रहते हुए फिर असाधारण क्षत्रिय के चिह्न रूप (विश्वजित् नामक) यज्ञ को दूसरा कौन करे? अर्थात् उक्त यज्ञ करने का अधिकार एकमात्र आपको ही है, दूसरे किसी को नहीं, क्योंकि पृथ्वी का उद्धार करने में श्रीवराह भगवान् को छोड़कर किसकी योग्यता थी? अर्थात् किसी की नहीं।

माघ अधोलिखित पद्य में शिवजी की 'यजमान' नाम की आठवीं मूर्ति का निरूपण करते हैं–

'आननेन शशिनः कलां दधद्दर्शनक्षयितकामविग्रहः।
आप्लुतः स विमलैर्जलैरभूदष्टमूर्तिधरमूर्तिरष्टमी॥'[७०]

अर्थात् मुख से चन्द्रमा की शोभा धारण करते हुए ज्ञान से काम तथा क्रोध को नष्ट किये हुए और निर्मल जल से (गङ्गाजल से) स्नान किये हुए वे युधिष्ठिर; मुख अर्थात् शिर पर चन्द्रकला को धारण करती हुई देखने से कामदेव के शरीर को नष्ट (भस्मीभूत) की हुई और (गङ्गाजी के) निर्मल जल के प्रवाह से आर्द्र आठ मूर्तियों को धारण करने वाले शिवजी की 'यजमान' नाम की आठवीं मूर्ति हुए अर्थात् वे यज्ञ में दीक्षित हो गये। अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और यजमान-शिवजी की ये आठ मूर्तियाँ शास्त्रों में वर्णित हैं। कहा भी गया है–**'अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः'** भारतीय राजा प्रजापालनादि के साथ यज्ञादि के अनुष्ठान में भी आस्था रखते थे। महाकवि माघ भी इसे उचित मानते हैं। वर्णनीय विषय की दृष्टि से भी उपयुक्त होने से युधिष्ठिर के यज्ञविधान का वे वर्णन करते हैं। एतद्विषयक कुछ पद्य द्रष्टव्य है–

'सम्भृतोपकरणेन निर्मलां कर्तुमिष्टिमभिवाञ्छता मया।
त्वं समीरण इव प्रतीक्षितः कर्षकेण वलजान्पुपूषता॥'[७१]

दोषरहित यज्ञ को करने की इच्छा करने वाला (अतएव) समस्त सामग्रियों को एकत्रित किया हुआ मैं आपकी उस प्रकार प्रतीक्षा कर रहा हूँ, जिस प्रकार (धान्य के दँवनी करने के बाद) उसको ओसाने (साफ करने) वाला किसान हवा की प्रतीक्षा करता है।

'वीतविघ्नमनघेन भाविता सन्निधेस्तव मखेन मेऽधुना।
को विहन्तुमलमास्थितोदये वासरश्रियमशीतदीधितौ॥'[७२]

इस समय आपके (श्रीकृष्ण) सान्निध्य से मेरा यज्ञ निर्विघ्नतापूर्वक सम्यक् प्रकार से पूर्ण हो जायेगा, क्योंकि सूर्य के उदय होने पर दिन की शोभा (प्रकाश) को नष्ट करने के लिए कौन समर्थ होता है? अर्थात् कोई भी नहीं समर्थ होता।

'इत्थमत्र विततक्रमे क्रतौ वीक्ष्य धर्ममथ धर्मजन्मना।
अर्घदानमनु चोदितो वचः सभ्यमभ्यधित शन्तनोः सुतः॥'[७३]

इस प्रकार इस यज्ञ के क्रमविस्तार होने पर धर्म को देखकर धर्मपुत्र

युधिष्ठिर से अर्घ देने के विषय में (प्रथम अर्घ किसके लिए देना चाहिए? इस प्रकार) पूछे गये शान्तनुपुत्र (भीष्मपितामह) सभ्य (सभा में श्रेष्ठ) वचन बोले।

'स्नातकं गुरुमभीष्टमृत्विजं संयुजा च सह मेदिनीपतिम्।
अर्घभाज इति कीर्तियन्ति षट् ते च ते युगपदागताःसदः।।'[७४]

(सदाचारी) गृहस्थविशेष, (पिता आदि) गुरुजन, इष्टबन्धु ऋत्विज्, जामाता और राजा ये छः अर्घ के प्राप्त करने के योग्य होते हैं ऐसा शास्त्रज्ञ कहते हैं और वे सभी तुम्हारी सभा में एक साथ आये हुए हैं।

माघ अधोलिखित पद्य में तीन प्रकार की सेनाओं का उल्लेख करते हैं–

'रथवाजिपत्तिकरिणीसमाकुलं
तदनीकयोः समगत द्वयं मिथः।
दधिरे पृथक्करिण एव दूरतो
महतां हि सर्वमथवा जनातिगम्।।'[७५]

महाकवि माघ अधोलिखित पद्य में राजा युधिष्ठिर को सभी राजा लोग कर देते हैं, इसका सङ्केत करते हैं–

'करदीकृतभूपालो भ्रातृभिर्जित्वरैर्दिशाम्।
विनाप्यस्मदलम्भूष्णुरिज्यायै तपसः सुतः।।'[७६]

राजा (क्षत्रिय) को केवल तेज (बल या दण्ड प्रयोग) या क्षमा (मृदुता) धारण करने का कोई ऐसा नियम नहीं है, अपितु किस समय कैसा कार्य करना चाहिए? इसको जानने वाले राजा को भी कार्यानुसार तेज (दण्डबल) का या क्षमा (मृदुता) का प्रयोग करना चाहिए, सर्वत्र केवल तेज या क्षमा को ही नहीं करना चाहिए। उक्त तथ्य की पुष्टि के लिए प्रस्तुत पद्य अवलोकनीय है–

'तेजः क्षमा वा नैकान्तं कालज्ञस्य महीपतेः।।'[७७]

इसी प्रकार उत्तररामचरित में भवभूति भी लिखते हैं–,

'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।।'[७८]

इस प्रकार राजा या शासक के स्वभाव में तेजस्विता और क्षमाशीलता का समन्वय होना माघ को अभीष्ट है। राजधर्म का निरूपण और उसमें वैदिक भावना के अनुरूप ब्रह्मशक्ति और क्षात्रशक्ति अर्थात् बुद्धिवादी और शासक का पारस्परिक ताल-मेल शिशुपालवध में सङ्केतित है। युद्धादि में राजा की नीति निपुणता, प्रजादि की स्थिति जानने के लिए अनुचर की नियुक्ति प्रभृति वर्णन के कारण राजधर्म का उत्कृष्ट निरूपण माघ ने किया है।

वैश्यधर्म

महाकवि माघ यद्यपि राजधर्म का सर्वाधिक निरूपण करते हैं। राजा के विधीयमान कृत्यों में ब्राह्मण का मार्गदर्शन अपेक्षित होने से वे ब्राह्मणधर्म का निरूपण बड़े ही स्पष्टता के साथ करते हैं। शिशुपालवध की कथावस्तु में वैश्यधर्म के निरूपण का अवसर कम उपलब्ध होने के कारण विरल रूप में ही उसका उल्लेख माघ ने किया है। धर्मशास्त्रीयग्रन्थों में वैश्यधर्म का निर्धारण इस प्रकार किया गया है।

गीता में खेती, गोसेवा, सत्यतापूर्वक क्रय-विक्रय अर्थात् ईमानदारी के साथ व्यापार वैश्यों के स्वाभाविक कर्म (धर्म) है। यथा–

'कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।'[७८]

याज्ञवल्क्यस्मृति में वैश्यधर्म का उल्लेख इस प्रकार किया गया है–

'कुसीदकृषि वाणिज्यं पशुपाल्यं विशः स्मृतम्।'[८०]

शुक्रनीति में अधोलिखित प्रकार से किया गया है–

'कृषि गोगुप्ति वाणिज्यमधिकं तु विशां स्मृतम्।'[८१]

किन्तु,

'शौचेन धनं सञ्चय'[८२] कहकर यह बात स्पष्ट कर दिया है कि वैश्यों को ईमानदारी के साथ धन का संग्रह करना है, न कि बेईमानी से। उद्योगरत रहना तथा पशुओं का पालन करना एवं खेती करना वैश्यों के उत्तम कर्म हैं।

मनुस्मृति में वैश्यधर्म के कर्त्तव्यों का उल्लेख निम्नलिखित प्रकार से अवलोकनीय है–

'पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च॥'[८३]

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर शिशुपालवध में प्राप्त वैश्यधर्म का निरूपण हम इस प्रकार से करते हैं–महाकवि माघ प्रस्तुत पद्य में बाजार का उल्लेख करते हैं–

'वणिक्पथे पूगकृतानि यत्र
भ्रमागतैरम्बुभिरम्बुराशिः।
लोलैरलोलद्युतिभाञ्जि मुष्णन्
रत्नानि रत्नाकरतामवाप॥'[८४]

यहाँ पर माघ का आशय यह है कि पहले समुद्र मात्र जलनिधि अर्थात् जलवाला था। वह बाद में रत्नाकर बन गया, जब उसने द्वारका के बाजारों में पड़े हुए रत्नों को नालियों के जल के द्वारा चुराया।

माघ के समय में भारतवर्ष में दूसरे देशों के व्यापारी व्यापार करने के लिए जहाजों द्वारा आया करते थे। इस प्रकार भारतवर्ष की वस्तुओं का दूसरे देशों में निर्यात तथा दूसरे देशों की वस्तुओं का अपने देश में आयात होना विदित होता है। दूसरे देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध बनाना व्यापारियों के ईमानदारी का सूचक ही कहा जा सकता है। यथा–

'विक्रीय दिश्यानि धनान्युरूणि
द्वैप्यानसावुत्तमलाभभाजः।
तरीषु तत्रत्यमफल्गु भाण्डं
सांयात्रिकानावपततोऽभ्यनन्दत्॥'[८५]

माघ गाँवों, कस्बों एवं नगरों में भी बाजार के लगने का सङ्केत करते हैं। अधोलिखित पद्य इस बात का प्रमाण है। वर्तमान में भी बाजार लगने का प्रचलन है। प्रायशः लोग बाजार में आकर अपनी दैनिक वस्तुओं का क्रय-विक्रय करते हैं। यहाँ पर विक्रय से तात्पर्य अर्थाभाव से है। यथा–

'यावत्स एव समयःसममेव ताव-
दव्याकुलाः पटमयान्यभितो वितत्य।
पर्यापतत्क्रयिकलोकमगण्यपण्य-
पूर्णापणा विपणिनो विपणीर्विभेजुः॥'[८६]

अर्थात् जब-तक सेना के लोग उतर रहे थे, तब-तक वणिक् लोग निश्चिन्तता के साथ दोनों ओर से तम्बू फैलाकर असंख्य विक्री की वस्तुओं से भरीपूरी दूकानें विभाग के अनुसार सजा ली। तब दुकानों पर क्रय करने वालों की भीड़ आ-आकर जुटने लगी यहाँ पर माघ व्यापारियों के आपसी सामञ्जस्य की ओर भी निर्दिष्ट करते हैं। उद्योगरत रहना व्यापारियों का सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य है, इसको भी रेखाङ्कित करते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि माघ के समय में व्यापारियों में कुछ चतुर व्यापारी छल-प्रपञ्च अर्थात् बेईमानी के साथ भी धनसङ्ग्रह करते थे। यह बात निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट हो जाती है–

'उपजीवति स्म सततं दधतः
परिमुग्धतां वणिगिवोडुपतेः।
घनवीथिवीथिमवतीर्णवतो
निधिरम्भसामुपचयाय कलाः॥'[८७]

समुद्र वनिये के समान, सुन्दरता (पक्षा०–जड़ता अर्थात् व्यवहारज्ञानशून्यता) को धारण करते हुए मेघमार्ग (आकाश) रूपी बाजार में उतरे (आये) हुए नक्षत्रस्वामी (चन्द्रमा, पक्षा०-किसी धनिक व्यापारी) की कलाओं (सोलहों कलाओं, पक्षा०–मूलधन की वृद्धि) को अपनी उन्नति के जल की वृद्धि, (पक्षा०–धन की वृद्धि) के लिए सेवन (पान) करने लगा अर्थात् चन्द्रकलाओं का पानकर समुद्र का जल उस प्रकार बढ़ गया, जिस प्रकार बाजार में आये हुए व्यापार की कला को नहीं जानने वाले किसी व्यापारी के धन को कपटपूर्वक लेकर किसी चतुर बनिये की सम्पत्ति बढ़ जाती है। बेईमानी के साथ सङ्ग्रह किया गया धन धर्मशास्त्र के विपरीत है; लेकिन माघ व्यापारिक कला के कर्त्तव्यों को जानने के लिए विशेष सङ्केत करना चाहते हैं। उनका यह कार्य धर्मशास्त्र के अनुकूल है।

माघ की दृष्टि में कितनी व्यापकता दिखाई देती है, जो कि गाँवों में फेरी लगाने वाले नमक के व्यापारी के क्रिया-कलापों का कितनी सहजता से वर्णन करते हैं? यथा–

'लीलयैव सुतनोस्तुलयित्वा
गौरवाढ्यमपि लावणिकेन।
मानवञ्चनविदा वदनेन
क्रीतमेव हृदयं दयितस्य॥'[८८]

अर्थात् मान को दूर करने में निपुण (पक्षा०–तौल में झाँसा-पट्टी करने में निपुण) लावण्ययुक्त अर्थात् परमसुन्दर रमणियों के मुख ने (पक्षा०–लवण के व्यापारी ने) अत्यन्त गम्भीरता से युक्त (भारी, वजनी) होने पर भी प्रियतम के हृदय को लीलापूर्वक अर्थात् हल्के रूप में (अनायास ही) कम तौलकर खरीद लिया।

तात्पर्य यह है कि वे व्यापारी जो गाँवों में फेरी लगाते हैं और पुराने टाट-पट्टी, रस्सी या गूदड़ के बदले नमक बेचते हैं। वे झाँसा-पट्टी के तौल में बड़े ही निपुण होते हैं और ग्राहक की सवा सेर की वस्तु को सेर भर ही तौलकर खरीद लेते हैं। यहाँ पर भी उद्योगरत होना श्रेष्ठ कर्म का परिचायक है लेकिन उपनिषद् में–

'पितृवत् पालयेद् वैश्यो युक्तः सर्वान् पशूनिह।
विकर्म तद् भवेदन्यत् कर्म यत् स समाचरेत।।'

इस प्रकार उक्त कर्मो को जो कि धर्मशास्त्र के ग्रन्थों में बताये गये हैं, उनके विपरीत कर्म करना वैश्यधर्म के विपरीत है।

माघ की दृष्टि प्रभातवर्णन में बड़ी व्यापक दिखाई देती है। वे राजा से लेकर प्रजा तक, अग्निहोत्र करने वाले ब्राह्मणों से लेकर ग्वालबालों तक के व्यापार में उनकी दृष्टि एक ही रूप में घूम जाती हैं और सच्चे हृदय की रागात्मिकावृत्ति का अखिल सृष्टि से सामञ्जस्यपूर्ण विवेचन दिखाई देता है। कवि ब्राह्ममुहुर्त में जगकर दुरूह राजनैतिक गुत्थियों को सुलझाने में व्यग्र राजाओं के चित्रण में जितना पटु हैं, उतना ही सुबह-सुबह विशालभाण्ड में दूध मथकर निकालने वालों के रूपाङ्कन में भी। यथा–

'द्रुततरकरदक्षाः क्षिप्तवैशाखशैले
दधति दधिन धीरानारवान्वारिणीव।
शशिनमिव सुरौघाः सारमुद्धर्तुमेते
कलशिमुदधिगुर्वी वल्लवा लोडयन्ति।।'[८१]

दूध, दही, मक्खन और घी आदि भी उनके (वैश्यों) के आय का एक साधन हैं। यहाँ बड़ी-बड़ी मथनियों से दही मथना पर्याप्त मात्रा में दूध होने का सङ्केतक है। पर्याप्त मात्रा में दूध होना पशुपालन का सङ्केतक है।

तात्पर्य यह है कि उस समय में वैश्य लोग बड़ी संख्या में पशुपालन का काम करते थे। उनके घर की स्त्रियाँ सुबह उठकर अपने कर्त्तव्य (कार्य) में लग जाती थीं। यद्यपि माघ का पशुपालन का कार्य वैश्यों की ओर नहीं सङ्केत करता; तथापि धर्मशास्त्र के अनुसार पशुपालन का कार्य वैश्यों का ही धर्म है। माघ की व्यापक दृष्टि इस बात की परिचायक है कि वे धर्म के प्रति अति आस्थावान् हैं। माघ के शिशुपालवध से ऐसा प्रतीत होता है कि वे धर्मशास्त्रज्ञ भी हैं। इसलिए उनकी पैनी दृष्टि पशुपालन के सन्दर्भ में वैश्यों की तरफ ही रही होगी।

यहाँ तक कि गायों के दूध दुहने का दृश्य-माघ की पैनी दृष्टि को अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है। लोगों ने गायों के बछड़ों को उनके बायें पैर में बाँध रखा है। गायें अपने बछड़ों को प्रेमपूर्वक चाट रही हैं। इधर वे लोग अपने दोनों घुटनों पर दोहनी रखकर दूध दुह रहे हैं और इस अवसर पर 'घरघों-घरघों की आवाज बढ़ती जाती है–

'प्रीत्या नियुक्तान् लिहती: स्तनन्धयान्
निगृह्य पारीमुभयेन जानुनो:।
वर्धिष्णुधाराध्वनि रोहिणी: पय-
श्चिरं निदध्यो दुहत: स गोदुह:।।'[१०]

इसके अलावा माघ अपने महाकाव्य में विभिन्न पशुओं का भी निरूपण करते हैं। यथा–हाथी[११] घोड़ा[१२] बैल[१३] ऊँट[१४] आदि। पशुओं की विविध चेष्टाओं तथा स्वभाव का जितना गहरा अध्ययन माघ ने किया था, उतना अन्य किसी कवि ने नहीं। माघ का यह विरल वैशिष्ट्य है कि एक ओर जहाँ उनका संसार का व्यावहारिकज्ञान अथाह है, वहीं दूसरी ओर उनका शास्त्रीयज्ञान भी।

कवि की सहानुभूति मात्र मानवों एवं पशुओं तक सीमित नहीं है, अपितु पशुपक्षियों के व्यवहार तथा आचरण के निरीक्षण में भी पटु तथा समर्थ है। पशुपक्षियों के कारण वेहद तङ्ग होने वाली खेतों में धान की रखवालिनों की यह व्याकुलता किस सहृदय को व्याकुल नहीं बना देती है? वे धान के खेतों की रक्षा करने में लगीं हैं। खेतों के ऊपर दोहरा आक्रमण होता है। इस प्रकार की विचित्र स्थिति का वर्णन कवि किस प्रकार से कर रहा है? यथा–

'स ब्रीहिणां यावदपासितुं गता:
शुकान् मृगैस्तावदुपद्रुतश्रियाम्।
कैदारिकाणामभित: समाकुला:
सहासमालोकयतिस्म गोपिका:।।'[१५]

प्रस्तुत पद्य के माध्यम से कृषि कार्य की भी पुष्टि हो जाती है। शिशुपालवध के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय में खेती की दशा काफी उन्नत थी। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर वैश्यों के धर्म (कर्म) व्यापार, खेती एवं गोपालन ही हैं, जो कि गीता, शुक्रनीति और मनुस्मृति आदि में बताये गये हैं। महाकवि माघ भी उसका विवेचन करते हैं।

माघ के उक्त वर्णनों में प्रत्यक्षत: धर्म के सैद्धान्तिक पक्ष का निरूपण नहीं हुआ है; तथापि धर्मशास्त्रीय तत्त्वों के आलोक में वे वैश्यों के कार्यव्यापार का निरूपण करते हैं। वणिक् शब्दादि का प्रयोग भी तद्गत प्रवृत्ति के वर्णन में करने के कारण वर्णव्यवस्था के अनुसार कर्त्तव्य की स्थिति का उन्होंने विवेचन किया है; यह स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है।

शूद्रधर्म

शूद्र का कार्य ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के कार्यों में सहयोग देना है– अर्थात् यह श्रमिकों का वर्ग है। धर्मशास्त्र की दृष्टि से शूद्र के कर्म (कर्त्तव्य) इस प्रकार बताये गये हैं–गीता में सभी वर्णो की सेवा करना ही शूद्रों का स्वाभाविक कर्म माना गया है–

'परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।'[९६]

महाभारत में शूद्रों के कर्मों का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। प्रजापति ब्रह्मा ने ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णो की सेवा करना ही उनका प्रमुख धर्म (कर्म) कहा है। इसी उद्देश्य से वे शूद्रों की सृष्टि की। एतदर्थ शूद्र के लिए इन तीनों वर्णों की सेवा ही शास्त्रसम्मत कर्म है–

'प्रजापतिर्हि वर्णानां दासं शूद्रकल्पयत्।
तस्माच्छूद्रस्य वर्णानां परिचर्या विधीयते।।'[९७]

आचार्य शुक्र के अनुसार दान करना, सेवा करना, चौका वर्तन साफ करना शूद्रों के प्रमुख कार्य हैं–

'दानंसवैव शुद्रादेर्नीच कर्म प्रकीर्तितम्।'[९८]

मनुस्मृति में शूद्रों के कर्म इस प्रकार बताये गये हैं–

'एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्मसमादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया।।'[९९]

महान् धर्मशास्त्रज्ञ याज्ञवल्क्य ने द्विजजातियों का हित साधन करना ही शूद्रों का प्रमुख कर्त्तव्य निर्दिष्ट किया है–

'शूद्रस्य द्विजशुश्रूदतयाऽजीवनवणिग् भवेत्।
शिल्पैर्वा विविधैर्जीवेदद्विजजातिहितमाचरन्।।'[१००]

शिवपुराण में शूद्र के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का क्रमशः सेवा करने का ही विधान है–

'ब्रह्मक्षत्रियवैश्यानां शुश्रूषः शूद्र उच्चते।'[१०१]

इसका यह अर्थ नहीं समझ लेना चाहिए कि शूद्र को विकास के अवसर से वंचित किया गया है। सेवा करना शूद्र का पुनीत कर्त्तव्य अवश्य है, पर उसे भी अन्य वर्णों की ही तरह जीवनयापन करने का अधिकार है। यह तथ्य अधोलिखित प्रकार से रेखाङ्कित किया गया है–

'यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यो शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय।'[१०२] विकास करने का अवसर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की ही तरह शूद्र को भी प्राप्त है, पर अपने-अपने धर्मानुसार-

'ब्राह्मणो ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्योवैश्यंतपसेशूद्रं।'[१०३]

धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों के अनुसार शिशुपालवध में शूद्रधर्म का अलग से कोई सङ्केत नहीं प्राप्त होता है। प्रशस्त टीकाकार मल्लिनाथ ने (शिशु० ३/६३) में ब्राह्मणादि वर्णों का सङ्केत करते हैं। शूद्रधर्म के कर्त्तव्यों का विवेचन शिशुपालवध के अनुसार इस प्रकार प्राप्त होता है।

माघ पञ्चम सर्ग के प्रथम श्लोक में 'सूततनस्य' शब्द का उल्लेख करते हैं। यह शब्द शूद्रवर्ण का सङ्केतक है। शूद्रों के कर्त्तव्य की दृष्टि से माघ का अधोलिखित पद्य अवलोकनीय है-

'यानाज्जनः परिजनैरवतार्यमाणा
राज्ञीर्नरापनयनाकुलसौविदल्लाः।
स्रस्तावगुण्ठनपटाः क्षणलक्ष्यमाण-
वक्त्रश्रियः सभयकौतुकमीक्षते स्म॥'[१०४]

यहाँ पर माघ पालकी या गाड़ी के द्वारा लायी गई रानियों का उल्लेख करते हैं। पालकी का ढोना शूद्रों का कर्म है। इस प्रकार यहाँ पर शूद्रों के कर्त्तव्यों का माघ उल्लेख करते हैं। यहाँ पर क्षत्रियवर्ण के प्रति उसकी सेवा भावना व्यक्त

'छायाविधायिभिरनुज्झितभूतिशोभै-
रुच्छ्रायिभिर्बहलपाटलधातुरागैः।
दूष्यैरिव क्षितिभृतां द्विरदैरुदार-
तारावलीविरचनैर्व्यरुचन्निवासाः॥'[१०५]

प्रस्तुत पद्य में राजाओं के लिए तम्बू लगाने का उल्लेख है। तम्बू आदि लगाने का कार्य शूद्रों (नौकरों) का ही है। इस प्रकार यहाँ पर भी शूद्र अपने धर्म का पालन कर रहा है।

'गत्यूनमार्गगतयोऽपि गतोरुमार्गाः
स्वैरं समाचकृषिरे भुवि वेल्लनाय।
दर्पोदयोल्लसितफेनजलानुसार-
संलक्ष्यपल्ययनवर्ध्रपदास्तुरङ्गाः॥'[१०६]

यहाँ पर भृत्यों के द्वारा घोड़ों को लोटाने के लिए ले जाने और ले आने का सङ्केत प्राप्त है।

'प्रहरकपमनीय स्वं निदिद्रासतोच्चैः
प्रतिपदमुपहूतः केनचिज्जागृहीति।
मुहुरविशदवर्णां निद्रया शून्यशून्यां
दददपि गिरमन्तर्वुध्यते नो मनुष्यः।'[१०७]

माघ प्रस्तुत पद्य में पहरेदार के कार्यों का सङ्केत करते हैं। पहरा देना शूद्रों (नौकरों) के कर्त्तव्य के अन्तर्गत आता है। इसमें सभी वर्णों की सेवा का सङ्केत है।

'कृतसकलजगद्विबोधोऽवधूतान्धकारोदयः
क्षयितकुमुदतारकश्रीर्वियोगं नयन्कामिनः।
बहुतरगुणदर्शनादभ्युपेताल्पदोषः कृती
तव वरद करोतु सुप्रातमह्नामयं नायकः॥'[१०८]

प्रस्तुत पद्य में बन्दी जनों के द्वारा प्रभात के समय श्रीकृष्ण को जगाने के लिए स्तुतिपाठ किया गया है।

'पादैः पुरः कूबरिणां विदारिताः
प्रकाममाक्रान्ततलास्ततो गजैः।
भग्नोन्नतानन्तरपूरितान्तरा
बभुर्भुवः कष्टसमीकृता इव॥'[१०९]

माघ प्रस्तुत पद्य में हल जोतने और पाटा चलाने का उल्लेख करते हैं। हल जोतना आदि कर्म शूद्रों का है इस प्रकार यहाँ पर वैश्यवर्ण के प्रति उसकी सेवा का सङ्केत किया गया है।

'यस्तवेह सवने न भूपतिः
कर्म कर्मकरवत्करिष्यति।
तस्य नेष्यति वपुः कबन्धतां
बन्धुरेष जगतां सुदर्शनः॥'[११०]

प्रस्तुत पद्य में श्रीकृष्ण कह रहे हैं कि इस राजसूययज्ञ में जो राजा भृत्य के समान कार्य नहीं करेगा। उसको मैं शिरविहीन कर दूँगा। तात्पर्य यह है कि महाकवि माघ शूद्रों के धर्मशास्त्रीय कर्त्तव्यों को अवान्तर रूप में प्रस्तुत पद्य के माध्यम से व्यक्त करते हैं।

शिशुपालवध में प्रमुख पात्रादि के रूप में शूद्रवर्ण का उपयोग न किए जाने के कारण उसका कोई विशिष्ट धर्मशास्त्रीय रूप सामने नहीं आ सका है तथापि श्रमिकवर्ग की चर्चा प्राप्त होती है जैसा कि उक्त विवेचन से स्पष्ट है।

आश्रम

'आश्रम' शब्द संस्कृत की श्रम् धातु से बना है जिसका अर्थ है श्रम करना। आश्रम का अर्थ जीवन का वह विभाग है जिसमें मनुष्य प्रयास करता है। साहित्यिक दृष्टि से 'आश्रम' शब्द विश्रामस्थल या पड़ाव को सूचित करता है।

आश्रमव्यवस्था हिन्दू जीवन का वह क्रमबद्ध इतिहास है जिसका उद्देश्य जीवन यात्रा को विभिन्न स्तरों में बाँटकर प्रत्येक स्तर पर मनुष्य को कुछ समय तक रखकर उसे इस भाँति तैयार करना है कि जगत् की वास्तविकताओं और प्रयासमय क्रियात्मक जीवन की अनिवार्यताओं से गुजरता हुआ अन्तिम लक्ष्य ब्रह्म या मोक्ष को प्राप्त कर सके, जो मानवजीवन का परम लक्ष्य है।

शतपथब्राह्मण आश्रमों का क्रम इस प्रकार निर्धारित करता है–

'ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृहीभवेत्।
गृहीभूत्वा वनी भवेतः वनीभृत्वा प्रव्रजेत्॥'[१११]

इस प्रकार चारों आश्रमों के नाम हैं–

१. ब्रह्मचर्याश्रम
२. गृहस्थाश्रम
३. वानप्रस्थाश्रम
४. संन्यासाश्रम

आश्रमों के अधिकारी

१. ब्रह्मचर्याश्रम	–	के तीन वर्ण (शूद्र को छोड़कर)
२. गृहस्थाश्रम	–	के चारों वर्ण
३. वानप्रस्थाश्रम	–	के ब्राह्मण तथा क्षत्रिय
४. संन्यासाश्रम	–	के केवल ब्राह्मण

जिस प्रकार वर्णव्यवस्था का आधार कर्म विभाजन था, उसी प्रकार जीवनव्यवस्था का आधार आश्रम विभाग था। **ब्रह्मचर्यावस्था** में अच्छे गृहस्थ होने की शिक्षा लेना अनिवार्य था। प्रत्येक वर्ण का व्यक्ति जीविका की आवश्यक शिक्षा इसी अवस्था में लेता था। **ब्राह्मण**–वेदादिशास्त्र की, **क्षत्रिय**–

वेदादिशास्त्र के साथ शस्त्रास्त्र और प्रशासन की, **वैश्य**-पशुपालन, कृषि एवं कारीगरी की तथा **शूद्र**–जीविका के अनुरूप गुणों का अभ्यास करता था। साथ ही सबको चरित्र की शिक्षा दी जाती थी। इस आश्रम में कर्म विभाग पर ध्यान दिया जाता था।

गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने पर मनुष्य अपने भिन्न-भिन्न कर्म करता था।

वानप्रस्थाश्रम तपस्या का था, भोग-विलास का नहीं।

संन्यासाश्रम में तपस्या ही थी।

ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम के व्यक्ति भोजनादि के लिए गृहस्थ पर ही आश्रित थे। इसीलिए गृहस्थाश्रम में अतिथिसत्कार महत्त्वपूर्ण था।

आश्रमों के कर्त्तव्य

आचार्य शुक्राचार्य ने अपने शुक्रनीति 'लोकधर्मनिरूपण' (४/२) में सभी आश्रमों के व्यक्तियों के कर्त्तव्यों का एक साथ निर्देश करते हुए लिखा है–

'विद्यार्थं ब्रह्मचारी स्यात् सर्वेषां पालने गृही।
वानप्रस्थः सन्दमने संन्यासी मोक्ष साधने।।'

किन्तु प्रत्येक आश्रम के कर्त्तव्यों का सम्यक् विवेचन इस प्रकार है–

ब्रह्मचर्याश्रम

ब्रह्मचर्याश्रम सामाजिक जीवन का आधार है। यह साधना का आश्रम है। यहाँ पर शिष्य (छात्र) अपने भावी-जीवन का पथ प्रशस्त करते हैं। आश्रम में उनका चारित्रिक विकास किया जाता है। आश्रम का वातावरण पवित्र होता है। यहाँ पर उनको इस प्रकार बना दिया जाता है कि यहाँ से निकलने के पश्चात् वे अन्य आश्रमों में अपने रहन-सहन, आचार-विचार एवं शुचिता (पवित्रता) का ध्यान रख सकें।

ब्रह्मचर्याश्रम में उपनयन संस्कार के बाद ही प्रवेश मिलता है। शिष्य गुरू के आदेशानुसार ही कार्य करता है। वह सदाचार एवं श्रद्धापूर्वक वेदों का अध्ययन करता है। आदेशों का भलीभाँति पालन करना ही उनका पुनीत कर्त्तव्य होता है। विष्णुपुराण, भाग एक, तृतीय अंश, अध्याय नौ के प्रथम एवं द्वितीय श्लोक में इस प्रकार का विवेचन मिलता है–

'बालः कृतोपनयनो वेदाहरण तत्परः।
गुरुगेहे वसेद्भूप ब्रह्मचारी समाहितः॥
शौचाचार व्रतं तत्र कार्यं शूश्रूषर्ण गुरोः।
व्रतानि चरता ग्राह्यो वेदश्च कृतवुद्धिना॥'

नम्रता और शिष्टता विद्यार्थी के प्रथम लक्षणों में से है। उसे गुरु के आज्ञा के विपरीत आचरण नहीं करना चाहिए। गुरु का सम्मान करना उनका प्रथम कर्त्तव्य है। यदि गुरु अपने आसन से उठते हैं तो उसे भी उठ जाना चाहिए और यदि वे बैठे तो उसे भी उनसे नीचे आसन पर बैठ जाना चाहिए। विष्णुपुराण (६।१-२) में इस प्रकार का उल्लेख प्राप्त होता है-

'स्थिते तिष्ठेद् व्रजेद्याते नीचैरासीत् चासति।
शिष्यो गुरोर्नृपश्रेष्ठ प्रतिकूलं न सञ्चरेत॥'

शब्दकल्पद्रुम में इस प्रकार से उल्लेख किया गया है-

'गत्वा गुरुगृहं शिष्यो नमस्कृत्य गुरुं शुचिः।
ब्रूयादध्येतुमायातः शिष्योऽहं तव मारिष!
ततस्तस्यासया नित्य मध्येतव्यं नराधिप!
सदाविचारः शास्त्रस्य गुरुपादानिवादनम्॥
'लाभेन येन केनापि तुष्टिः सद्भिः समागमः।
समाप्तविद्यो गुरुवे दक्षिणां प्रतिपाद्य च॥'

महाकवि माघ आश्रमों के कर्त्तव्यों का उल्लेख अन्य रूप में करते हैं; क्योंकि उनका उद्देश्य मात्र धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण से कृति की रचना का नहीं था। वे धर्मशास्त्रीय तत्त्वों का मिला-जुला रूप देते हैं। विलक्षणप्रतिभा उनके पद्यों में देखने को मिलती है। उनके एक ही पद्य में कई तत्त्वों का समावेश मिलता है। उनके पद्यों से तत्त्वों को अलग करके विवेचन इस प्रकार से किया जा सता है।

माघ नारद के स्वरूप के वर्णन में 'उपनयन-संस्कार' के समग्र तत्त्वों का उल्लेख करते हैं। शिशुपालवध (१/६) में मूँज की मेखला, (१/७) में यज्ञोपवीत एवं दण्ड तथा मृगचर्म का उल्लेख प्राप्त होता है। इस आधार पर उनके महाकाव्य में धर्मशास्त्रीय सभी तत्त्व समाहित हैं। धर्मग्रन्थों में भी ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश उपनयन-संस्कार के बाद ही होता है। (शिशु० १/२८) में सम्पूर्ण वेदों के

पढ़ने का उल्लेख करते हैं। इस प्रकार वेदों के अध्ययन-अध्यापन की बात माघ करते हैं; साथ ही (१/११) में शिष्टलोकव्यवहार की भी बात करते हैं। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार ब्रह्मचर्याश्रम में सदाचारपूर्वक रहने का विधान है, वैसे ही अन्य आश्रमों में भलीभंति जीवननिर्वाह करने के लिए आचार-विचार, रहन-सहन एवं शुचिता पर विशेष ध्यान दिया जाता है। महाकवि माघ अपने महाकाव्य में सामाजिकजीवन में निर्वाह करने योग्य सभी प्रकार के तथ्यों को समाहित कर रखा है।

गृहस्थाश्रम

महाभारत में गार्हस्थ का स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है कि वेदों का अध्ययन, वेदविहितकर्मो का सम्पादन, वैदिकविधि से प्राप्त पत्नी से सन्तान-उत्पादन गृहस्थों के प्रमुख धर्म हैं–

'अधीत्यवेदान् कृत सर्वकृत्यः
संतानमुत्पाद सुखानि भुक्त्वा।
समाहितः प्रचरेद् दुश्चरं यो
गार्हस्थ्यः धर्मं मुनिधर्मजुष्टम्॥'[११२]

वायुपुराण में भी महाभारत की ही भांति गृहस्थों के कर्त्तव्यों का उल्लेख प्राप्त होता है, जिसमें शास्त्रविधि से पत्नी ग्रहण करना, अतिथिसत्कार, यज्ञ, श्राद्धकर्म, संतानोत्पति करना और अग्नि आदि सङ्केत के रखने को अनिवार्य कर्त्तव्य (कर्म) बताया गया है–

'दाण्डग्नयोऽथातिथेय इज्याश्राद्धक्रियाः प्रजाः।
इत्येष वै गृहस्थस्य समासाद्धर्म सङ्ग्रहः॥'[११३]

'शब्दकल्पद्रुम में अधोलिखित प्रकार से उद्धृत किया गया है–

'गृहाश्रमं ततो गच्छेद् गुरोराज्ञामधिव्रजम्।
उद्वहेत् कुलजां कन्यां सुशीलं धर्मचारिणीम्॥
ऊनहं वादिनीं सौम्यां सुचरित्रां प्रियं वदाम्।
गृहिणां प्रथमो धर्मोऽतिथि पूजैव पार्थिवः॥
देवाश्च पितरश्चापि प्रीयन्तेऽतिथिपूजने।
आतिथ्यसदृशं कर्म गृहस्थानां न विद्यते॥
सर्वाश्रमाणामधिको गृहाश्रम उदाहृतः।
यस्मात्तस्मिन् समायान्ति भिक्षार्थमाश्रमास्त्रयः॥

पितृदेवार्थनं कार्यं गृहिणा सुखमिच्छता॥'[११४]

वायुपुराण में गृहस्थाश्रम को सभी आश्रमों की प्रतिष्ठा रखने वाला बताया गया है–

'चातुर्वर्णात्मकः पूर्वं गृहस्थश्चाश्रमः स्मृतः।
त्रयाणामाश्रमाणाञ्च प्रतिष्ठा योनिरेव च॥'[११५]

वस्तुतः गृह में रहने से ही कोई गृहस्थ नहीं हो जाता। उसमें दया और क्षमा आदि भावों का होना भी आवश्यक है; क्योंकि सामाजिक जीवन का वह प्रमुख अङ्ग है–

'विभागशीलः सततं क्षमायुक्तो दयालुकः।
गृहस्थस्तु समाख्यातो न गृहेण गृही भवेत्॥'[११६]

याज्ञवल्क्यस्मृति में–सामाजिक कर्त्तव्यों का प्रयत्नपूर्वक पालन करना गृहस्थजीवन का आदर्श माना गया है। गृहस्थों का उद्देश्य मात्र अपने परिवार को सुखी रखना ही नहीं होना चाहिए। उन्हें सतत् सामाजिक उत्तरदायित्वों के प्रति सचेच्ट रहना है, जैसा कि स्मृति में वर्णित है–

'गृहस्थोऽपि क्रियायुक्तो न गृहेण गृहाश्रमी।
न चैव पुत्रदारेण स्वकर्म परिवर्जितः॥'[११७]

'कृत्सन् भावात्तु गृहिणोपसंहारः' कहकर महर्षि व्यास ने भी गृहस्थों के लिए नियमित रूप से सभी आश्रमों के पालन के विधानों का रेखाङ्कन किया है–

'अध्यापनं ब्रह्मयज्ञं पितृयस्तु तर्पणम्।
होमो दैवी वलिर्भूतो नृर्यसोऽतिथिपूजम्॥'[११८]

सामाजिक दृष्टिकोण से सभी आश्रमों में गृहस्थाश्रम का सर्वप्रमुख स्थान है। गृहस्थाश्रम में अतिथिसत्कार का महत्त्वपूर्ण स्थान है। महाकवि माघ प्रथम सर्ग में अतिथिसत्कार का कितना सुन्दर समन्वय करते हैं। देवर्षि नारद के पृथ्वी पर पैर रखने के पहले भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा उठकर उनका सम्मान करना, बाद में अर्घ्यपाद्य आदि के द्वारा उनकी विधिवत् पूजा करना। यहाँ पर श्रीकृष्ण भगवान् का विनयपूर्ण सेवाभाव ही माघ के **'अतिथि देवो भव'** की भावना को व्यक्त कर रहा है। महाकवि माघ एक गृहस्थ थे, इसलिए गृहस्थाश्रम के

सर्वप्रमुख कर्त्तव्य का कितना चित्रण करते हैं? यह उनके भाव हैं–

'अथ प्रयत्नोन्नमितानमत्फणै-
र्धृते कथञ्चित्फणिनां गणैद्यः।
न्यधायिषातामभिदेवकीसुतं
सुतेन धातुश्चरणौ भुवस्तले।।'[११९]

और भी–

'तमर्घ्यमर्घ्यादिकयादिपूरुषः
सपर्यया साधु स पर्यपूपुजत्।
गृहानुपैतुं प्रणयादभीप्सवो
भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः।।'[१२०]

महाकवि माघ जगत् की शान्ति के लिए तीनों प्रकार की अग्नियों की बात करते हैं–

'जाज्वल्यमानां जगतः शान्तये समुपेयुषी।
व्यद्योतिष्ट सभावेद्यामसौ नरशिखित्रयी।।'[१२१]

अर्थात् जगत् की शान्ति के लिए एकत्रित अत्यधिक प्रज्ज्वलित होती हुई दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि तथा आहवनीय आदि तीनों प्रकार की अग्नियाँ वेदी पर जिस प्रकार शोभित होती हैं और वैसा होने से संसार की शान्ति अवश्यमेव होती है, उसी प्रकार शिशुपालादि से पीड़ित संसार की शान्ति के लिए एकत्रित अपने-अपने तेज से दीप्यमान वे तीनों (श्रीकृष्णादि) सभामण्डप में शोभने लगे और इस सम्मिलन से संसार में अवश्यमेव शान्ति स्थापित होगी यह सूचित हुआ। माघ का दृष्टिकोण गृहस्थ होने के कारण व्यापक दिखाई देता है। मात्र परिवार का सुखी रहना ही उनका लक्ष्य नहीं, अपितु सामाजिक उत्तरदायित्वों के प्रति सजग दिखाई देते हैं।

प्रतिशरणमशीर्णज्योतिरग्न्याहिताना
विधिविहितविरिब्धैः सामिधेनीरधीत्य।
कृतगुरुदुरितौघध्वंसमध्वर्युवर्यै-
र्हुतमयमुपलीढे साधु साम्नाय्यमग्निः।।'[१२२]

अग्निहोत्रियों के प्रत्येक गृह में (अग्निहोत्रशालाओं में) सम्यक् प्रकार से जलती हुई अग्नि, शास्त्रोक्त विधि से एक श्रुत्यादि स्वरों का उच्चारण करने वाले

श्रेष्ठ ऋत्विजों के द्वारा सामधेनी (अग्नि को प्रज्ज्वलित करने वाला प्र वो वाजा' इत्यादि मंत्रविशेष) को पढ़कर बड़े-बड़े पाप-समूहों के विनाशपूर्वक हवन किये गये (अथवा-वहन किये गये बड़े-बड़े पाप-समूहों को नष्ट करने वाले) हविष-विशेष को सम्यक् प्रकार से आस्वादन कर (जला) रही है।

'शुद्धमश्रुतिविरोधि विभ्रतं
शास्त्रमुज्ज्वलमवर्णसङ्करैः।
पुस्तकैः सममसौ गणं मुहु-
र्वाच्यमानमश्रृणोद्द्विजन्मनाम्।।'[१२३]

राजा युधिष्ठिर ने आचरण से पवित्र, वेदाविरुद्ध (पुराणादि) शास्त्र को धारण करते (हाथ में लिए, या-अभ्यास द्वारा कण्ठस्थ किए) हुए, वर्णसङ्करता से हीन अर्थात् सत्कुलोत्पन्न, ब्राह्मण-समूह को (अपशब्द रहित होने से) शुद्ध, (सुनने में मधुर होने से) कान के अनुकूल व्याख्यान किये जाते हुए (अथवा-वेदाविरुद्ध पुराणादि शास्त्रों से अन्वय-गुणादि के क्रम से प्रस्तुत किये जाते हुए) असङ्कीर्ण अक्षरों वाले पुस्तकों के (पुस्तकाक्षर वाक्यों के) सहित गोष्ठी (या स्वस्त्ययन) करते हुए सुना।

तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण लोग गोष्ठी या स्वस्त्ययन पाठ कर रहे थे, जो पवित्र सदाचारी, वेदसम्मत मीमांसादि शास्त्रों से युक्त तथा कुलीन थे और असङ्कीर्ण अक्षरों वाले, श्रवणमधुर व्याख्या किये जाते हुए या वेदानुकूल पुराणादि शास्त्र के अनुसार वंशादिक्रम से प्रस्तूयमान पुस्तकों से युक्त थे; अर्थात् युधिष्ठिर ने दान देने के समय में प्रत्येक ब्राह्मणों के गुणों एवं उनकी गोष्ठियों को सुना।

यहाँ पर माघ का दृष्टिकोण व्यापक दिखाई देता है। 'अवर्णसङ्करै' से उनका तात्पर्य सत्कुलोत्पन्न से है अर्थात् ऐसा परिवार जहाँ पर वैदिक रीतिरिवाज से शादी होती हो और उससे उत्पन्न (पैदा) हुए को सत्कुलोत्पन्न कहा जा सकता है और वही व्यक्ति पवित्र सदाचारी हो सकता है। महाकवि माघ 'विवाह-संस्कार' के सन्दर्भ में सीधे उल्लेख कहीं नहीं करते हैं लेकिन अवान्तर रूप में जो उनके इस सन्दर्भ में प्रसङ्ग मिलते हैं उनका उद्देश्य यही रहा होगा। यथा–

'रथाङ्गभर्त्रेऽभिनवं वराय
यस्याः पितेव प्रतिपादितायाः।
प्रेम्णोपकण्ठं मुहुरङ्कभाजो
रत्नावलीरम्बुधिराबबन्ध।।'[१२४]

माघ प्रस्तुत पद्य में किसी नवविवाहिता का उल्लेख करते हैं–

'अनुदेहमागतवतः प्रतिमां
परिणायकस्य गुरुमुद्वहता।
मुकुरेण वेपथुभृतोऽतिभरात्
कथमप्यपाति न वधूकरतः। '[१२५]

माघ प्रस्तुत पद्य के माध्यम से सन्तानोत्पत्ति और उसके बालसुलभ स्वभाव के विषय में बातें करते हैं-

'उदयशिखरिशृङ्गप्राङ्गणेष्वेष रिङ्गन्
सकमलमुखहासं विक्षितः पद्मिनीभिः।
विततमृदुकराग्रः शब्दयन्त्या वयोभिः
परिपतति दिवोऽङ्के हेलया बालसूर्यः॥'[१२६]

माघ शिशुपालवध (१४/३७) में 'शुद्धश्रुति' तथा (१/२९) में 'कृतः प्रजाक्षेमकृता.......निधिः श्रुतीनां धनसंपदामिव' के द्वारा वेदों के अध्ययन तथा (२/३) एवं (११/४१) में वेदविहित कर्मों का उल्लेख करते हैं।

महाकवि माघ अधोलिखित पद्य में पितरों की सृष्टि का सङ्केत करते हैं-

'विहिताञ्जलिर्जनतया दधती
विकसत्कुसुम्भकुसुमारुणताम्।
चिरमुज्झितापि तनुरौज्झदसौ
न पितृप्रसूः प्रकृतिमात्मभुवः॥'[१२७]

भविष्यपुराण की एक कथा है जिसमें ब्रह्मा ने संध्या को अपनी मूर्ति बनाकर प्रातः और सांयकाल दोनों वेला में आकर लोगों की पूजा-अर्चा प्राप्त करती है। प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ अपनी टीका में भविष्यपुराण के अधोलिखित पद्य को रेखाङ्कित करते हैं-

'पितामहः पितृन सृष्ट्वा मूर्तिं तामुत्ससर्जह।
सा प्रातःसायमागत्य सन्ध्यारूपेण पूज्यते॥'

महाकवि माघ भी गृहस्थाश्रम को सभी आश्रमों का नियन्ता मानते हैं। माघ का यह तथ्य भी अधोलिखित पद्य में अवान्तर रूप में व्यक्त हो रहा है। राजा युधिष्ठिर एक गृहस्थ हैं और उन्हें ब्रह्मचर्यादि आश्रमों का नियन्ता बताते हैं। इससे सिद्ध है कि गृहस्थाश्रम से ही सभी आश्रम का पालन-पोषण आदि होता है। यथा-

'तत्प्रतीतमनसामुपेयुषां
द्रष्टुमाहवनमग्रजन्मनाम्।
आतिथेयमनिवारितातिथिः
कर्तुमाश्रमगुरुः स नाश्रमत्॥'[१२८]

माघ के प्रस्तुत पद्य से यह भी विदित हो रहा है कि वे भी अतिथि-सत्कार को गृहस्थाश्रम का सबसे बड़ा धर्म मानते हैं।

इस प्रकार माघ विवाह अतिथिसत्कारादि का निरूपण करते हैं; जो गृहस्थाश्रम की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

वानप्रस्थाश्रम

'वानप्रस्थाश्रम गच्छेत् कृतकृत्यो गृहाश्रमात्।
तदारण्यक शास्त्राणि यमधीत्य स धर्मवित्॥

सुते भार्या परित्यज्य वनं गच्छेत् सहैव वा।
शान्तः शुद्धान्तरात्मा च सर्वभूतहिते रतः॥

चरितं ब्रह्मचर्यस्य ब्राह्मणस्य विशांवते।
कर्त्तव्यानीह राजेन्द्र कथ्यन्ते मुनि पुङ्गवैः॥

भैक्ष्यचर्यास्वकीकारः प्रशस्त इव मोक्षिणः।
पलास्तमितशायी स्यान्निरग्निरनिकेतनः॥

यथोपलब्ध जीवीस्यान्मुनिर्दान्तो जितेन्द्रियः।
निराशीः स्यात् सर्वसमो निर्योगोनिर्विकारवान्॥'[१२९]

वानप्रस्थी के लिए यह अनिवार्य है कि वह भौतिक सम्पदाओं से अपने को अलग रखे। गृह त्यागकर जङ्गल जाने का अभिप्राय यही है। गृहस्थाश्रम से वह केवल पत्नी को साथ ले जा सकता है।[१३०] यह भी उभयपक्ष के सहमत की स्थिति में। वानप्रस्थ कामोपभोग आदि से मुक्त होने का प्रयास है। उसे वन्यफल या साधारण भोजन करने का विधान है। यह कठोर नियम इसलिए लगाया गया है कि वह भोगैश्वर्य की ओर पुनः उन्मुख होकर आश्रम से पतित हो जाए।

पतित वानप्रस्थी को समाज से बहिष्कृत करने का विधान है, क्योंकि ऐसा न करने पर आश्रम की उच्चता ही समाप्त हो जायेगी, फिर समाज के लिए आदर्श ही क्या रह जाएगा? **'वहिस्तु भयथापि स्मृतेराचाराच्च।'**[१३१] 'न

चाधिकारिकमपि पतनानुमानात्त दमोगात'[१३२] अर्थात् एक बार भ्रष्ट हो जाने पर समाज उस पर विश्वास नहीं करता। तात्पर्य यह है कि आश्रमच्युत वानप्रस्थी के लिए समाज में कोई स्थान नहीं है। वस्तुतः वानप्रस्थी के लिए कोई प्रायश्चित ही नहीं है।

महाकवि माघ का वानप्रस्थाश्रम की दृष्टि से अधोलिखित पद्य अवलोकनीय है-

'कृत्वा पुंवत्पातमुच्चैर्भृगुभ्यो
मूर्ध्नि ग्राव्णां जर्जरा निर्झरौघाः।
कुर्वन्ति द्यामुत्पतन्तः स्मरार्त-
स्वर्लोकस्त्रीगात्रनिर्वाणमत्र॥'[१३३]

अर्थात् इस रैवतक पर्वत पर झरनों के प्रवाह पुरुषों के समान, ऊँचे तट विहीन शिखरों से बड़ी-बड़ी शिलाओं के ऊपर गिरकर जर्जरित अर्थात् छिन्न-भिन्न अङ्गों वाले हो जाते हैं और इस प्रकार फिर ऊपर की ओर उछलकर कामार्त्त आकाशगामी अप्सराओं के अङ्गों की शान्ति करते हैं।

तात्पर्य यह है कि वानप्रस्थ आश्रम में ऊँचे शिखर से शिला पर कूदकर प्राण-त्यागने वाले वृद्ध पुरुष भी आकाश में कामुक अप्सराओं के साथ विहार करते हैं। झरनों के प्रवाह भी उन्हीं के समान नीचे शिलाओं पर गिरकर बूँद-बूँद बनकर ऊपर जाकर अप्सराओं के काम-सन्तप्त अङ्गों को शान्त करते हैं।

प्रशस्तटीकाकार मल्लिनाथ ने अपनी टीका में **'अनुष्ठानासमर्थस्य वानप्रस्थस्य जीर्यतः। भृग्वग्निजलसम्पातैर्मरणं प्रविधीयते॥' इति विहितभृगुपातिनां पुंसां स्वर्लोकगामिनामिहोपमानता** लिखा है अर्थात् कार्य करने में असक्त वृद्ध जर्जर वानप्रस्थी को पर्वत शिखर पर से नीचे, अग्नि में अथवा जल में कूदकर प्राण त्याग करने का विधान है।

संन्यासाश्रम

संन्यासाश्रम के लिए सांसारिकता का सर्वतोभावेन त्याग कर दिया जाता है। संन्यासियों का किसी से कोई सम्बन्ध नहीं रह पाता है। संन्यासी को एकाकी जीवन व्यतीत करना पड़ता है। मनुस्मृति में संन्यासियों के लिए रात में किसी गाँव में प्रवेश न करने और दिन में भिक्षाटन के लिए किसी गाँव में एक से अधिक बार न जाने का विधान किया गया है।[१३४] एक ही गाँव में बार-बार जाने

से लौकिकता की भावना बढ़ सकती है, जो बन्धन का रूप भी ग्रहण कर सकती है। यथा–

'एकरात्रिस्थितिर्ग्रामे पञ्चरात्रिस्थितिः पुरे।
तथा तिष्ठेद्यथाप्रप्रीति द्वेषोवानास्य जायते।।'[१३५]

महाभारत में संन्यासियों के लिए मन और इन्द्रियों को पूर्णतः संयमित बनाकर समग्र भावनाओं से रहित होकर रहने का विधान किया गया है–

'यत्रास्तमितशायी स्यान्निराशीरनिकेतनः।
यथोपलब्धजीवीस्यान्मुनिर्दान्तो जितेन्द्रियः।।'[१३६]

इसलिए संन्यासी को अपनी एकनिष्ठसाधना से समुद्र की तरह मर्यादित और ब्रह्मज्ञान के लिए सूर्य की तरह भास्कर बनकर अपने निर्धारित मार्ग पर निरन्तर आगे बढ़ने का विधान है–

'अबधीव धूतमर्यादा भवन्ति विशदाशयाः।
नियतिं च विमुञ्चन्ति मदहान्तो भास्करा इव।।'[१३७]

पद्मपुराण में संन्यासियों के लिए इस प्रकार कहा गया है–

'चतुर्थमाश्रमं वक्ष्ये मुक्तिसोपानमेवहि।
गुरोः पुरोधमासास्य भिक्षुः संन्यासधर्मवित्।।

विचरेत् सकलां पृथ्वीं लब्धाशी शान्त उत्सुकः।
योगाभ्यासरतो नित्यं धर्मसञ्चयतत्परः।।

धर्माधर्मविहीनो वा भिक्षुकः सिद्धिमाप्नुयात्।।'[१३८]

महाकवि माघ रैवतक पर्वत को संन्यासियों या योगियों के लिए निर्बीज समाधि का स्थल बताते हैं। मैत्री, करुणा, मुदिता ओर उपेक्षा नामक चित्त की शोधक वृत्तियों और पञ्चक्लेशों से अवगत कराना चाहते हैं–

'मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मविदो विधाय
क्लेशप्रहाणमिह लब्धसबीजयोगाः।
ख्यातिं च सत्त्वपुरुषान्यतयाधिगम्य
वाञ्छन्ति तामपि समाधिभृतो निरोद्धुम्।।'[१३९]

यहाँ पर माघ का आशय **"अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः।'** (यो०सू० २/३), **'अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचि-सुखात्मख्यातिरविद्या'** (यो०सू० २/५), **'दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतैवास्मिता'**

(यो०सू० २/६), **'सुखानुशयी रागः'** (यो०सू० २/७), **'दुःखानुशायी द्वैषः'** (यो०सू० २/८) तथा **'यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाध-योऽष्टावङ्गानि।'** (यो०सू० २/२९) से है।

इस प्रकार अनित्य वस्तुओं में नित्यता का बोध अविद्या है, जैसे नश्वर शरीर में आत्मबुद्धि का भान। अहङ्कार का नाम अस्मिता है। अभिमत विषयों में अभिलाषा राग है। अनभिमत विषयों में क्रोध द्वेष है। कार्य तथा अकार्य में आग्रह है। ये पाँच क्लेश के कारण हैं। प्रकृति और आत्मा के विवेक को न जानने से संसार में भटकना पड़ता है। इनके पार्थक्य को जान लेने से उन्हें मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। तात्पर्य यह है कि यह रैवतक पर्वत भोग विलास की वस्तु नहीं है प्रत्युत मोक्ष प्राप्ति की भूमि है।

महाकेवि माघ तेरहवें सर्ग में यमनियमादि की बातें करते हैं यथा–

'वशिनं क्षितेरयनयाविवेश्वरं
नियमो यमश्च नियतं यतिं यथा।
विजयश्रिया वृतमिवार्कमारुता-
वनुसस्त्रतुस्तमथ दस्त्रयोः सुतौ॥'[१४०]

प्रस्तुत पद्य में यम और नियम से माघ का तात्पर्य–**'अहिंसासत्यास्तेय-ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।'** (यो०सू० २/३०) और **'शौचसन्तोषतपः स्वाध्याययेश्वर प्रणिधानानि नियमाः।'** (यो०सू० २/३२) से है। इस प्रकार अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को यम तथा शौच (पवित्रता) सन्तोष तपश्चर्या, वेदादिग्रन्थों का स्वाध्याय और प्रणिधान को नियम कहते हैं। महाकवि माघ यमी या संन्यासियों में उक्त गुणों का होना आवश्यक मानते हैं।

शिशुपालवध के (११/४१,४२) श्लोकों से ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् श्रीकृष्ण के साथ मात्र राजा-रानी या सैनिक ही यात्रा नहीं कर रहे थे, वरन् बहुत से कर्मनिष्ठ एवं तपोनिष्ठ महात्मा संन्यासी भी यात्रा कर रहे थे। इस प्रकार उपर्युक्त गुणों से युक्त संन्यासियों का एक मात्र लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति है। महाकवि माघ अधोलिखित पद्य में मुमुक्षुओं का सङ्केत करते हैं–

'सर्ववेदिनमनादिमास्थितं
देहिनामनुजिघृक्षया वपुः।
क्लेशकर्मफलभोगवर्जितं
पुंविशेषममुमीश्वरं वपुः॥'[१४१]

इस प्रकार प्रस्तुत पद्य में पाँचों क्लेशों तथा पाप-पुण्यों से रहित को ईश्वर या परम पुरुष बतलाया गया है। इसलिए मुमुक्षु संन्यासी या योगी उन्हीं का ध्यान करते हैं–

'ग्राम्यभावमपहातुमिच्छवो
योगमार्गपतितेन चेतसा।
दुर्गमेकमपुनर्निवृत्तये
यं विशन्ति वशिनं मुमुक्षवः॥'[१४२]

अर्थात् मोह को त्यागने के इच्छुक मुमुक्ष लोग इस संसार में पुनः आगमन से छुटकारा पाने के लिए योगमार्ग में चित्त लगाकर इन्हीं अद्वितीय, दुष्प्राप्य एवं स्वतन्त्र भगवान् का ध्यान करते हैं।

समाजधर्म

सम्यक् अर्थ का प्रतिपादक सम् उपसर्ग पूर्वक अज् धातु से 'अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्' अधिकरण कारक अर्थ में घञ् (अ) प्रत्यय हुआ और 'अत उपधायाः' सूत्र से उपधा-उपानृय वर्ण अ का (वृद्धि) आ हो जाने से 'समाज' शब्द बना। इस प्रकार 'समाज' शब्द की व्युत्पत्ति–'सम्यक् अजन्ति-गच्छन्ति जनाः अस्मिन् इति समाजः' अर्थात् जिसमें सभी लोग अच्छी तरह से रहें, वह समाज है। यहाँ पर 'धर्मशब्द कर्त्तव्य का द्योतक है।

महाकवि माघ समाज को उदात्त भारतीय भावनाओं से समन्वित देखना चाहते हैं। भारतीय महापुरुषों का जो आचार रहा है, उसका ललित एवं आवर्जक वर्णन कर वे अपने पाठकों में सद्विचारों का आधान करना चाहते हैं। 'कान्तासम्मित उपदेश' से समग्र काव्य अनुप्राणित है, अतः कोई भी स्थल समाज में पवित्र भावनाओं का सञ्चार करने में समर्थ है। 'स्थालीपुलाकन्याय' से कुछ अंश यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं। सूक्तियों का निरूपण पृथक् अध्याय में किया गया है। अतः पिष्टपेषण से बचने के लिए यहाँ संक्षेप में माघ की सामाजिक चेतना का निरूपण किया जा रहा है।

महाकवि माघ के समय की सामाजिक चेतना 'शिशुपालवध' में स्पष्टतः प्रतिविम्बित है। उस समय वर्ण-व्यवस्था और वैदिक-धर्म का प्राधान्य स्पष्टतः परिलक्षित होता है। मांडलीक और गणतन्त्र राज्य थे। कृषि, गोपालन और वाणिज्य-व्यवस्था की दशा उन्नत थी। सैन्यसञ्चालन, कूटनीति और राजनैतिक मतभेद भी थे। सतीप्रथा का प्रचलन था। यज्ञानुष्ठान की प्रतिष्ठा थी। धार्मिक क्षेत्र

में समन्वय स्थापित हो रहा था। देश की जनता सुखी और सम्पन्न थी। उदात्त परम्पराओं का समादर किया जाता था। इन उदात्त परम्पराओं की रक्षा के लिए माघ ने काव्य का वस्तुविन्यास किया है तथा सूक्तियों के माध्यम से समाज को सत्प्रवृत्तियों की ओर उन्मुख करने का प्रयास किया है। माघ सामाजिक जीवन को प्रगतिशील रखने के लिए आदर्शों का होना आवश्यक मानते हैं। मोक्ष भारतीय जीवन का महत्तम आदर्श है। वह व्यक्ति की साधना की अन्यतम परिणित है। उस अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचने के लिए कतिपय सामाजिक आदर्शों का सहारा लेना पड़ता है।

माघ अतिथिसत्कार को स्पृहणीय मानते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा नारदजी का किया गया अतिथिसत्कार वस्तुतः स्पृहणीय है। **'अतिथि देवो भव'** अर्थात् अतिथि देवता होता है। यह भावना माघ के मानसपटल पर है। इसीलिए वे अतिथिसत्कार करना अपना प्रमुख कर्त्तव्य मानते हैं। यथा–

'तमर्घ्यमर्घ्यादिकयादिपुरुष
सपर्यया साधु स पर्यपूपुजत्।
गृहानुपैतुं प्रणयादभीप्सवो
भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः।।'[१४३]

देवताओं के द्वारा नारदजी का नतमस्तक होकर शिरोधार्य किया गया लोकशिष्टव्यवहार इस प्रकार है–

'निवर्त्यसोऽनुव्रजतः कृतानती-
नतीन्द्रियज्ञाननिधिर्नभः सदः।
समासदत्सादितदैत्यसम्पदः
पदं महेन्द्रालयचारु चक्रिणः।।'[१४४]

भगवान् कृष्ण के द्वारा किया गया स्वागतसत्कार तो प्रशंसनीय है, साथ ही उनकी विनम्रता, शिष्टाचार और वाणीकौशल का आदर्श इस प्रकार है–

'गतस्पृहोऽप्यागमनप्रयोजनं
वदेति वक्तुं व्यवसीयते यया।
तनोति नस्तामुदितात्मगौरवो
गुरुस्तवैवागम एष धृष्टताम्।।'[१४५]

माघ का अधोलिखित पद्य विनय की दृष्टिकोण से अवलोकनीय है। विनय माघ की दृष्टि में आदर्श गुण है–

'समाकुले सदसि तथापि विक्रियां
मनोऽगमन्न मुरभिदः परोदितैः।
घनाम्बुभिर्बहुलितनिम्नगाजलै-
र्जलं न हि व्रजति विकारमम्बुधेः॥'[१४६]

माघ ने परोपकार तथा दान की बार-बार अनुशंसा की है। अधोलिखित पद्य परोपकार तथा दान की दृष्टि से द्रष्टव्य है–

'उपकारपरः स्वभावतः सततं
सर्वजनस्य सज्जनः।
असतामनिशं तथाप्यहो
गुरुहृद्रोगकरी तदुन्नतिः॥'[१४७]

दान की दृष्टि से–

'आगताद्व्यवसितेन चेतसा
सत्त्वसंपदविकारिमानसः।
तत्र नाभवदसौ महाहवे
शात्रवादिव पराङ्मुखोऽर्थिनः॥'[१४८]

'नैक्षतार्थिनमवज्ञया मुहुर्या-
चितस्तु न च कालमाक्षिपत्।
नादिताल्पमथ न व्यकत्थय-
द्दत्तमिष्टमपि नान्वशेत सः॥'[१४९]

'निर्गुणोऽपि विमुखो न भूपते-
र्दानशौण्डमनसः पुरोऽभवत्।
वर्षुकस्य किमपः कृतोन्नते-
रम्बुदस्य परिहार्यमूषरम्॥'[१५०]

'प्रेम तस्य न गुणेषु नाधिकं
न स्म वेद न गुणान्तरं च सः।
दित्सया तदपि पार्थिवोऽर्थिनं
गुण्यगुण्य इति न व्यजीगणत्॥'[१५१]

'दर्शनानुपदमेव कामतः स्वं
वनीयकजनेऽधिगच्छति।
प्रार्थनार्थरहितं तदाऽभवद्दीय-
तामिति वचोऽतिसर्जने॥'[१५२]

'नानवाप्तवसुनाऽर्थकाम्यता
नाचिकित्सितगदेन रोगिणा।
इच्छताशितुमनाशुषा न च
प्रत्यगामि तदुपेयुषा सदः॥'[१५३]

'स्वादयन्रसमनेकसंस्कृत-
प्राकृतैरकृतपात्रसङ्करैः।
भावशुद्धिसहितैर्मुदं जनो
नाटकैरिव बभार भोजनैः॥'[१५४]

माघ गुणग्राहिता की भी बातें करते हैं। गुणग्राहिता की दृष्टि से उनके निम्नलिखित पद्य ध्यातव्य हैं–

'विहितागसो मुहुरलङ्घ्य-
निजवचनदामसंयतः।
तस्य कथित इति तत्प्रथमं
मनसा समाख्यदपराधमच्युतः॥'[१५५]

'स्मृतिवर्त्म तस्य न समस्त-
मपकृतमियाय विद्विषः।
स्मर्त्तुमधिगतगुणस्मरणाः
पटवो न दोषमखिलं खलूत्तमाः॥'[१५६]

संयम और मितभाषिता भी माघ के आदर्श हैं। माघ अधिक बोलने में नहीं, कर्म और पुरुषार्थ में विश्वास रखते हैं। उनके आराध्य कृष्ण के चरित्र की विशेषता मितभाषिता और कर्मनिष्ठता है–

'अवलोक एव नृपतेः स्म
दूरतो रभसाद्रथादवतरीतुमिच्छतः।
अवतीर्णवान्प्रथममात्मना
हरिर्विनयं विशेषयति संभ्रमेण सः॥'[१५७]

'वपुषा पुराणपुरुषः पुरःक्षितौ
परिपुञ्ज्यमानपृथुहारयष्टिना।
भुवनैर्नतोऽपि विहितात्मगौरवः
प्रणनाम नाम तनयं पितृष्वसुः॥'[१५८]

'नैतल्लघ्वपि भूयस्या वचो वाचातिशय्यते।
इन्धनौघधगप्यग्निस्त्विषा नात्येति पूषणम॥'[१५९]

'संक्षिप्तस्याप्यतोऽस्यैव वाक्यस्यार्थगरीयसः।
सुविस्तरतरा वाचो भाष्यभूता भवन्तु मे॥'[१६०]

माघ धैर्य और माहात्म्य का संयोजन निम्नलिखित पद्य में करते हैं–

'आरम्भन्तेऽल्पमेवाज्ञाः कामं व्यग्रा भवन्ति च।
महारम्भा कृतधियस्तिष्ठन्ति च निराकुलाः॥'[१६१]

माघ के अधोलिखित पद्य क्षमा तथा उदारता की दृष्टि से अवलोकनीय है–

'गृहमागताय कृपया च-
कथमपि निसर्गदक्षिणाः।
क्षान्तिमहितमनसो जननी-
स्वसुरात्मजाय चुकुपुर्न पाण्डवाः॥'[१६२]

'परितप्यत एव नोत्तमः
परितप्तोऽप्यपरः सुसंवृत्तिः।
परवृद्धिभिराहितव्यथः
स्फुटनिर्भिन्नदुराशयोऽधमः॥'[१६३]

'प्रतिवाचमदत्त केशवः
शपमानाय न चेदिभूभुजे।
अनुहुङ्कुरुते घनध्वनिं
न हि गोमायुरुतानि केसरी॥'[१६४]

माघ का सहिष्णुता की दृष्टि से प्रस्तुत पद्य द्रष्टव्य है–

'महात्मानोऽनुगृह्णन्ति भजमानान् रिपूनपि।
सपत्नीः प्रापयन्त्यब्धिं सिन्धवो नगनिम्नगाः॥'[१६५]

इसमें माघ महात्माओं के आचार की मर्यादा को रेखाङ्कित करते हैं। वे कहना चाहते हैं कि यदि आप भी महात्माओं की कोटि में अपनी गणना चाहते हैं; तो अनुग्रह करना सीखें।

माघ का उपदेश देना उनका परमकर्त्तव्य ही था। वे कहते हैं–

'कुशलं खलु तुभ्यमेव तद्वचनं कृष्ण यदभ्यधामहम्।
उपदेशपराः परेष्वपि स्वविनाशाभिमुखेषु साधवः।।'[१६६]

माघ अहिंसा की भी बात करते हैं। वे कहते हैं कि प्राणिहिंसा नहीं करनी चाहिए। प्राणियों को हत्यारे से बचाने वाले को महान उत्कर्ष होता है–

'अल्पप्रयोजनकृतोरुतरप्रयासै-
रुद्‌गूर्णलोष्ठलगुडैः परितोऽनुविद्धम्।
उद्यातमुद्‌द्रुतमनोकहजालमध्या-
दन्यः शशं गुणमनल्पमवन्नवाप।।'[१६७]

और भी–

'नोच्चैर्यदा तरुतलेषुममुस्तदानी
माधोरणैरभिहिताः पृथुमूलशाखाः।
बन्धायचिच्छिदुरिभास्तरसात्मनैव
नैवात्मनीनमथवा क्रियते मदान्धैः।।'[१६८]

यहाँ पर माघ प्रमत्तता से दूर रहने की शिक्षा देते हैं, क्योंकि मदान्ध व्यक्ति स्वयं अपना हित नहीं कर सकता है।

महाकवि माघ सत्य की भी बातें करते हैं, अधोलिखित पद्य सत्य की दृष्टि से द्रष्टव्य हैं–

'मुदे मुरारेरमरैः सुमेरो-
रानीय यस्योपचितस्य
भवन्ति नोद्दामगिरां कवीनामु-
च्छ्रायसौन्दर्य गुणा मृषोद्याः।।'[१६९]

'इत्थं गिरः प्रियतमा इव सोऽव्यलीकाः
शुश्राव सूततनयस्य तदाव्यलीकाः।
रन्तुं निरन्तरमियेष ततोऽवसाने
तासां गिरौ च वनराजिपटं वसाने।।'[१७०]

'बह्वपि प्रियमयं तव ब्रुवन्न
व्रजत्यनृतवादितां जनः।
सम्भवन्ति यददोषदूषिते
सार्व सर्वगुणसम्पदस्त्वयि।।'[१७१]

माघ के नीतिपरक श्लोक भी प्राय: उपदेशात्मक हैं–

'तदुन्नतानामनुगमने खलु सम्पदोऽग्रतःस्थाः।'[१७२]

अर्थात् उत्कृष्ट लोगों का साथ करने से सामने पड़ी हुई सम्पत्तियाँ मिल जाती हैं।

उपकारपरायण होना महान बनने के लिए आवश्यक है–

'महतामितरेतरोपकृतिमच्चरितम्।'[१७३]

अर्थात् महापुरुष परस्पर उपकार करते हैं।

'मदमूढबुद्धिषु विवेकिता कुतः।'[१७४]

इसमें मद के त्याग की शिक्षा व्यञ्जना से दी गई है। सज्जनों का स्वभाव ही उपकार करना है–

'उपकारपरः स्वभावतः सततं सर्वजनस्य सज्जनः।'[१७५]

माघ कहीं-कहीं आदर्श जीवन पद्धति प्रस्तुत करते दिखाई पड़ते हैं–

'वशिनं क्षितेरयनयाविवेश्वरं
नियमो यमश्च नियतं यतिं यथा।
विजयश्रिया वृत्तमिवार्कमारुता-
वनुसस्त्रतुस्तमथ दस्त्रयोः सुतौ॥'[१७६]

इसमें यम, नियम के माध्यम से अहिंसा, सत्य, औदार्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, सन्तोष, तपश्चर्या, वेदादिग्रन्थों का स्वाध्याय और प्रणिधान की बातें करते हैं।

माघ चरित्र-चित्रण के माध्यम से सामाजिक शिष्टाचार की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं। उनके कृष्ण इन्द्रप्रस्थ के पुराने परिचित सभी लोगों के कुशलक्षेम को जानने के लिए उत्सुक हैं–

'हरिराकुमारमखिलाभिधानवित्-
स्वजनस्य वार्तमयमन्वयुङ्क्त च।
महतीमपि श्रियमवाप्य विस्मयः
सुजनो न विस्मरति जातु किञ्चन॥'[१७७]

उपर्युक्त आदर्श पर युधिष्ठिर का चरित्र उपदेश देने के लिए हैं–

'नैक्षतार्थिनमवज्ञया मुहुर्याचितस्तु न च कालमाक्षिपत्॥'[१७८]

कहीं-कहीं वर्णन करते हुए कवि ने उपदेशक की भूमिका का निर्वाह किया है–

'ग्राम्यभावमपहातुमिच्छवो
योगमार्गपतितेन चेतसा।
दुर्गमेकमपुनर्निवृत्तये यं
विशन्ति वशिनं मुमुक्षवः।।'[१७९]

इसमें कृष्ण का वर्णन करते हुए व्यञ्जना के माध्यम से निर्देश किया गया है कि मोक्षार्थी बनकर कृष्ण में प्रवेश कर जाओ।

माघ की सूक्तियों में प्रायः सत्प्रवृत्तियों के लिए निर्देश किया गया है–

'अस्तसमयेऽपि सतामुचितं खलूच्चतरमेव पदम्।'[१८०]

अर्थात् विनाश के समय में भी सज्जनों का स्थान उन्नत ही रहता है।

माघ एक सूक्ति के द्वारा संघ बनाने का संदेश उन लोगों तक पहुँचाना चाहते हैं, जो अकेले कुछ करने में असमर्थ हैं। वस्तुतः समाज कल्याण के लिए उनका सङ्गठित रहना आवश्यक होता है।

'सुसंहतैर्दधदपि धाम नीयते
तिरस्कृतिं बहुभिरसंशयं परः।
यतः क्षितेरवयवसम्पदोऽणव-
स्त्विषां निधेरपि वपुरावरीषत।।'[१८१]

माघ के अन्दर अध्यात्मभावना काफी दिखाई देती है–माघ को रैवतक के विशाल सरोवर वाल्मीकि रामायण के समान प्रतीत होते हैं। ऐसे उपमानों के देने में माघ की अवधारणा यह है कि सामाजिक आस्थावान् होने से ऐसे स्थलों से विशेष आनन्द प्राप्त करेगा।

'एतस्मिन्नधिकपयः श्रियं वहन्त्यः
संक्षोभं पवनभुवा जवेन नीता।
वाल्मीकेररहितरामलक्ष्मणानां
साधर्म्यं दधति गिरां सरस्य।।'[१८२]

श्रीकृष्ण की सेना द्वारका से जब बाहर निकलती है उस समय कवि के समक्ष सृष्टि, गङ्गावतरण और वेदों का प्रादुर्भाव उपमान रूप में प्रस्तुत किया गया

'प्रजा इवाङ्गादरविन्दनाभेः
शम्भोर्जटाजूटतटादिवापः।
मुखादिवाथ श्रुतयो विधातुः
पुरान्निरीयुर्मुरजिद्ध्वजिन्यः॥'[१८३]

रैवतक पर्वत को कवि ने उत्प्रेक्षा द्वारा हिरण्यगर्भ पर्वत के समान देखा है–

'सहस्रसंख्यैर्गगनं शिरोभिः
पादैर्भुवं व्याप्य वितिष्ठमानम्।
विलोचनस्थानगतोष्णरश्मि
निशाकरं साधु हिरण्यगर्भम्॥'[१८४]

ब्रह्मा के सहस्र सिर हैं और रैवतक के भी सहस्र शिखर हैं। सूर्य और चन्द्रमा तो दोनों नेत्र के समान हैं। अन्यत्र रैवतक महादेव के समान है। **'सहस्रशीर्षापुरुषः'** इत्यादि श्रुति प्रमाण है।

पुराणविषयकज्ञान के परिचयार्थ माघ के कुछ पद्य हैं।[१८५] इनमें समाज में पुराणों के प्रति आस्था का निरूपण हुआ है।

समन्वय की दृष्टि से माघ की अनेक धर्मों के प्रति आस्था दिखाई देती है। शिशुपालवध (२/२८) में बौद्धों के पञ्चस्कन्धों, (१५/५८) में वोधिसत्त्व और (१९/११२) में जिन अर्थात् जैनधर्म का श्रद्धा के साथ निरूपण करते हैं।

माघ नारीधर्म के वारे में बातें करते हैं। नारी के पातिव्रतधर्म की दृष्टि से माघ का प्रस्तुत पद्य द्रष्टव्य है–

'बलावलेपादधुनापि पूर्ववत्
प्रबाध्यते तेन जगज्जिगीषुणा।
सतीव योषित्प्रकृतिः सुनिश्चला
पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि॥'[१८६]

मनुस्मृति में मनु का कथन है

'पतिं या नाभिचरति मनोवाक्काय संयता।
सा भुर्त्तर्लोकमाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते॥'[१८७]

अर्थात् जो साध्वी स्त्री मन, वचन और शरीर से पति को कभी अप्रसन्न नहीं करती वह जन्मान्तर में भी पति का लोक (सानिध्य) प्राप्त करती है। ऐसा सत्पुरुषों का कथन है। माघ प्रस्तुत पद्य के माध्यम से पुनर्जन्म की भी बात करते

नारी की लज्जाशीलता की दृष्टि से प्रस्तुत पद्य अवलोकनीय है–

'भास्वत्करव्यतिकरोल्लसिताम्बरान्ताः
सापत्रपा इव महाजनदर्शनेन।
संविव्युरम्बरविकाशि चमूसमुत्थं
पृथ्वीरजः करभकण्ठकडारमाशाः॥'[१८८]

माघ अधोलिखित पद्य के माध्यम से पर्दाप्रथा का उल्लेख करते हैं–

'यानाज्जनः परिजनैरवतार्यमाणा
राज्ञीर्नरापनयनाकुलसौविदल्लाः।
स्त्रस्तावगुण्ठनपटाः क्षणलक्ष्यमाण-
वक्त्रश्रियः सभयकौतुकमीक्षते स्म॥'[१८९]

माघ प्रस्तुत पद्य के माध्यम से पुनर्जन्म की बात करते हैं; जैसी की भारतीय समाज की मान्यता रही है–

'रुचिधाम्नि भर्तरि भृशं विमलाः
परलोकमभ्युपगते विवशुः।
ज्वलनं त्विषः कथमिवेतरथा
सुलभोऽन्यजन्मनि स एव पतिः॥'[१९०]

प्रस्तुत पद्य में भी माघ नारी के पातिव्रतधर्म का उल्लेख करते हैं–

'चिररतिपरिखेदप्राप्तनिद्रासुखानां
चरममपि शयित्वा पूर्वमेव प्रबुद्धाः।
अपरिचलितगात्राः कुर्वतेन प्रियाणा-
मशिथिलभुजचक्राश्लेषभेदं तरुण्यः॥'[१९१]

माघ निम्नलिखित पद्य में पितरों की सृष्टि के विषय में सङ्केत करते हैं–

'विहिताञ्जलिर्जनतया दधती
विकसत्कुसुम्भकुसुमारुणताम्।
चिरमुज्झितापि तनुरौज्झदसौ
न पितृप्रसूः प्रकृतिमात्मभुवः॥'[१९२]

माघ के अनेक ऐसे पद्य हैं जिनमें विभिन्न देवी-देवताओं के प्रति उनकी आस्था दिखाई पड़ती है। पस्तुत पद्य शिवोपासक की दृष्टि से द्रष्टव्य है–

'प्रालेयशीतमचलेश्वरमीश्वरोऽपि
सान्द्रेभचर्मवसनावरणोऽधिशेते।
सर्वर्तुनिर्वृतिकरे निवसन्नुपैति
न द्वन्द्वदुःखमिह किञ्चिदकिञ्चनोऽपि॥'[११३]

'नवनगवनलेखाश्याममध्याभिराभिः
स्फटिककटकभूमिर्नाटयत्येष शैलः।
अहिपरिकरभाजो भास्मनैरङ्गरागै-
रधिगतधवलिम्नः शूलपाणेरभिख्याम्॥'[११४]

महाकवि माघ धार्मिक तथा सामाजिक रूढ़ियों के द्वारा लोक विश्वास की भावना विकसित करते हैं। वे धूमकेतु, उल्कापात दिग्दाह, भविष्यवाणियाँ, ज्योतिष, तन्त्रयान आदि का अपने महाकाव्य में वर्णन किये हैं। माघ का समाज और उनकी सामाजिक दृष्टि धर्म और अध्यात्म से अनुप्राणित है।

सन्दर्भ :

१. महा०, १/५२/५३
२. (क) ऋग्वेद, १/२२/१८
(ख) ऋग्वेद, ५/२६/६
(ग) अथर्ववेद ९/९/१७
३. ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ, ७/१७
४. वैशेषिक धर्मसूत्र
५. २० स्मृतियाँ (प्रथम खंड), पृ० २४७
६. याज्ञवल्क्य स्मृति, १/७
७. गौतम धर्मसूत्र, १/१/२
८. आपस्तम्बधर्मसूत्र १/१/२
९. स०त०प०ल०, पृ० १०४
१०. मनु० २/१२
११. मनु० २/१२
१२. मनु० ६/९२/, १४/५९-८७
१३. शिशु० १/२३, ३१-४०, १३/२-११
१४. शिशु० १/४७
१५. शिशु० १/२६

१६. शिशु० ४/४
१७. शिशु० ४/५
१८. शिशु० ३/६५
१९. शिशु० १/२८
२०. शिशु० १/२३
२१. शिशु० १४/६
२२. शिशु० १४/४९
२३. शिशु० १४/६४
२४. ऋग्वेद १०/९९/१२ (यजु० ३१/११)
२५. गीता० ४/१३
२६. शिशु० १/५
२७. शिशु० १/६
२८. शिशु० १/७
२९. शिशु० १/९
३०. शिशु० १/२६
३१. शिशु० १/२८
३२. शिशु० १/२९
३३. शिशु० १/३०
३४. शिशु० ४/३७
३५. शिशु० १२/३
३६. शिशु० १३/२३
३७. गीता १८/४२
३८. मनु० १/८८
३९. याज्ञ० पृ० २५
४०. शुक्रनीति ४/८९
४१. शिशु० १४/३७
४२. शिशु० १४/२०
४३. शिशु० १४/२३
४४. शिशु० १४/३३
४५. शिशु० १४/३५
४६. शिशु० १४/५५

४७. शिशु० १४/५६
४८. गीता १८/४३
४९. याज्ञ० २०, स्मृति० २रा भाग पृ० २५
५०. शुक्र० ४/१७
५१. शिशु० २/३२
५२. शिशु० २/३४
५३. शिशु० २/४२
५४. शिशु० २/४६
५५. शिशु० २/२६
५६. शिशु० २/२८
५७. शिशु० २/८१
५८. शिशु० २/८२
५९. शिशु० ११/६
६०. शिशु ११/६०
६१. शिशु० ११/४८
६२. शिशु० १२/३३
६३. शिशु० १२/३६
६४. शिशु० १३/७
६५. शिशु० १४/६
६६. शिशु० १४/९
६७. शिशु० १४/११
६८. शिशु० १४/१३
६९. शिशु० १४/१४
७०. शिशु० १४/१८
७१. शिशु० १४/७
७२. शिशु० १४/८
७३. शिशु० १४/५३
७४. शिशु १४/५५
७५. शिशु० १३/१७
७६. शिशु० २/९
७७. शिशु० २/८३

७८. उत्तररामचरित २/७
७९. गी० १८/४४
८०. याज्ञ० २०, स्मृति० २रा भाग
८१. शुक्र० ४/१७
८२. महा०शा० ६०/२१
८३. मनु० १/९०
८४. शिशु० ३/३८
८५. शिशु० ३/७६
८६. शिशु० ५/२४
८७. शिशु० ९/३२
८८. शिशु० १०/३८
८९. शिशु० ११/८
९०. शिशु० १२/४०
९१. शिशु० ५/५-१५, ५/३०, ५/३१, १२/५
९२. शिशु० ५/५३-६१, ११/११
९३. शिशु० ५/६२-६४
९४. शिशु० ५/६४, ६६, १२/९
९५. शिशु० १२/४२
९६. गी०, १८/४४
९७. शा०प०, ६०/२८
९८. शुक्र०, ४/१८
९९. मनु०, १/९१
१००. याज्ञ० २रा भाग पृ० २५
१०१. शिशु०प्र०भा०, पृ० १०३
१०२. यजु०, २६/२
१०३. यजु०, ३०/५
१०४. शिशु०, ५/१७
१०५. शिशु०, ५/२१
१०६. शिशु०, ५/५३
१०७. शिशु०, ११/४
१०८. शिशु०, ११/६७

१०९. शिशु०, १२/२१
११०. शिशु०, १४/१६
१११. शतपथ ब्राह्मण
११२. महा०शा०राज०, ६१/१०
११३. वायु०पु०, भाग १, पृ० १३२
११४. महाभारत शब्दकल्पद्रुम से उद्धृत
११५. वायु०पु०भाग १, पृ० १३२
११६. पद्म०भाग २, गृह० पृ० ९१
११७. याज्ञ० २०, स्मृ० भाग २, गृह०प्र०, पृ० २१
११८. शब्दकल्पद्रुम से उद्धृत
११९. शिशु० १/१३
१२०. शिशु० १/१४
१२१. शिशु० २/३
१२२. शिशु० ११/४१
१२३. शिशु० १४/३७
१२४. शिशु० ३/३६
१२५. शिशु० ९/७३
१२६. शिशु० ११/४७
१२७. शिशु० ९/१४
१२८. शिशु० १४/३८
१२९. शब्दकल्पद्रुम से उद्धृत
१३०. याज्ञ० ३/४२
१३१. वेदा०द०,अ०३, पा०४, पृ० २४८
१३२. वही पृ० २४७
१३३. शिशु० ४/२३
१३४. मनु० ६/४३
१३५. मनु० ९/२८
१३६. महा०शा० ६१/८
१३७. नार०परि०ब्रह्म०खण्ड पञ्चमोपदेश:
१३८. पद्म० २५//२६/२७, अध्याय
१३९. शिशु० ४/५५

१४०. शिशु० १३/२३
१४१. शिशु० १४/६२
१४२. शिशु० १४/६४
१४३. शिशु०, १/१४
१४४. शिशु०, १/११
१४५. शिशु०, १/३०
१४६. शिशु०, १७/१८
१४७. शिशु०, १६/२२
१४८. शिशु०, १४/४४
१४९. शिशु०, १४/४५
१५०. शिशु०, १४/४६
१५१. शिशु०, १४/४७
१५२. शिशु०, १४/४८
१५३. शिशु०, १४/४९
१५४. शिशु०, १४/५०
१५५. शिशु०, १५/४२
१५६. शिशु०, १५/४३
१५७. शिशु०, १३/७
१५८. शिशु०, १३/८
१५९. शिशु०, २/२३
१६०. शिशु०, २/२४
१६१. शिशु०, २/७९
१६२. शिशु०, १५/६८
१६३. शिशु०, १६/२३
१६४. शिशु०, १६/२५
१६५. शिशु०, २/१०४
१६६. शिशु०, १६/४१
१६७. शिशु०, ५/२५
१६८. शिशु०, ५/४४
१६९. शिशु०, ४/१०
१७०. शिशु०, ५/१

१७१. शिशु०, १४/४
१७२. शिशु०, ७/२७
१७३. शिशु०, ९/३३
१७४. शिशु०, १३/६
१७५. शिशु०, १६/२२
१७६. शिशु०, १३/२३
१७७. शिशु०, १३/६८
१७८. शिशु०, १४/४५
१७९. शिशु०, १४/६४
१८०. शिशु०, ९/५
१८१. शिशु०, १७/५९
१८२. शिशु०, ४/५९
१८३. शिशु०, ३/६५
१८४. शिशु०, ४/४
१८५. शिशु०, १/१५,४९,५०,२/३८,३९,४०,३/६१,४/२,५/३१,६६,६/१७,
९/१४,८०,११/३
१८६. शिशु०, १/७२
१८७. मनु०, ५/६५
१८८. शिशु०, ५/३
१८९. शिशु०, ५/१७
१९०. शिशु०, ९/१३
१९१. शिशु०, ११/१३
१९२. शिशु०, ९/१४
१९३. शिशु०, ४/६४
१९४. शिशु०, ४/६५

चतुर्थ अध्याय

दर्शन के तत्त्व

'दर्शन' शब्द दृश् (देखना) धातु से करण में ल्युट प्रत्यय लगाकर बना है। इसका अर्थ है–जिसके द्वारा देखा जाय (ज्ञान प्राप्त किया जाय)। जहाँ ज्ञान की प्रामाणिकता और दृढ़ता के सम्बन्ध में विशेष जोर दिया जाना है, वहाँ 'दर्शन' शब्द का प्रयोग उचित है। हमारे जीवन तथा भारतीय दर्शन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। ये दोनों ही एक-दूसरे को एक सामने रखकर एक ही मार्ग पर साथ-साथ चलने वाले दो पथिक हैं। इन दोनों की सत्ता एक ही कारण पर निर्भर है। उस चरमतत्त्व का सैद्धान्तिक रूप हमें दर्शनशास्त्रों में मिलता है, किन्तु व्यावहारिक रूप तो अपने जीवन में ही मिलता है। इस प्रकार ये दोनों ही रूप मिलकर हमें उस परमतत्त्व के पूर्णरूप का अनुभव कराते हैं। दु:ख का आत्यन्तिक नाश या जन्म-मरण से सदा के लिए मुक्त होना सभी का चरम लक्ष्य है। दर्शनशास्त्र के अनुसार प्रत्येक दर्शन में कहे गये तत्त्वों के ज्ञान को प्राप्त करने में जीव उसी परम आनन्द को ढूँढ़ता रहता है। महाकाव्य का रचना फलक बृहद् होने से उसमें जीवन का व्यापक चित्रण होता है। अत: कवि जीवन के विविध क्रिया-कलापों के वर्णन में स्वयं की दार्शनिक धारणा को अनस्यूत करता है। महाकवि माघ ने शिशुपालवध में प्राय: सभी दर्शनों का किसी न किसी रूप में आलोकन किया है। प्रस्तुत अध्याय में ऐसे सन्दर्भों पर विचार किया गया है।

सांख्य-दर्शन

'सांख्य' का सम्बन्ध तत्त्वों की संख्या से है, क्योंकि सांख्यदर्शन में पच्चीस तत्त्वों की गणना की गई है। विद्वानों ने **'संख्यायन्ते गणयन्ते येन तत् सांख्यम्'** तथा **'प्रकृतिपुरुषान्यताख्यातिरूपोऽवबोधोसम्यग्ज्ञायते येन तत् सांख्यम्।'** इस प्रकार 'सांख्य' के संख्या तथा ज्ञान दो अर्थ किये हैं। सम्भवत: इसी कारण भागवत् में इसे तत्त्व-संख्यान या तत्त्वगणन कहा गया है। दूसरा अर्थ है–'सांख्य' का तत्त्वज्ञान। यह तत्त्वज्ञान प्रकृति और पुरुष (शरीर और आत्मा, जड़ और चेतन) के पार्थक्य का ज्ञान है। यही सम्यक् ज्ञान 'सांख्य' का अधिक

मान्य अर्थ है। गणना तथा ज्ञान दोनों अर्थो का प्रतिपादन महाभारत में इस प्रकार किया गया है–

'संख्यां प्रकुर्वते चैव, प्रकृतिं च प्रचक्षते।
तत्त्वानि च चतुर्विंशत्, तेन सांख्यं प्रकीर्तितम्॥'

पच्चीस तत्त्वों की स्वीकृति वाले सांख्यशास्त्र में प्रकृति और पुरुष का विशेष महत्त्व है। माघ ने इन तत्त्वों की ओर सङ्केत किया है।

महाकवि माघ अधोलिखित पद्य में सांख्यमत का प्रतिपादन करते हैं। माघ सांख्यमत वाले पुरुष को क्रियारहित साक्षिमात्र, दुर्ज्ञेय, विकारहीन तथा सत्वादि गुणत्रय से पृथग्भूत मानते हैं। माघ कहते हैं–प्रकृति से भिन्न पुरुष के साक्षात्कार से मोक्ष प्राप्त होता है, वह पुरुष आप (श्रीकृष्ण) ही हैं। यथा–

'उदासितारं निगृहीतमानसै-
गृहीतमध्यात्मदृशा कथञ्चन।
बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः
पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः॥'[१]

अर्थात् योगी लोग अपनी चित्तवृत्तियों को अन्तर्मुखी करके अध्यात्मदृष्टि से कैसे आपका दर्शन करते हैं? वे आपको संसार से उदासीन, महद् आदि विकारों से पृथक्, सत्त्व, रजस् और तमस्–इन तीनों गुणों से लिप्त त्रिगुणात्मिका प्रकृति से भिन्न विज्ञानघन अनादि पुरुष के रूप में जानते हैं। इसलिए माघ प्रस्तुत पद्य में 'पुराविदः', 'उदासितारं', 'बहिर्विकारं', प्रकृतेः पृथग्विदुः–आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं।

महाकवि माघ के इस आशय को प्रशस्तटीकाकार मल्लिनाथ अधोलिखित रूप में व्यक्त करते हैं–**'पुराविदः पूर्वज्ञाः कपिलादयः'** के अनुसार यहाँ पर पुराविद् शब्द कपिल आदि के लिए प्रयुक्त करते हैं। महर्षि कपिल सांख्यशास्त्र के प्रणेता हैं।

केन रुपेण गृहीतमित्यत आह– 'उदासितारमुदासीनम्। प्रकृतौ स्वार्थ-प्रवृत्तायामपि स्वयमप्राकृत्वादस्पृष्टमित्यर्थः' अर्थात् उदासीन इसलिए कहते हैं कि प्रकृति स्वार्थ-व्यापार में प्रवृत्त होकर पुरुष का भोग कराती है, परन्तु वह उदासीन ही रहता है, क्योंकि जैसे ही उसे प्रकृति के भोग का ज्ञान होता है, वह उससे अलग हो जाता है। अतः पुरुष को सर्वथा उदासीन मानते हैं। इस तथ्य की पुष्टि के लिए द्रष्टव्य हैं।[२]

महदादि विकारों से पृथक् बताते हैं। वे इस सन्दर्भ में कहते हैं– **'विकारेभ्यो बहिः बहिर्विकारम्। महदादिभ्यः पृथग्भूतमित्यर्थः। किञ्च प्रकृतेस्त्रैगुण्यात्मनो मूलकारणात्पृथग्भिन्नम्। 'प्रकृतिः पञ्चभूतेषु प्रधाने मूलकारणे' इति यादवः। पुरा भवं पुरातनमनादिम्। पुरुषपदवाच्यं विज्ञानघनं विदुर्विदन्ति। यथाहु–**

'मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः॥'

यहाँ पर प्रकृति की विकार रहित अवस्था मूल प्रकृति है, ऐसा कहते हैं। महत् आदि सात तत्त्व प्रकृति एवं विकृति दोनों होते हैं। केवल विकृतियाँ सोलह होती हैं और जो न किसी से उत्पन्न होता है और न ही किसी को उत्पन्न करता है, वह तत्त्व एक मात्र पुरुष है।

'प्रकृतेः पृथग्विदुः' इसलिए है क्योंकि त्रिगुणात्मिका प्रकृति ही जगत् का कारण है। प्रकृति के व्यक्त और अव्यक्त दोनों भेद तीनों गुणों से युक्त, विवेक रहित विषय अर्थात् पुरुष के उपभोग योग्य, सामान्य जड़ तथा उत्पादनशील होते हैं। पुरुष निर्गुण, विवेकी, विषयी, विशेष, चेतन तथा उत्पादनशील न होने, इन (व्यक्त तथा अव्यक्त दोनों) से भिन्न तथा कारण रहित होने से प्रधान (अव्यक्त) के एवं अनेक होने से व्यक्त के समान भी होता है।[3]

प्रस्तुत श्लोक में महाकवि माघ सांख्यशास्त्रीय तत्त्वों का निर्देश करते हैं। अवतारवाद के अनुसार कृष्ण को परमात्मरूप बताने के बाद यहाँ पर उन्हें सांख्य के पुरुष के रूप में सिद्ध करते हैं।

महाकवि माघ प्रस्तुत पद्य में कहते हैं कि जिस प्रकार पुरुष (आत्मा) साक्षी रहकर फल का भागी होता है और बुद्धि सुखदुःखादि का भोग करती है, उसी प्रकार तुम साक्षी मात्र बने रहकर फल के भागी बनोगे। यथा–

'विजयस्त्वयि सेनायाः साक्षिमात्रेऽपदिश्यताम्।
फलभाजि समीक्ष्योक्ते बुद्धेर्भोग इवात्मनि॥'[4]

अर्थात् फलभोक्ता (विजय का लाभ पाने वाले) साक्षिमात्र आपमें सेना की विजय उस प्रकार प्रयुक्त हो, जिस प्रकार साङ्ख्योक्त फलभोक्ता साक्षिमात्र आत्मा में बुद्धि का भोग प्रयुक्त होता है।

तात्पर्य यह है कि सांख्य के मत में संसार युक्तिरूप बुद्धि सम्बन्धी भोग फलभोक्ता उदासीन पुरुष का कहा जाता है अर्थात् यद्यपि बुद्धि ही बद्ध होती

है, मुक्त होती है, सब कुछ अनुभव करती है, तथा पुरुष न तो बद्ध होता है, न मुक्त होता है, न तो कुछ अनुभव ही करता है, तथापि पुरुष बद्ध हुआ, मुक्त हुआ—आत्मा को सुख हो रहा है, आत्मा को दुःख हो रहा है—इस प्रकार बुद्धि का भोग दृष्टमात्र आत्मा का कहा जाता है। उसी प्रकार आप केवल युद्ध में उपस्थित होकर केवल देखते रहें, सेना ही शत्रुओं को मारेगी, विजय करेगी और स्वामी होने के कारण आपको उसका फल प्राप्त होगा—श्रीकृष्ण भगवान् ने 'शत्रुओं को मारा' उन पर विजय प्राप्त की; ऐसा कहा जाएगा। आपको केवल यहाँ उपस्थित रहने की आवश्यकता है, कार्य तो सब सेना ही करेगी। इस आशय की पुष्टि टीकाकार मल्लिनाथ इस प्रकार करते हैं **'आत्मनि बुद्धेर्महत्तत्वस्य मूलप्रकृतेः प्रथमविकारस्य कर्त्र्याः भोगः सुखदुःखानुभव इवापदिश्यतां व्यवह्रियताम्। भृत्यजयपराजययोः स्वामिगम्यत्वादिति भावः। सांख्य अप्याहुः— 'कर्तेव भवत्युदासीनः' इति 'सर्वं प्रत्युपभोगं यस्मात् पुरुषस्य साधयति बुद्धिः' इति च।'**[५] यहाँ पर सांख्योक्त कथन के द्वारा राजनीति विषयक तत्त्वों की पुष्टि करना माघ के साङ्ख्यज्ञ होने का प्रमाण, कहा जा सकता है। इस सन्दर्भ में 'सांख्यकारिका की अधोलिखित कारिका द्रष्टव्य है—

'तस्मात्तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिवलिङ्गम्।
गुण कर्तृत्वेऽपि तथा कर्त्तेव भवत्युदासीनः॥'[६]

महाकवि माघ अधोलिखित पद्य में प्रकृति पुरुष के ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है, अन्यथा नहीं। इस तथ्य की ओर ध्यानाकृष्ट करते हैं। यथा—

'ख्यातिं च सत्त्वपुरुषान्यतयाधिगम्य।
वाञ्छन्ति तामपि समाधिभृतो निरोद्धुम्॥'[७]

अर्थात् प्रकृति तथा पुरुष के परस्पर पार्थक्य की ख्याति को प्राप्तकर अर्थात् प्रकृति और पुरुष भिन्न हैं; यह जानकर उसे भी रोकने के लिए अर्थात् उसे छोड़कर स्वयं प्रकाशभाव से स्थित होने के लिए इच्छा करते हैं। वे कहते हैं—प्रकृति तथा पुरुष के विवेक का ग्रहण नहीं करने से संसार में आवागमन तथा विवेक को ग्रहण करने से मुक्ति होती है तथा प्रकृति के उपरत होने (हट जाने) पर मुक्ति होती है, ऐसा सांख्य का सिद्धान्त है।

माघ के इस आशय की पुष्टि मूर्धन्य टीकाकार मल्लिनाथ इस प्रकार करते हैं—**'सत्त्वपुरुषयोः प्रकृतिपुरुषयोरन्यतयाऽन्यत्वेन मिथो भिन्नत्वेन ख्यातिं ज्ञानं चाधिगम्य। प्रकृतिपुरुषौ भिन्नाविति ज्ञात्वेर्थः। 'प्रकृतिपुरुषयोर्विवेका-**

ग्रहणात् संसारः। विवेकग्रहणान्मुक्ति' रिति सांख्याः। अथ तां ख्यातिमपि निरोद्धुं निवर्तयितुं वाञ्छन्ति वृत्तिरूपाम्। तां निवर्त्य स्वयंप्रकाशतयैव स्थातुमिच्छन्तीत्यर्थः। 'प्रकृतावुपरतायां पुरुषस्वरूपेणावस्थानं मुक्तिः' इति।[८] इस प्रकार सांख्य का सिद्धान्त है, ऐसा बताते हैं।

प्रकृति-पुरुष की भिन्नता में प्रकृति के अस्तित्व के लिए प्रमाण, गुणों का स्वरूप और सम्बन्ध, पुरुष या आत्मा के अस्तित्व के लिए प्रमाण, पुरुष बहुत्व या अनेकात्मवाद, प्रकृत और पुरुष के सम्बन्ध, विकासवाद के लिए सांख्यकारिका की कारिकाएँ द्रष्टव्य हैं।[९]

महाकवि माघ निम्नलिखित पद्य में रजोगुण का विकासवाद की क्रिया में क्या स्वरूप होता है? इस तथ्य को रेखाङ्कित करते हैं–

'विहिताञ्जलिर्जनतया दधती
विकसत्कुसुम्भकुसुमारुणताम्।
चिरमुज्झितापि तनुरौज्झदसौ
न पितृप्रसूः प्रकृतिमात्मभुवः॥[१०]

प्रस्तुत पद्य में माघ यद्यपि सन्ध्या के प्रादुर्भाव का वर्णन करते हुए कहते हैं–जनसमूह से नमस्कृत, राजसी प्रकृति होने से विकसित होते हुए कुसुम्भपुष्प के समान लालिमा को धारण करती हुई, पितरों की जननी इस सन्ध्यारूपिणी ब्रह्मा की मूर्ति ने चिरकाल से छोड़ी गई होने पर भी अपनी प्रकृति को नहीं छोड़ा।

टीकाकार मल्लिनाथ–**'विकसत्कुसुम्भकुसुमवदरुणतां दधती राजसत्त्वादिति भावः। तदुक्तं 'सर्गाय रक्तं रजसोपवृंहितम् इति। प्रसूत इति प्रसूर्माता। 'जनयित्री प्रसूर्माता' इत्यमरः।'** उदाहरणार्थ–सत्त्वगुण का स्वरूप प्रकाश है और तमोगुण का स्वरूप है अन्धकार परन्तु इनमें प्रकाश और अन्धकार उत्पन्न करने की शक्ति रजोगुण ही प्रदान करता है। जिस प्रकार एक बहता हुआ जल का प्रवाह स्वयं तो बहता ही है, अपने साथ-साथ तृण आदि को भी प्रवाहित करता है, उसी प्रकार रजोगुण स्वयं क्रियाशील होकर अन्य गुणों को भी क्रियाशील बनाता है। इसका रङ्ग रक्त या लाल है। फिर कहते हैं–**'पितॄणां प्रसूः पितृप्रसूः असावियं संध्यारूपिणी आत्मभुवो ब्रह्मणस्तनुर्मूर्तिश्चिरमुज्झिता त्यक्तापि प्रकृतिं स्वभावम्। जगद्वन्द्यत्वादि निजधर्ममित्यर्थः।** भविष्यपुराण की कथा का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि ब्रह्मा ने संध्या को अपनी ही मूर्ति

बनाकर और उसी से पितरों की सृष्टि करके उसे छोड़ दिया था। वही प्रातःकाल और सायंकाल दोनों वेलाओं में आकर लोगों की पूजा-अर्चना प्राप्त करती है–

'पितामहः पितृन् सृष्ट्वा मूर्तिं तामुत्सर्ज ह।
सा प्रातःसायमागत्य सन्ध्यारूपेण पूज्यते॥'

यहाँ पर तनुत्यागरूप कारण के सद्भाव में भी प्रकृतित्यागरूप कार्य के अनुदय दिखाते हैं। ईश्वरकृष्ण का कथन है कि महत् से लेकर भूतों तक की सृष्टि प्रकृति ही करती है। यह सृष्टि वस्तुतः प्रत्येक 'पुरुष' को मुक्त करने के लिए ही होती है।[११] **'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः'** इस सिद्धान्त के अनुसार किसी भी अवस्था में रजस् का सर्वथा नाश नहीं हो सकता है। मुक्ति में भी पुरुष का प्रकृति से सम्बन्ध विवेक ख्याति या 'विवेक बुद्धि', को प्राप्त करना ही तो सांख्यमत में मुक्ति है। (शिशु० ४/५५) इसका प्रमाण है। 'ख्याति' या 'बुद्धि' तो सत्त्वगुण का स्वरूप है। इसलिए यदि मुक्तावस्था में 'ख्याति' या 'बुद्धि' है तो 'सत्त्वगुण, अर्थात् 'पुरुष का प्रकृति से सम्बन्ध भी मुक्तावस्था में रह ही जाता है। अतएव यह कहा जा सकता है कि मुक्तावस्था में भी किसी रूप में पुरुष को प्रकृति से वस्तुतः छुटकारा नहीं मिलता है।

माघ निम्नलिखित श्लोक में सांख्यमत का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि पुरुष (आत्मा) स्वयं पुण्यपापादि कर्म नहीं करता, अपितु बुद्धि ही करती है और उसकी प्राप्ति होने से पुरुष (आत्मा) ही उन कार्यों को करने वाला माना जाता है । यथा–

'तस्य सांख्यपुरुषेण तुल्यतां
बिभ्रतः स्वयमकुर्वतः क्रियाः।
कर्तृता तदुपलम्भतोऽभवद्
वृत्तिभाजि करणे यथार्त्विजः॥'[१२]

अर्थात् स्वयं (हवनादि) कार्य नहीं करते (पक्षा०–पुण्यपापादि से उदासीन रहते) हुए, अतएव सांख्यशास्त्रसम्मत पुरुष (आत्मा) की समानता धारण करते हुए उस युधिष्ठिर का, अन्तःकरण में (हवनादि) कार्यों को ऋत्विजों के (पक्षा०-पुण्यपापादि कर्मों की बुद्धि के) करते रहने पर उसकी प्राप्ति होने से कर्त्तृत्व हुआ।

सांख्यशास्त्र के मतानुसार–जिस प्रकार पुरुष (आत्मा) पुण्य, पाप कुछ भी नहीं करता; वह सदा निष्क्रिय और निर्विकार रहता है, बुद्धि ही सब कार्य करती

है, किन्तु कर्त्तापन की प्राप्ति पुरुष अर्थात् आत्मा को होती है, उसी प्रकार राजा युधिष्ठिर यद्यपि होम आदि यज्ञीय विधानों में सम्मिलित नहीं हुए थे, फिर भी पुरोहितों द्वारा सब अनुष्ठानों के कर्त्ता वही थे अर्थात् पुरोहित यज्ञ कर रहे थे और यह युधिष्ठिर सब देख रहे थे।

महाकवि माघ अधोलिखित पद्य में पुरुषबहुत्व या अनेकात्मवाद का सङ्केत करते हैं। सांख्यदर्शन पुरुष या आत्मा की संख्या एक नहीं अनेक स्वीकार करता है। यही पुरुषबहुत्व या अनेकात्मवाद का सिद्धान्त कहलाता है। साथ ही सृष्टि एवं प्रलय प्रक्रिया के कारणतत्त्वों की ओर भी इङ्गित करते हैं–

'पद्मभूरिति सृजञ्जगद्रजः
सत्त्वमच्युत इति स्थितिं नयन्।
संहरन्हर इति श्रितस्तमस्त्रै-
धमेष भजति त्रिभिर्गुणैः॥'[१३]

अर्थात् ये श्रीकृष्ण भगवान् रजोगुण का आश्रयकर संसार की रचना करते हुए (ब्रह्मा), सत्त्वगुण का आश्रयकर संसार को स्थिति पर रखते हुए अर्थात् पालन करते हुए (विष्णु) और तमोगुण का आश्रयकर संसार का संहार करते हुए (शिव) कहलाते हैं; अतः (सत्त्व, रजः और तमोरूप) तीनों गुणों से ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप) त्रैविध्य को धारण करते हैं अर्थात् सत्त्वादि गुणत्रय से भिन्न ब्रह्मा आदि की तीनों मूर्तियाँ इन्हीं की हैं। कार्यों के इस आविर्भाव के समय अनेकता और तिरोभाव के समय एकत्व का बोध होता है।

महाकवि माघ निम्नलिखित पद्य में स्थूल शरीर के नष्ट हो जाने पर सूक्ष्म शरीर (आत्मा या पुरुष) दूसरे शरीर में प्रवेश करता है। इस तथ्य का प्रतिपादन करते हैं–

'नीते पलाशिन्युचिते शरीरवद्-
गजान्तकेनान्तमदान्तकर्मणा।
सञ्चेरुरात्मान इवापरं क्षणात्क्ष-
मारुहं देहमिव प्लवङ्गमाः॥'[१४]

यहाँ पर माघ आत्मा (पुरुष) के नष्ट न होने की ओर सङ्केत करते हैं। वे कहते हैं कि जिस प्रकार यमराज द्वारा एक शरीर के (स्थूल) नष्ट हो जाने पर जीवात्मा दूसरे शरीर में प्रवेश हो जाता है; उसी प्रकार बन्दरों ने भी पूर्व परिचित वृक्ष के हाथी द्वारा तोड़ दिये जाने पर दूसरे वृक्ष को अपना अड्डा बना लिए हैं।

इसी प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि–

'वासांसि जीर्णानि यथाविहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्य-
न्यानि संयाति नवानि देही॥'[१५]

आत्मा की नित्यता को इस प्रकार बताते हैं–

'न जायते म्रियते वा कदाचिन्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥'[१६]

माघ अधोलिखित पद्य में मदयुक्त बुद्धिवालों का विचार कहाँ रहता है? इस बात की ओर सङ्केत करते हैं–

'व्रजतोरपि प्रणयपूर्वमेकताम-
सुरारिपाण्डुसुतसैन्ययोस्तदा।
रुरुषे विषाणिभिरनुक्षणम्मिथो
मदमूढ़बुद्धिषु विवेकिता कुतः॥'[१७]

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण इस तथ्य को इस प्रकार रेखाङ्कित करते हैं–

'क्रोधाद्भवति सम्मोहः
सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद वुद्धिनाशो
बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥'[१८]

माघ प्रस्तुत पद्य में कहते हैं कि जिस प्रकार अनेक बार (नाना योनिरूप) देहों में प्रादुर्भाव (उत्पत्ति) को धारण किया हुआ पुराना पुरुष अर्थात् जीव विभक्त हुए इन्द्रियरूप नौ द्वारों वाले शरीर में पाँच इन्दियों के साथ प्रवेश करता है। यथा–

'असकृद्ग्रहीतबहुदेहसम्भव-
स्तदसौ विभक्तनवगोपुरान्तरम्।
पुरुषः पुरं प्रविशति स्म पञ्चभिः
सममिन्द्रियैरिव नरेन्द्रसूनुभिः॥'[१९]

यहाँ पर जीवपक्ष में नव इन्द्रियों से 'गुदा, शिश्न, मुख, दो नेत्र, दो कान, दो नाक ये नौ विवक्षित हैं, तथा पाँच इन्द्रियों से नेत्र, कान, जिह्वा, हाथ और पैर ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं।

माघ प्रस्तुत पद्य में पुरुष के अकर्त्ता होने और महत् तत्त्व के कर्त्ता होने के बावजूद भी पुरुष को प्रधानत्व होने का सङ्केत करते हैं–

'अतिभूयसापि सुकृतेन दुरुपचर एष शक्यते।
भक्तिशुचिभिरुपचारपरैरपि न ग्रहीतुमभियोगिभिर्नृभिः॥'[२०]

ये (श्रीकृष्ण भगवान्) निरन्तर जन्म-मरण आदि दुःख को प्राप्त पुरुष की प्रवृत्ति के द्वारा उपकार तथा सत्त्वादि गुणत्रय से प्रधानत्व को प्राप्त 'प्रधान' संज्ञक बुद्धितत्त्व का कुछ भी उपकार (साहय्य) नहीं करते हैं, क्योंकि पुरुष केवल देखने वाला ही होता है, क्रिया करने वाला नहीं। पुरुष को कुछ भी अनुभव नहीं होता, केवल बुद्धि को ही सर्वानुभव होता है।

प्रथम सर्ग में देवर्षि नारद ने भगवान् श्रीकृष्ण की जो स्तुति की है, वह सांख्यमत के अनुकूल है।

माघ अठ्ठारहवें सर्ग में भी सांख्यमत का प्रतिपादन करते हैं।

इस प्रकार महाकवि माघ शिशुपालवध में सांख्यशास्त्रीय तत्त्वों की चर्चा करते हैं। माघ श्रीकृष्ण भगवान् को सांख्यशास्त्रीय पुरुष बताते हैं, वह कुछ नहीं करते, बुद्धि ही सब कुछ करती है; लेकिन बुद्धि के द्वारा ही उसे सब का अनुभव होता हैं गुणत्रय की भी चर्चा करते हैं। माघ प्रकृति एवं पुरुष को बहुत महत्त्व देते हुए सांख्यशास्त्रीय तत्त्वों की ओर सङ्केत करते हैं।

योग-दर्शन

योग और सांख्य समानान्तर दर्शन कहे जाते हैं। योगदर्शन का तत्त्ववाद वही है, जो सांख्यदर्शन का है। अन्तर केवल इतना है कि सांख्यदर्शन के कुछ सम्प्रदाय निरीश्वरवादी हैं, पर योगदर्शन पूर्णरूप से ईश्वरवादी है। योगदर्शन के मूल प्रवर्तक महर्षि पतञ्जलि हैं जिन्होंने योगसूत्र का प्रणयन किया है।

'पतञ्जलियोगदर्शन' समाधि, साधन, विभूति और कैवल्य इन चार अध्यायों में विभक्त है। समाधिपाद में–योग का उद्देश्य, उसका लक्षण एवं साधन वर्णित है। साधनपाद में–योग के अङ्ग, उनका परिणाम तथा अणिमा, महिमा आदि सिद्धियों के प्रकार का विवेचन है। कैवल्यपाद में–मोक्ष का निरूपण है।

आत्मा और जगत् के विषय में सांख्यदर्शन ने जिन सिद्धान्तों को निरूपित किया है, योगदर्शन भी उसी का समर्थक है। सांख्यकार के मतानुसार योगकार भी पच्चीस तत्त्वों को स्वीकार करते हैं। योगदर्शन में–'पुरुषविशेष' छब्बीसवें तत्त्व के रूप में है।

'योग' शब्द 'युज्' धातु से निष्पन्न होता है। **'युज्यतेऽसौयोगः'** अर्थात् जो युक्त करे, या मिलाए उसे योग कहते हैं। योगदर्शन के भाष्यकार महर्षि व्यास ने **'योगस्समाधिः'** कहकर योग को समाधि बतलाया है। जिसका भाव यह है कि जीवात्मा इस उपलब्ध समाधि के द्वारा सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार करे।

चित्त की एकाग्रता के द्वारा अन्तःकरण और शरीर से पृथक् हुए आत्मा का साक्षात्कार करना योग का लक्षण है। **'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'** कहकर महर्षि पतञ्जलि ने चित्तवृत्तियों के निरोध को योग कहा है।

जिस दशा में मन के सहित ही पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ संयम द्वारा स्थिर हो जाती हैं और बुद्धि भी निश्चेष्ट हो जाती है, उस दशा का नाम योग है और यही परमगति का आश्रय होने से 'परमगति' है।

योगदर्शन के अनुसार संसार दुःखमय है। जीवात्मा की मोक्षोपलब्धि के लिए एकमात्र उपाय योग है। ईश्वर नित्य, अद्वितीय और त्रिकालातीत हैं। देवगण और ऋषिगण को योग से ही ज्ञान प्राप्त हुआ है। योगदर्शन का दूसरा नाम कर्मयोग भी है, क्योंकि साधक को मुक्ति के लिए समुचित कर्म का पथप्रदर्शक भी योग ही है।

महाकवि माघपूर्ण रूप से ईश्वरवादी है। वे अपने महाकाव्य में योग के लक्षण, साधन एवं उद्देश्य का अवान्तर रूप में निरूपण करते हैं। योग के अङ्ग तथा मोक्ष के विषय में भी सङ्केत करते हैं। आत्मा और जगत् के विषय में सांख्य और योगदर्शन एक ही सिद्धान्त में निरूपित करते हैं। शिशुपालवध में समाधि एवं चित्तवृत्तियों के निरोध के पर्याय शब्दों का भी प्रयोग करते हैं। योग को ही परमगति का साधन बताते हैं।

महाकवि माघ योग के लक्षण या स्वरूप के सन्दर्भ में कोई ऐसा उल्लेख नहीं करते हैं; जिसे योग का लक्षण या स्वरूप समझा जाये, लेकिन वे कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं, जिनका उद्देश्य अवान्तररूप में योग के लक्षण या स्वरूप से परिचित कराना ही है। माघ एक विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न कवि हैं,

क्योंकि वे किसी भी तथ्य को सीधे न कहकर श्लेष या व्यञ्जना के माध्यम से कहते हैं।

महाकवि माघ प्रथम सर्ग के तेइसवें पद्य में **'प्रतिसंहृतात्मनः' तथा 'त्वमेव साक्षात्करणीयइत्यतः किमस्ति कार्यं गुरु योगिनापि'** (१/३१), **'निगृहीतमान-सैर्गृहीत।'** (१/३३), **'वाञ्छन्ति तामपि समाधिभृतो निरोद्धुम'** (४/५५) **'मुमुक्षवः योगमार्ग पतितेन यं वशिनं विशन्ति'** (१४/६४) आदि शब्दों का प्रयोग **'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'** के पर्याय के रूप में करते हैं। यहाँ पर माघ जिन उक्त शब्दों एवं वाक्यों का प्रयोग करते हैं, उनका भाव योगलक्षण या स्वरूप को सङ्केत करना है।

प्रशस्त टीकाकार मल्लिनाथ महाकवि माघ के आशय को अपनी व्याख्या में इस प्रकार संङ्केत करते हैं–**'प्रतिसंहृतात्मनः आत्मन्युपसंहृता आत्मानों येन'** यहाँ पर योगियों के द्वारा चित्तवृत्तियों का निरोध करके ही यह देखा गया कि आप 'प्रतिसंहृतात्मनः हैं। **'निगृहीतमानसैरन्तर्निबद्धचितैर्योगिभिः। आत्मनि अधि इत्यध्यात्मम्। अध्यात्मं या दृक् ज्ञानं तया अध्यात्मदृशा प्रत्यग्दृष्टया कथञ्चन गृहीतं साक्षात्कृतम्। केन रूपेण गृहीतमित्यत आह उदासितारमुदासीनम्। विकारेभ्यो बहिः बहिर्विकारम्। महदादिभ्यःपृथग्भूतमित्यर्थः पञ्चभूतेषु मूल कारणे' इति।**[२१] यहाँ पर मल्लिनाथ का आशय मन के सहित सम्पूर्ण इन्द्रियों को संयम के द्वारा स्थिर करके एवं बुद्धि को भी स्थिरकर आपका (श्रीकृष्ण) साक्षात्कार करना है। माघ जिस दशा का उल्लेख करते हैं; वह योग है।

'त्वमेव साक्षात्करणीय इत्यतः किमस्ति कार्यं गुरु योगिनामपि।'[२२] मल्लिनाथ की टीका–**योगिनामपि त्वमेव साक्षात्करणीयः प्रत्यक्षी कर्त्तव्य इत्यतोऽस्मादन्यद् गुरु कार्यं किमस्ति** यहाँ पर माघ योग के साधन ध्यान, जप, तप आदि के द्वारा आपके (आत्मा या ईश्वर) के साक्षात्कार की बात करते हैं।

'वाञ्छन्ति तामपि समाधिभृतो निरोद्धुम।'[२३] यहाँ पर माघ प्रस्तुत अंश के माध्यम से–**'योगस्समाधिः'** की बात करना चाहते हैं। इस तथ्य को मल्लिनाथ इस प्रकार स्पष्ट करते हैं–**इहादौ समाधिं योगं विभ्रतीति समाधिभृतो योगिनः'** इस प्रकार महाकवि माघ योग को समाधि बताते हैं। यहाँ पर समाधि के माध्यम से ब्रह्मानन्द एवं सच्चिदानन्द का साक्षात्कार हो सकता है, ऐसा सङ्केत करते हैं।

'मुमुक्षवः योगमार्गपतितेन चेतसा यं वशिनं विशन्ति।' मल्लिनाथ ने अपनी टीका में–**'योगः संनहनोपायध्यानसङ्गतियुक्तिषु'** इस प्रकार लिखते हैं। यहाँ पर माघ योगमार्ग में लगाये हुए चित्त से प्रवेश की बात करते हैं। वे योग के मार्ग–**'योगश्चित्तवृत्तिः'** को अवान्तर रूप में कहते हैं।

महाकवि माघ अधोलिखित पद्य में अष्टाङ्गयोग, चित्तवृत्तियों, पञ्चक्लेशों एवं कैवल्य प्राप्ति के विषय में सङ्केत करते हैं–

'मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मविदो विधाय
क्लेशप्रहाणमिह लब्धसबीजयोगाः।
ख्यातिं च सत्त्वपुरुषान्यतयाधिगम्य
वाञ्छन्ति तामपि समाधिभृतो निरोद्धुम्॥'[२४]

अर्थात् इस (रैवतक पर्वत) पर समाधि–धारण करने वाले (योगी लोग) मैत्री आदि चित्तवृत्तियों को जानकर अर्थात् चित्तशोधक वृत्तियों से अन्तःकरण के मल को दूरकर तथा (अविद्या आदि पाँच) क्लेशों को नष्टकर सबीजयोग को प्राप्त किए हुए; प्रकृति तथा पुरुष के परस्पर पार्थक्य की ख्याति को प्राप्तकर अर्थात् प्रकृति तथा पुरुष भिन्न है यह जानकर, उसे भी रोकने के लिए अर्थात् उसे छोड़कर स्वयं प्रकाशभाव से स्थित होने के लिए इच्छा करते हैं।

यहाँ पर 'समाधि' शब्द अष्टविध योगाङ्ग का उपलक्षण है, अतः 'अष्टाङ्ग योग को धारण करने वाले योगी लोग' यह अर्थ समझना चाहिए।

महाकवि माघ प्रस्तुत पद्य में 'समाधि' शब्द के द्वारा योग के आठों अङ्गों की ओर सङ्केत करते हैं। ये अङ्ग इस प्रकार हैं–

'यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि॥'[२५]
अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार–धारणा, ध्यान और समाधि ये आठ योग के अङ्ग हैं।

माघ 'चित्तपरिकर्म' के द्वारा चित्त की वृत्तियों की ओर सङ्केत करते हैं। चित्तवृत्तियों को इस प्रकार समझना चाहिए–

'मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्त-प्रसादनम्॥'[२६]

अर्थात् मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा ये चार चित्त की वृत्तियाँ हैं। इनमें से पुण्यात्माओं में मैत्री, दुःखियों में करुणा, सुखियों में मुदिता और पापियों में उपेक्षा वृत्ति होती है। इनकी भावना से चित्तप्रसादन होता है।

यहाँ पर माघ 'क्लेश' कहकर पञ्चक्लेशों को रेखाङ्कित करते हैं–

'अविद्याऽस्मितारागद्वेषाऽभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः।'[२७] अर्थात् अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये पाँच क्लेश हैं। इनमें से अनित्य संसारादि में नित्य का अभिमान करना अनित्य, अपवित्र दुःख तथा अनात्मा में नित्य पवित्र

सुख तथा आत्मा का ज्ञान करना अविद्या, परमपुरुष तथा बुद्धि को धर्मत: तथा स्वरूपत: एक रूप मानना अस्मिता, अभीष्ट पदार्थों की लालसा करना राग, अनभिमत नहीं चाहे हुए पदार्थादि में क्रोध करना द्वेष और करने योग्य या छोड़ने योग्य कार्यों में जानते हुए भी आग्रह करना अभिनिवेश हैं। (यो०सू०, २/५-९) ये पाँच मनुष्यों को क्लिष्ट करते हैं। अतएव इन्हें क्लेश कहते हैं।

'प्रकृति तथा आत्मा' के विवेक ग्रहण नहीं करने से संसार में आवागमन तथा विवेक का ग्रहण करने से मुक्ति होती है या विवेकशून्य हो जाने पर मोक्ष प्राप्त होता है। इससे यह पर्वत केवल विहारस्थान ही नहीं; अपितु मुक्तिसाधनस्थान भी है, यह सूचित होता है।

इस प्रकार महाकवि माघ के अनुसार योगदर्शन का उद्देश्य–मनुष्य के पञ्चविध क्लेशों एवं नानाविधकर्मफलों से योग द्वारा विमुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करना है। योगदर्शन में वर्णित क्षिप्त, मूड, विक्षिप्त, निरुद्ध और एकाग्र, जिनका नाम 'चित्तभूति' भी है, इन पञ्चविध प्रवृत्तियों में अन्तिम दो चित्तभूतियों को ही उन्होंने योग की अधिकारिणी माना है, जिसके लिए उन्होंने 'संप्रज्ञान' और 'असंप्रज्ञान' इन दो योगों का विधान किया है। असंप्रज्ञानयोग पञ्चविधक्लेशों का नाश कर देता है और संप्रज्ञान के द्वारा साधक मोक्ष का अधिकारी हो जाता है। चञ्चल चित्त की प्रवृत्तियों को रोकने के लिए अभ्यास, वैराग्य, ईश्वर, प्राणिधान, प्राणायाम, समाधि और विषयविरक्ति आदि साधनों का विधान किया है। योगसिद्धि के लिए योग के उक्त आठों अङ्गों का साधन परमावश्यक माना जाता है । महाकवि माघ निम्नलिखित पद्य में यम और नियम आदि अष्टाङ्गों के प्रकारों की ओर सङ्केत करते हैं–

'वशिनं क्षितेरयनयाविवेश्वरं
नियमो यमश्च नियतं यतिं यथा।
विजयश्रिया वृत्तमिवार्कमारुता-
वनुसस्रतुस्तमथ दस्रयोः सुतौ।'[२८]

अर्थात् (श्रीकृष्ण भगवान् के दोनों पाश्र्वों में भीमसेन तथा अर्जुन के बैठने) के बाद, जितेन्द्रिय (अव्यसनी) राजा के पीछे शुभकारक विधि तथा नीति (दैव तथा पुरुषार्थ) के समान और आचारवान् यति (जितेन्द्रिय) के पीछे यम तथा नियम के समान, विजयलक्ष्मी से परिवेष्ठित (निकट भविष्य में ही शिशुपाल नामक शत्रु को मारकर विजयश्री पाने वाले) श्रीकृष्ण भगवान् के पीछे सूर्य तथा वायु के समान, अश्विनी कुमारों के पुत्र (नकुल और सहदेव) चलने लगे।

यहाँ पर माघ का यम से मतलब **'अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।'**[२९] की ओर सङ्केत करना है, अर्थात् अहिंसा, सत्य, आस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह से है। 'नियम' से तात्पर्य **'शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।'**[३०] अर्थात् शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर, प्राणिधान आदि से है।

'स्थिरसुखमासनम्'[३१] अर्थात् जिसके स्थिर होने पर सुख का अनुभव हो वह आसन है।

'तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।'[३२] अर्थात् आसन के सिद्ध हो जाने पर श्वासप्रश्वास में (साँस के लेने, छोड़ने में) गति का रुक जाना या रोक देना अथवा अन्तर डाल देना प्राणायाम कहलाता है।

'स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।'[३३] अर्थात् अपने विषयों के साथ ज्ञानवृत्ति का जनक सम्बन्ध न रहने पर चित्त के स्वरूप के अनुरूप हो जाना इन्द्रियों का प्रत्याहार नामक योगाङ्ग है।

'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।'[३४] अर्थात् देश में–देह के किसी अङ्गविशेष अथवा किसी लक्ष्यविशेष में बाँध देना–टिका देना चित्त का धारणा नामक योग का अङ्ग है।

'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।'[३५] अर्थात् उसमें–जिस देश में चित्त को बाँधा या धारण किया है, उस लक्ष्य प्रदेश में प्रत्ययज्ञानवृत्ति की एकतानताएकाग्रता बना रहना ध्यान नामक योगाङ्ग है।

'तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।'[३६] अर्थात् वह ध्यान ही जब उसमें केवल अर्थ भासता है, और स्वरूप से शून्य सा रहता है, तब वह समाधि नामक योगाङ्ग कहलाता है।

महाकवि माघ अधोलिखित पद्य में ईश्वर के स्वरूप को रेखाङ्कित करते हैं–

'सर्ववेदिनमनादिमास्थितं
देहिनामनुजिघृक्षया वपुः।
क्लेशकर्मफलभोगवर्जितं
पुंविशेषममुमीश्वरं विदुः॥'[३७]

प्रस्तुत पद्य में (भीष्मपितामह श्रीकृष्ण भगवान् के स्वरूप तथा मनुष्य देह से सम्बन्ध होने का कारण कहते हैं–तत्त्वदर्शी लोग) इन (श्रीकृष्ण भगवान्) को

सर्वज्ञ, आदिरहित होने पर भी, भूभार को दूर करने से प्राणियों को अनुगृहीत करने की इच्छा से (मनुष्य के) शरीर को प्राप्त किए हुए अर्थात् प्रारब्ध कर्म के वश से मानव-शरीर को नहीं प्राप्त किए हुए, (अतएव अविद्या, अहङ्कार, राग, द्वेष और अभिनिवेश रूप पाँच) क्लेशों एवं (पुण्य, पाप रूप दो) कर्मों के फल को नहीं भोगने वाले ईश्वर- संज्ञक पुरुषविशेष परमपुरुष, या पुराणपुरुष, आदिपुरुष आदि कहते हैं। योगसूत्र में ईश्वर का लक्षण इस प्रकार है–

'क्लेशर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।'[३८]

महाकवि माघ निम्नलिखित श्लोक में श्रीकृष्ण भगवान् के ईश्वरत्व की पुष्टि करते हैं तथा योगियों के ध्यान का विषय बताते हैं–

'ध्येयमेकमपथे स्थितं धियः
स्तुत्यमुत्तममतीतवाक्पथम्।
आमनन्ति यमुपास्यमादराद्
दूरवर्तिनमतीव योगिनः॥'[३९]

अर्थात् (नारद आदि) योगी लोग एक (अद्वितीय) एवं सर्वश्रेष्ठ जिन (श्रीकृष्ण भगवान्) को ध्यान के योग्य (होने पर भी) बुद्धिमार्ग के परे स्थित अज्ञान के अविषय मानते हैं, स्तुति के योग्य (होने पर भी) वाक्पथ को अतिक्रान्त अर्थात् वचन एवं मन के अविषय (वचन से अवर्णनीय एवं मन से अचिन्तनीय) मानते हैं और आदर से उपासना (पूजा) के योग्य (होने पर भी) अत्यन्त दूरवर्ती अर्थात् अचिन्तनीय रूप वाले मानते हैं; (अतएव) हे पृथापुत्र युधिष्ठिर! तुम इन (श्रीकृष्ण भगवान्) को केवल मानव मात्र मत जानो।

महाकवि माघ प्रस्तुत पद्य में योग के सिद्धान्त की बात करते हैं–

'भक्तिमन्त इह भक्तवत्सले
सन्ततस्मरणरीणकल्मषाः।
यान्ति निर्वहणमस्य संसृति-
क्लेशनाटकविडम्बनाविधेः॥'[४०]

भक्तवत्सल इन (श्रीकृष्ण भगवान्) में भक्ति करने वाले लोग (इनका) सर्वदा स्मरण करने से क्षीण पाप वाले होकर इन (श्रीकृष्ण भगवान्) के संसार के क्लेशरूपी नाटक की विडम्बना की समाप्ति को प्राप्त करते हैं अर्थात् सांसारिक क्लेश से छूटकर मुक्त हो जाते हैं। भाव यह कि योगसाधना के द्वारा व्यक्ति को जीवन-मरण के दुःख से छुटकारा मिल जाता है।

माघ निम्नलिखित श्लोक में भी योग की बात करते हैं–

'ग्राम्यभावमपहातुमिच्छवो
योगमार्गपतितेन चेतसा।
दुर्गमेकमपुनर्निवृत्तये यं
विशन्ति वशिनं मुमुक्षवः॥'[४१]

[इन (श्रीकृष्ण भगवान्) में भक्ति करने वाले] मूढ़ता का त्याग करने के इच्छुक मुमुक्ष लोग (संसार में जन्म लेकर) फिर नहीं लौटने के लिए अर्थात् मुक्ति के लिए दुःख से प्राप्य एवं एकमात्र वशी अर्थात् (सर्वथा स्वतन्त्र) जिन (श्रीकृष्ण भगवान्) को योगमार्ग में लगाये हुए चित्त से प्रवेश करते हैं अर्थात् मुमक्ष लोग मुक्ति के लिए इन्हीं का ध्यान करते हैं। मल्लिनाथ ने **'योगः संनहनोपायध्यानसङ्गतियुक्तिषु'** ऐसा अपनी टीका में रेखाङ्कित करते हैं।

उक्त सन्दर्भो से स्पष्ट है कि माघ योगशास्त्र के सम्यक् ज्ञाता थे। अपने योगदर्शन के ज्ञान को माघ ने कथावस्तु से समरस कर प्रस्तुत किया है।

न्याय-दर्शन

न्याय का व्यापक अर्थ–विभिन्न प्रमाणों की सहायता से वस्तुतत्त्व की परीक्षा करना है। वात्स्यायन ने **'प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः'**[४२] इस प्रकार से परिभाषा की है। प्रमाणों के स्वरूप के वर्णन तथा इस परीक्षाप्रणाली के व्यावहारिक रूप प्रकट करने से यह दर्शन न्यायदर्शन के नाम से पुकारा जाता है।

यद्यपि 'न्याय' शब्द का एक विशिष्ट पारिभाषिक अर्थ है–प्रतिज्ञा, हेतु, दृष्टान्त, उपनय तथा निगमन नामक पदार्थानुमान के पञ्च अवयव। इस सङ्कीर्ण अर्थ में न्याय शब्द का प्रयोग प्रमाणों के अन्यतम पदार्थ अनुमान के लिए किया जाता है। इसका दूसरा नाम है–'आन्वीक्षिकी' अर्थात् अन्वीक्षा के द्वारा प्रवर्तित होने वाली विद्या। अन्वीक्षा का अर्थ[४३]–प्रत्यक्ष तथा आगम पर आश्रित अनुमान अथवा प्रत्यक्ष तथा शब्द प्रमाण की सहायता से अवगत विषय की अनु (पश्चात्) ईक्षा (ईक्षण अर्थात् पर्यालोचन या ज्ञान)। अन्वीक्षा के अनुसार प्रवृत्त होने से इस विद्या का नाम आन्वीक्षिकी है। अनुमान प्रक्रिया में हेतु का महत्त्व सबसे अधिक होता है। अतः इसका नाम हेतुविद्या या हेतुशास्त्र भी है। विद्वानों की परिषद् में किसी गूढ़ विषय के विचार या शास्त्रार्थ को 'वाद' नाम से पुकारते हैं। ऐसे शास्त्रार्थों में नितान्त उपादेय होने के कारण यह वादविद्या या तर्कविद्या

के नाम से भी प्रसिद्ध है। प्रमाण की मीमांसा करने से न्यायदर्शन प्रमाणशास्त्र भी कहलाता है। इन विभिन्न अभिधानों पर दृष्टिपात करने से न्याय का मूल प्रयोजन प्रमाणों के द्वारा प्रमेय वस्तु का विचार करना और प्रमाणों की विस्तृत विवेचना करना न्यायदर्शन का प्रधान उद्देश्य है।

न्यायदर्शन के प्रवर्तक महर्षि गौतम हैं। इस ग्रन्थ या शास्त्र का मुख्य लक्ष्य 'प्रमाण' और 'प्रमेय' के विशेष ज्ञान से निःश्रेयस् को प्राप्त करना, किन्तु जब 'संशय', 'प्रयोजन', 'दृष्टान्त', 'सिद्धान्त', 'अवयव', 'तर्क', 'निर्णय', 'वाद', 'जल्प', 'वितण्डा', 'हेत्वाभास', 'छल', 'जाति', तथा 'निग्रह' स्थानों का विशेष रूप से 'ज्ञान' नहीं होगा, तब-तक 'प्रमेय', का ज्ञान अच्छी तरह से नहीं हो सकता। अतएव गौतम ने कहा है कि उपर्युक्त सोलह पदार्थों के तत्त्वज्ञान से मुक्ति मिलती है।

न्यायदर्शन यथार्थवादी सिद्धान्तों पर आधारित हैं। परमाणु, आत्मा और ईश्वर, जगत् के इन तीन आधारभूत कारणों का सम्यक् प्रतिपादन ही न्याय का विषय है। ज्ञान को न्यायदर्शन में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। जीवमुक्ति का सबसे बड़ा अवरोधक मिथ्याज्ञान है, जिसका विनाश तत्त्वज्ञान से होता है। **'ऋते सत्यान्न मुक्तिः'** ज्ञान के बिना जीवन्मुक्ति सर्वथा असम्भव है, न्यायदर्शन का यही मूलवाक्य है।

महाकवि माघ न्याय के सिद्धान्तों को अपने महाकाव्य में यत्र-तत्र वर्णन करते हैं। प्रमाण और प्रमेय का सङ्केत उनके ग्रन्थ में मिलता है। उनके काव्य में यथार्थवादी सिद्धान्त, परमाणु, आत्मा, ईश्वर, जगत् इनके आधारभूत कारणों का विवेचन मिलता है। मोक्ष के सम्बन्ध में भी वे यथास्थान निरूपण करते हैं। मोक्षप्राप्ति को ही जीवन का परमलक्ष्य बताते हैं।

महाकवि माघ प्रत्यक्षज्ञान की प्रक्रिया में निर्विकल्पकज्ञान एवं सविकल्पकज्ञान का अधोलिखित पद्य में सङ्केत करते हैं–

'चयस्त्विषामित्यवधारितं पुरा
ततः शरीरीति विभाविताकृतम्।
ाविभुाभक्ताावयव पुमानिति
क्रमादमुं नारद इत्यवोधि सः।'[६४]

अर्थात् वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जानने वाले सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्ण ने आकाश मार्ग से उतरते हुए उस ज्योतिपुञ्ज को सर्वप्रथम तो प्रकाश

समूह के रूप में ही जाना, परन्तु उसके कुछ और निकट आने पर तथा आकृति के स्पष्ट होने पर कृष्ण ने यह समझा कि यह कोई शरीरधारी (व्यक्ति) है। तदनन्तर और अधिक निकट आ जाने पर, जब उसके अवयव भी स्पस्ट रूप से दिखाई पड़ने लगे तब कृष्ण ने समझा कि कोई पुरुष है। अन्त में और स्पष्ट दिखाई पड़ने पर उन्होंने यह निश्चयपूर्वक समझ लिया कि ये देवर्षि नारद स्वर्ग से आ रहे हैं।

तात्पर्य यह है कि देवर्षि नारद जब आकाश में बहुत दूर थे, तब केवल प्रकाशपुञ्ज के रूप में दिखाई पड़ते थे। जैसे-जैसे वे पृथ्वी के निकट आते गये वैसे-वैसे क्रमशः आकृति एवं अवयव संस्थान के स्पष्ट होने पर शरीरधारी तथा पुरुष के रूप में ज्ञात हुए और अधिक निकट आने पर कृष्णजी ने उन्हें पहचान लिया कि ये नारद ही हैं। ज्ञान की यह प्रक्रिया बड़ी ही स्वाभाविक है; क्योंकि ज्ञान की प्रक्रिया में सर्वप्रथम सामान्य अथवा निर्विकल्पक ज्ञान होता है, तदनन्तर विशेष अथवा सविकल्पकज्ञान होता है।

इस प्रकार भगवान् कृष्ण को पहले दूरस्थ वस्तु का निरवयवज्ञान होता है। जैसे-जैसे वह वस्तु निकट आती गई, वैसे-वैसे उसका सावयवयज्ञान होता गया। इसी क्रमिक ज्ञान के आधार पर उन्हें निश्चयात्मक ज्ञान हो गया कि ये देवर्षि नारद ही हैं।

माघ निम्नलिखित पद्य में योगज प्रत्यक्ष की ओर सङ्केत करते हैं-

'निवर्त्य सोऽनुव्रजतः कृतानती-
नतीन्द्रियज्ञाननिधिर्नभःसदः।
समासदत्सादितदैत्यसंपदः
पदं महेन्द्रालयचारु चक्रिणः॥'[४५]

प्रत्यक्ष एवं परोक्ष अर्थात् चक्षुरादि इन्द्रियों से जिसका ज्ञान सर्वसाधारण को नहीं हो सकता, ऐसे परोक्ष वस्तुओं अर्थात् देशकालातीत पदार्थों का ज्ञान करने में समर्थ, सम्पूर्ण वस्तु के द्रष्टा देवर्षि नारद प्रणाम करके कुछ दूर पीछे-पीछे चले आ रहे देवताओं को लौटाकर आसुरीसम्पत्ति को नष्ट करने वाले भगवान् कृष्ण के इन्द्र के समान सुन्दर राजमहल में पहुँचे।

यहाँ पर 'अतीन्द्रियज्ञान' सामान्य लोगों को नहीं हो सकता, क्योंकि ये ज्ञान चक्षुरादि इन्द्रियों से नहीं किया जा सकता है। यह ज्ञान मात्र अन्तःप्रज्ञा के द्वारा ही देखा जा सकता है। मूर्धन्य टीकाकार मल्लिनाथ अपनी टीका में लिखते हैं-**'अतीन्द्रिया इन्द्रियमतिक्रान्ता देशकालस्वरूपाद्विप्रकृष्टार्थाः।** 'अर्थात् देशकाल

और स्वरूप से विप्रकृष्ट (दूरस्थ) परोक्ष पदार्थो के ज्ञाता अर्थ होता है। इस प्रकार 'परमाणु' का एवं अन्य परोक्षभूत वस्तुओं का ज्ञान हस्तामलकवत् योगियों को ही होता है। क्योंकि योगियों को प्रत्यक्ष ज्ञान के साधक उपायों की आवश्यकता नहीं होती, उन्हें इन सब का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। इसीलिए प्रस्तुत पद्य में 'सादित-दैत्यसम्पद:, चक्रिण:' का प्रयोग करते हैं। क्योंकि कृष्ण का जन्म **'रक्षणाय च साधूनां विनाशाय च दुष्कृतम्'** हुआ है। अतएव नारदजी, जो कि अतीन्द्रिय ज्ञान वाले थे, वे अपनी अन्त:प्रज्ञा के द्वारा ज्ञान प्राप्तकर भगवान् श्रीकृष्ण के घर पहुँचे, क्योंकि उनका प्रमुख कार्य अपने लक्ष्य की सिद्धि प्राप्त करना था। इससे माघ के योगजज्ञान की पुष्टि होती है।

महाकवि माघ आप्तपुरुष के उपदेश को शब्द प्रमाण मानते हैं। (शिशु०, १/१२-२२) तक के पद्य में भगवान् श्रीकृष्ण महर्षि नारद के आगमन पर जिस सामाजिक शिष्टाचार का निर्वाह करते हैं। वह आप्तपुरुष का उपदेश है। 'आप्त' उसे कहते हैं जो वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जानता है तथा हितोपदेष्टा होने के कारण जिसके वाक्यों को हम प्रमाण मान सकते हैं इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण और महर्षि नारद दोनों लोग लौकिक तथा वैदिक दोनों प्रकार के शब्दों के ज्ञाता कहे जा सकते हैं। अधोलिखित पद्य में देवर्षि नारद के आगमन से कृष्ण को इतना अपार हर्ष हुआ कि वह उनमें समा नहीं रहा था, यह उक्त तथ्य का प्रमाण है–

'युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनो
जगन्ति यस्यां सविकासमासत्।
तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विष-
स्तपोधनाभ्यागमसम्भवा मुद:।।'[४६]

'युगान्तकाल' अर्थात् सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग नामक चार युग माने जाते हैं। ये समय मापक शब्द हैं। सभी युगों के निश्चितवर्ष है। एक सहस्त्र युग के अन्त में प्रलय हो जाता है, उस युग में सम्पूर्ण जीवात्माएँ अपने कारण रूप में लीन हो जाती है। नारायण ही सम्पूर्ण जीवात्माओं के कारण रूप हैं। उन्हीं का अवतार कृष्ण का है। अतएव युगान्तकाल सम्पूर्ण जीवात्माओं को समाहित करने वाला माना जाता है। यहाँ पर माघ का दृष्टिकोण नैयायिकों के मत के अनुरूप जान पड़ता है क्योंकि प्रलय के बाद सम्पूर्ण जीवात्माएँ अपने कारण में लीन होती हैं, तात्पर्य यह कि उत्पत्ति के पूर्व कारण में कार्य की सत्ता का अभाव, अर्थात् उत्पन्न होने के पूर्व कार्य का 'प्राग्भाव' कारण में है तथा

नाश होने के पश्चात् उसका ध्वंसात्मक भाव हो जाता है। इस प्रकार 'कार्य' कारण से सर्वथा भिन्न है, परन्तु यह सत्य है कि कार्य समवाय सम्बन्ध के द्वारा कारण में सदैव रहता है। 'समवाय-सम्बन्ध' नित्य है। जब कभी कोई कार्य उत्पन्न होता है; तब वह 'समवाय-सम्बन्ध से अपने 'समवायि कारण में ही उत्पन्न होता है।

"तत्र तपोधनाभ्या..........०।" अर्थात् उसी शरीर में तपस्वी नारद के आगमन से उत्पन्न हर्ष नहीं समा रहा है। नारद के आगमन से उन्हें इतनी प्रसन्नता हुई जिसके कारण वह हर्ष उनके शरीर में नहीं समा रहा है। यहाँ पर आप्तपुरुष के कारण ऐसा हुआ है। वेद के विषय में न्याय जगत् कर्त्तृत्वरूप ईश्वर को मानता है। अत: वह वेद को ईश्वर कर्त्तृक होने से 'पौरुषेय' मानता है। नारदजी के वेदज्ञ होने की तथा धर्माधर्म के महान उपदेष्टा होने की पुष्टि निम्नलिखित पद्य से हो जाती है–

'कृतः प्रजाक्षेमकृता प्रजासृजा
सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना।
सदोपयोगेऽपि गुरुस्त्वमक्षयो
निधिः श्रुतीनां धनसंपदामिव॥'[४७]

नारदजी के हितोपदेष्टा होने के प्रमाण के लिए प्रस्तुत पद्य द्रष्टव्य है–

'हरत्यघं सम्प्रति हेतुरेष्यतः
शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः।
शरीरभाजां भवदीयदर्शनं
व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम्॥'[४८]

अर्थात् आपका दर्शन त्रिकाल में शरीरधारियों की 'योग्यता' को प्रकट करता है, क्योंकि वर्तमानकाल में पाप को नष्ट करता है, भविष्यत्काल में आने वाले शुभ का 'कारण' है तथा भूतकाल में किये गये पुण्यों का परिणाम। ये सभी बातें प्रमाण सिद्ध हैं।

प्रशस्त टीकाकार मल्लिनाथ माघ के आशय की व्याख्या की है–**'भवदीय-दर्शनं शरीरभाजाम्।** द्रष्ट प्रमाणित अर्थ मानते हैं। कालत्रितये अर्थात् भूतकालादि तीनों कालों की योग्यता एवं पवित्रता को व्यक्त करता है। **कुतः–सम्प्रति दर्शनकाले अघं पापं हरति। एष्यतो भाविनः शुभस्य श्रेयसो हेतुः। तथा पूर्वाचरितैः प्रागनुष्ठितैः शुभैः सुकृतै कृतम्।** इस प्रकार मनुष्य के सुकृति

कार्य-कारण भाव से 'समवाय' रूप में रहते हैं। पूर्वजन्म के कर्म से ही सन्तों के दर्शन होते हैं। इस आशय से भवभूति ने लिखा है-**'सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति।**

इस प्रकार उक्त सन्दर्भों के द्वारा 'शब्दप्रमाण' की सिद्धि हो जाती है।

महाकवि माघ निम्नलिखित पद्य में न्याय के सिद्धान्तपरक तथ्यों को रेखाङ्कित करते हैं-

'असम्पादयतः कञ्चिदर्थं जातिक्रियागुणैः।
यदृच्छाशब्दवत्पुंसः संज्ञायै जन्म केवलम्।।'[४९]

जाति (गोत्वादि), क्रिया (पाचकत्वादि) और गुण (शुक्लत्वादि) के द्वारा किसी अर्थ विशेष को सम्पादन न करते हुए (डित्थ-डवित्थ आदि) यदृच्छा शब्द के समान जाति (ब्राह्मणत्व आदि), क्रिया (अध्ययन आदि) तथा गुण (शौर्यादि) के द्वारा किसी (पुण्य, कीर्ति पुरुषार्थ आदि) प्रयोजन की सिद्धि को नहीं करते हुए पुरुष का जन्म (देवदत्त, यज्ञदत्त आदि) नाम के लिए है।

तात्पर्य यह कि जिस प्रकार इच्छानुसार पुकारे गये 'डित्थ, डवित्थ आदि शब्दों की जाति, क्रिया, गुण किसी से कोई वाच्यार्थ नहीं निकलता है, उसी प्रकार अकर्मण्य पुरुष की ब्राह्मणत्वादि जाति, यज्ञादि क्रिया तथा शौर्यादिक गुण-इन सबसे भी कोई कार्य नहीं हो सकता। वे डित्थ-डवित्थ आदि की नाममात्र के लिए हैं। इस प्रकार से माघ सङ्केतग्रह के माध्यम से वाक्यार्थ बोध में नैयायिकों के मत से सम्बद्ध जान पड़ते हैं। वस्तुतः वाक्यार्थबोध के लिए आकांक्षा, योग्यता तथा सन्निधि का होना नितान्त आवश्यक है।

महाकवि माघ न्याय के तर्क सम्मत सिद्धान्तों का निरूपण प्रस्तुत पद्य में करते हैं-

'अप्यनारभमाणस्य विभोरुत्पादिताः परैः।
ब्रजन्ति गुणतामर्थाः शब्दा इव विहायसः।।'[५०]

स्वयं क्रियाशून्य, कुछ नहीं करने वाले भी सर्वसमर्थ विजिगीषु राजा के, दूसरे अन्यान्य ग्यारह राजाओं, या गुप्तचरादि के द्वारा सम्पादित प्रयोजन उस प्रकार गुण बन जाते हैं, जिस प्रकार स्वयं कुछ नहीं करने वाले भी व्यापक आकाश के, दूसरे पटहादि के द्वारा पैदा किये गये शब्द गुण बन जाते हैं।

समर्थ राजा स्वयं निष्क्रिय होकर भी दूसरों से साधित कार्य को वैसे अपना गुण बना लेता है, जैसे व्यापक आकाश स्वयं निष्क्रिय होता हुआ भी दूसरे नगाड़े

आदि से उत्पन्न शब्द को अपना गुण बना लेता है। 'शब्द आकाश का गुण है' यह तर्कसम्मत सिद्धान्त है। अत: राजा को शक्तिमान् होना चाहिए।

महाकवि माघ अधोलिखित पद्य में प्रकृतन्याय के प्रतिज्ञा, हेतु आदि अनुभवों को रेखाङ्कित करते हैं–

'अनुसंततिपातिनः पटुत्वं
दधतः शुद्धिभृतो गृहीतपक्षाः।
वदनादिव वादिनोऽथ शब्दाः
क्षितिभर्तुर्धनुषः शराः प्रसस्रुः॥'[५१]

इस धनुष के खीञ्चने से ध्वनि होने के बाद राजा शिशुपाल के धनुष से, अविच्छिन्न गिरने वाले, लक्ष्यवेध का सामर्थ्य धारण करते हुए, लौहशुद्धियुक्त या विषरहित और पङ्खसहित वाण उस तरह निकलने लगे; जिस प्रकार वादी बोलने वाले या वाद करने वाले के मुख से निरन्तर निकलने वाले, वाचकता शक्तियों को धारण करते हुए, शुद्ध शास्त्रसम्मत पक्षों, नित्यत्व आदि साध्य अर्थों को ग्रहण किये हुए प्रतिज्ञा, हेतु उदाहरणादि रूप शब्द निकलते हैं।

माघ प्रस्तुत पद्य में अवयव पदार्थ का सङ्केत करते हैं। सैद्धान्तिक प्रतिपादन के लिए वादी जिन युक्तियों को उपस्थित करता है, प्रतिवादी अपनी मेधा के द्वारा खण्ड-खण्ड कर देता है, वही अवयव पदार्थ है। माघ अवान्तर रूप में अनुमान प्रमाण को भी रेखाङ्कित करते हैं–

'इषुवर्षमनेकमेकवीरस्त-
दरिप्रच्युतमच्युतः पृषत्कैः।
अथ वादिकृतं प्रमाणमन्यैः
प्रतिवादीव निराकरोत्प्रमाणैः॥'[५२]

इस शिशुपाल के द्वारा अपनी सेना को आच्छादित होने के उपरान्त महाशूर श्रीकृष्ण भगवान् ने शत्रु शिशुपाल के द्वारा की गई अत्यधिक वाणवृष्टि को वाणों से उस प्रकार खण्डित कर दिया, जिस प्रकार प्रतिवादी व्यक्ति वादी के द्वारा किये गये अनुमान आदि प्रमाण को दूसरे प्रत्यानुमानादि प्रमाणों द्वारा खण्डित कर देता है।

महाकवि माघ प्रस्तुत श्लोक में 'छल' पदार्थ का निरूपण करते हैं–

'तमकुण्ठमुखाः सुपर्णकेतो-
रिषवः क्षिप्तमिषुव्रजं परेण।
विभिंदामनयन्त कृत्यपक्षं
नृपतेर्नेतुरिवायथार्थवर्णाः॥'[५३]

तीक्ष्ण अग्रभाग वाले, गरुडध्वज श्रीकृष्ण भगवान् के बाण शत्रु द्वारा फेंके गये बाणसमूह को उस प्रकार खण्डित या नष्ट कर दिये, जिस प्रकार प्रगल्भ बोलने वाले, अयथार्थ अक्षरों वाले अर्थात् छल के साथ बात करने वाले, शत्रु तथा स्वामी दोनों पक्ष से वेतन लेने वाले लोग, विजय चाहने वाले राजा के कृत्यपक्ष अर्थात् भेद करने या फोड़ने वाले योग्य मंत्री आदि को भेदयुक्त करते या फोड़ते हैं।

इस प्रकार महाकवि माघ अपनी रचना में यत्र-तत्र न्यायदर्शन में प्रचलित शब्दों तथा सिद्धान्तों का उपयोग करते दिखाई देते हैं; जो उनके न्याय शास्त्रवेत्ता होने की पुष्टि करते हैं।

वैशेषिक-दर्शन

वैशेषिकदर्शन के प्रवर्तक महर्षि कणाद हैं, जिनका नाम उलूक या कणभुक् भी है। उनके 'कणादसूत्र' को औलूक्यदर्शन भी कहते हैं। जिस प्रकार न्यायदर्शन का मूल उद्देश्य अन्तर्जगत् के ज्ञानतत्त्वों का समीक्षण करना तथा ध्यान, धारणादि उपायों द्वारा आत्मा का साक्षात्कार और मन:शान्ति की साम्यावस्था के उपायों का प्रतिपादन करना है, उसी प्रकार वैशेषिकदर्शन का लक्ष्य आत्मा तथा आत्मेतर पदार्थों का परस्पर साधर्म्य-वैधर्म्य की सूक्ष्मताओं की जानकारी कराना और तत्त्वज्ञान की उपलब्धि पर प्रकाश डालना है।

वैशेषिक बहिर्जगत् के व्यापारों का विस्तार से समीक्षण परीक्षण करता है। वह द्रव्य, गुण, कर्म, समान्य, विशेष, समवाय और अभाव इन सात पदार्थों पर आधारित है। तत्त्वज्ञान की उपलब्धि के लिए इस सप्त पदार्थों का सम्यक् ज्ञान परमावश्यक है। द्रव्य नौ हैं; जिनके गुण और कर्म आश्रित धर्म हैं। द्रव्य, गुण और कर्म के संयोग से 'समवाय' पदार्थ की उत्पत्ति होती है। नानारूपधारी वस्तुओं के वैविध्य को जानने के लिए 'विशेष' की आवश्यकता होती है। सामान्य तथा विशेष का दूसरे पदार्थों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के लिए 'समवाय' नामक नित्य पदार्थ की आवश्यकता होती है। 'अभाव' नामक सातवाँ पदार्थ अनुष्ठान आदि निष्कामकर्मों के द्वारा मोक्ष प्राप्ति की ओर ले जाता है।

महर्षि कणाद ने अपने इस दर्शन का प्रणयन कनिष्ठ अधिकारियों के लिए किया है। कनिष्ठ अधिकारी वे हैं, जिन्हें आत्मा और अनात्मा का विवेक नहीं है। जिन्होंने नाशवान् एवं क्षणिक पदार्थों में ही आत्मबुद्धि स्थिर कर ली है। कणाद ने इन स्थूल लोगों के लिए सर्वप्रथम धर्म की सुगम मीमांसा करने के

उपरान्त नानारूपधारी असंख्य सांसारिक पदार्थों का स्वरूप विवेचन, प्रत्येक पदार्थ का लक्षण देकर विस्तार से निरूपण किया है।

साक्षात्कृतधर्मा कणाद ने पदार्थों की तत्त्वज्ञान विज्ञप्ति के लिए सबसे पहले विधान अन्तःकरण की शुद्धि के लिए किया है। अन्तःकरण की शुद्धि के लिए उन्होंने धर्मप्रवण होना आवश्यक बताया है, क्योंकि धर्मप्रवण हुए बिना अन्तःकरण शुद्ध नहीं हो सकता है। इसलिए अशुद्ध अन्तःकरण में विद्या का कथमपि प्रकाश नहीं हो सकता है। कणाद दर्शन धर्मप्रवण दर्शन है और उसका आरम्भ धर्म की व्याख्या से ही होता है। कणाद दर्शन के प्रथम चार सूत्र हैं–

१. **'अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः।'**
२. **'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः सधर्मः।'**
३. **'तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्।'**
४. **धर्मविशेषप्रसूताद्द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्य- वैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम्।'**

महर्षि कणाद के मतानुसार जीवात्मा और परमात्मा दोनों का अस्तित्व है और दोनों नित्य हैं। पदार्थज्ञान के वैशिष्ट्य बतलाने वाले इस दर्शन का नाम वैशेषिक दर्शन पड़ा।

महाकवि माघ के यज्ञ-प्रकरण में वैशेषिक दर्शन का सङ्केत और उनके सिद्धान्तों का विश्लेषण मिलता है। चतुर्दश सर्ग में राजसूययज्ञ के प्रकरण में वे व्याकरण, वेद, कर्मकाण्ड एवं दान को रेखाङ्कित करते हैं। माघ यज्ञ प्रकरण में दान के मार्मिक प्रसङ्गों का उल्लेख करते हैं। माघ ने इस सर्ग में अपनी सहृदयता का तो परिचय देते ही है साथ ही युधिष्ठिर के पावन चरित्र को आदर्श बना देते हैं। यथा–

अन्तर्जलौघमवगाढवतः कपोलौ
हित्त्वा क्षणं विततपक्षतिरन्तरीक्षे।
द्रव्याश्रयेष्वपि गुणेषु रराज नीलो
वर्णः पृथग्गत इवालिगणो गजस्य॥[५४]

अर्थात् जल के भीतर प्रविष्ट हाथी के दोनों कपोलों को छोड़कर क्षणमात्र पङ्खमूलों को फैलाया हुआ (श्यामवर्ण) भ्रमरसमूह ऐसा प्रतीत होता है कि मानो (नीलिमा-शुभ्रता आदि) गुणों के द्रव्याश्रित रहने पर भी हाथी का नीलवर्ण पृथक् होकर स्थित हो।

माघ के आशय को प्रशस्तटीकाकारमल्लिनाथ इस प्रकार रेखाङ्कित करते हैं–'**अलिगणो भ्रमरसङ्घो गुणेषु रूपादिषु द्रव्यमाश्रयो येषां तेषु द्रव्याश्रयेष्वपि अयुतसिद्धत्वात्, द्रव्यसमवेतत्वाच्च। द्रव्याधीनसत्ताकेषु सत्स्वपीत्यर्थः। पृथग्गतः जलमज्जनभयात् स्वाश्रयपरिहारेण स्थितो नीलो वर्णो नीलरूपं गजस्य नीलमेव रराज। गुणे शुक्लादयः इति पुंसि इत्यमरः। अत्रालिगणे सादृश्यात् गजनीलत्वाश्रयादयन्त उपलब्धिनिर्वाहाय पृथक् स्थिति विशिष्टत्वम्।** इस प्रकार मल्लिनाथ ने व्याख्या करके अलि और गज के सादृश्य होने पर भी दोनों के गुणों में भिन्नत्व है। वैशेषिकदर्शन में 'द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय-अभावाः सप्त पदार्थाः कहकर द्रव्य और गुण को अलग तत्त्व माना गया है।

'तत्र मन्त्रपवितं हविः क्रताव-
श्नतो न वपुरेव केवलम्।
वर्णसम्पदमतिस्फुटां दधन्नाम
चोज्ज्वलमभूद्धविर्भुजः॥'[५५]

उस यज्ञ में मन्त्र से पवित्र किये गये हविष्य (घृत आदि हवनीय पदार्थ) को खाते अर्थात् जलाते हुए अग्नि का अत्यन्त स्पष्ट प्रकाशश्री को धारण करता हुआ केवल शरीर ही उज्ज्वल (प्रकाशमान) नहीं हुआ, किन्तु अत्यन्त स्पष्ट अक्षरश्री को धारण करता हुआ (हविर्भुज् अर्थात् हविष् को खाने वाला) नाम भी उज्ज्वल (अवयवार्थघटित होने से रूढ) हो गया।

'स्पर्शमुष्णमुचितं दधच्छिखी
यद्ददाह हविरद्भुतं न तत्।
गन्धतोऽपि हुतहव्यसम्भवा-
द्देहिनामदहदोघमंहसाम्॥'[५६]

अर्थात् (स्वाभाविक होने से) उचित उष्ण स्पर्श को धारण करते हुए अग्नि ने जो हविष्य (हवन किये गये घृत पायस आदि हवनीय पदार्थों) को जलाया, वह आश्चर्य नहीं है; किन्तु हवन किये गये पदार्थों से उत्पन्न गन्ध से (सम्बन्ध होने से) प्राणियों अर्थात् (गन्ध को सूँघने वाले जीवों) के पाप-समूहों को भी जला (नष्ट कर) दिया, यह आश्चर्य है। 'गन्धवती पृथ्वी' वैशेषिकदर्शन की परिभाषा है।

'निर्जिताखिलमहार्णवौषधि-
स्यन्दसारममृतं ववल्गिरे।
नाकिनः कथमपि प्रतीक्षितुं
हूयमानमनले विषेहिरे॥'[५७]

देवताओं ने, महासमुद्र (में मन्थन करने के समय छोड़ी गई) औषधियों के रस के सार को सम्यक् प्रकार से पराजित किये गये (हवनीय घृत आदि हविष्य रूप) अमृत का भोजन किया और अग्नि में हवन किये जाते हुए (उस हवनीय घृत आदि हविष्य) को किसी प्रकार (बड़ी कठिनाई से) प्रतीक्षा करने के लिए सहन किया अर्थात् अग्नि में हवनीय द्रव्य को हवन करने तक उसके गन्ध को सूँघने से देवता लोग उसे हवन करने के उपरान्त भोजन करने के लिए उतावले हो रहे थे।

'प्राशुराशु हवनीयमत्र यत्तेन दीर्घममरत्वमध्यगुः।
उद्धतानधिकमेधितौजसो दानवांश्च विबुधा विजिग्यिरे॥'[५८]

देवों ने इस यज्ञ में हवनीय (घृत, पायस आदि हवन किये गये हविष्य द्रव्य) का जो शीघ्र भोजन किया, उससे वे दीर्घकाल के लिए अमर हो गये और (इसी से) बढ़े हुए बल वाले वे (देवता लोग) उद्धत असुरों को भी जीत लिए।

'किं नु चित्रमधिवेदि भूपति-
र्दक्षयन्द्विजगणानपूयत।
राजतः पुपुविरे निरेनसः
प्राप्य तेऽपि विमलं प्रतिग्रहम्॥'[५९]

राजा (युधिष्ठिर) यज्ञवेदी पर ब्राह्मण-समूह को हर्षित (या दक्षिणा युक्त) करते हुए स्वयं पवित्र हो गये, इसमें क्या आश्चर्य है? वे (ब्राह्मण-समूह) भी दोष-रहित राजा (युधिष्ठिर) से विमल (दोषरहित) दान पाकर पवित्र हो गये।

राजा के द्रव्य को दण्डादि प्राप्त होने से उसका प्रतिग्रह लेने का ब्राह्मणों को निषेध किया गया है; किन्तु न्यायपूर्वक सङ्ग्रहीत राजा के द्रव्य का प्रतिग्रह लेने का शास्त्र में निषेध नहीं किया है, अतएव राजा युधिष्ठिर ने न्यायपूर्वक सङ्ग्रहीत धन को ब्राह्मणों के लिए दान किया और उसे लेने वाले वे ब्राह्मण भी दूषित नहीं हुए, किन्तु उस दान के शास्त्रसम्मत होने से उसे लेकर पवित्र हो गये।

'तत्प्रतीतमनसामुपेयुषां
द्रष्टुमाहवनमग्रजन्मनाम्।
आतिथेयमनिवारितातिथिः
कर्तुमाश्रमगुरुः स नाश्रमत्॥'[६०]

अतिथियों का निषेध नहीं करने वाले तथा (ब्रह्मचर्य आदि चार) आश्रमों के नियन्ता वे (राजा युधिष्ठिर) उस यज्ञ को देखने के लिए आये हुए ब्राह्मणों

के आतिथ्य (अतिथिसत्कार) करने के लिए श्रान्त नहीं हुए अर्थात् उन ब्राह्मणों का आतिथ्य बराबर करते रहने पर भी नहीं थके। यहाँ पर उन्होंने आतिथ्यसत्कार रूपी धर्म का पालन किया है।

'निर्गुणोऽपि विमुखो न भूपते-
र्दानशौण्डमनसः पुरोऽभवत्।
वर्षुकस्य किमपः कृतोन्नते-
रम्बुदस्य परिहार्यमूषरम्॥'[६१]

दानशूर चित्तवाले राजा (युधिष्ठिर) के आगे (विद्यादि न पढ़ने से) गुणहीन भी कोई (याचक) विमुख अर्थात् (बिना दान पाये) नहीं लौटा; क्योंकि पानी बरसाने वाला, उन्नति को प्राप्त किया हुआ अर्थात् आकाश में छाया हुआ (पक्षा०-उदार होने से उन्नत चित्त वाला) मेघ ऊसर अर्थात् (बीजाङ्कुर नहीं पैदा करने वाली भूमि) को क्या छोड़ देता है? अर्थात् नहीं छोड़ता है, (अतएव दानशील राजा युधिष्ठिर ने निर्गुण को भी दान दिया।)

'प्रेम तस्य न गुणेषु नाधिकं
न स्म वेद न गुणान्तरं च सः।
दित्सया तदपि पार्थिवोऽर्थिनं
गुण्यगुण्य इति न व्यजीगणत्॥'[६२]

राजा (युधिष्ठिर) को गुणों में अधिक प्रेम नहीं था, ऐसी बात नहीं थी (उन्हे गुणों से प्रेम था), ऐसा भी नहीं था कि वह किसी विशेष गुण को न जानते हों, किन्तु ऐसा होने पर भी पृथ्वी के पति राजा युधिष्ठिर ने केवल दान करने की इच्छा से याचकों में गुणी और गुणहीन होने का विचार नहीं किया।

'नानवाप्तवसुनाऽर्थकाम्यता
नाचिकित्सितगदेन रोगिणा।
इच्छताशितुमनाशुषा न च
प्रत्यगामि तदुपेयुषा सदः॥'[६३]

उस (युधिष्ठिर की) सभा में धन की इच्छा से आया हुआ पुरुष विना धन पाये नहीं गया, (रोग की चिकित्सा कराने की इच्छा से) आया हुआ रोगी रोग की विना चिकित्सा कराये नहीं गया और खाने की इच्छा से आया हुआ पुरुष विना भोजन किये नहीं गया अर्थात् जिस इच्छा को मन में रखकर उस सभा में जो पुरुष उपस्थित हुआ, वहाँ उसकी वह सब इच्छा पूरी हो गई।

'मर्त्यमात्रमवदीधरद्भवान्-
मैनमानमितदैत्यदानवम्।
अंश एष जनतातिवर्तिनो
वेधसः प्रतिजनं कृतस्थितेः॥'[६४]

('इस ब्राह्मण-क्षत्रिय-समुदाय में श्रीकृष्ण भगवान् ही सर्वाधिक गुण सम्पन्न हैं', इसके पुष्ट्यर्थ भीष्मपितामह सर्ग की समाप्ति तक उनकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं) दैत्यों एवं दानवों को नम्र करने (पराभूतकर दबाने) वाले इनको तुम केवल मानव मात्र मत जानों, क्योंकि ये (श्रीकृष्ण भगवान्) जनसमूहातिशायी एवं प्रत्येक जन में स्थित परमात्मा के अंश हैं।

'भीष्मोक्तं तदिति वचो निशम्य सम्य-
क्साम्राज्यश्रियमधिगच्छता नृपेण।
दत्तेऽर्घे महति महीभृतां पुरोऽपि
त्रैलोक्ये मधुभिदभूदनर्घ एव॥'[६५]

इस प्रकार (१४/५४-८५) भीष्मपितामह के कहे गये वचन को सुनकर सम्यक् प्रकार से साम्राज्य लक्ष्मी को प्राप्त राजा युधिष्ठिर के द्वारा राजाओं के सामने ही श्रेष्ठ अर्घ के देने पर भी श्रीकृष्ण भगवान् तीनों लोकों में अनर्घ (अर्घ रहित, पक्षा० अमूल्य अर्थात् अतिशय श्रेष्ठ) ही रहे। यहाँ प्रथम अर्थ से उपस्थित विरोध का द्वितीय अर्थ से परिहार करना चाहिए।

मीमांसा-दर्शन

आस्तिक दर्शनों में मीमांसा अग्रगण्य है। भारतीय विचारधारा के अनुसार वेद को प्रमाण मानने वाला ही आस्तिक कहा जाता है। आस्तिकदर्शन भी नास्तिक के ही समान छः हैं। जिन्हें षड्दर्शन कहा जाता है। इन षड्दर्शनों में मीमांसा का स्थान सर्वोपरि है, क्योंकि इसमें वैदिक वाक्यों को पूर्णतः प्रमाण माना गया है। वेद के कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड दो भेद हैं। कर्मकाण्ड पूर्वमीमांसा का विषय है एवं ज्ञानकाण्ड उत्तरमीमांसा (वेदान्त) का प्रतिपाद्य विषय है। पूर्वमीमांसा में वैदिक कर्मकाण्ड की पुष्टि नहीं की गई है; तथापि वैदिक मंत्रों की यागपरक व्याख्या की गई है। यागविधान का विस्तार के सहित वर्णन ब्राह्मण ग्रंथों में प्राप्त होता है, परन्तु जैसे-जैसे वैदिक कर्मकाण्ड का प्रचार होता गया, वैसे-वैसे यागविधान की समृद्धि भी होती गई और कर्मकाण्ड सम्बन्धी अनेक समस्याएँ भी उपस्थित होती गई। उदाहरणार्थ—क्या सभी वैदिक

वाक्यों का सम्बन्ध याग से है? याग के अनुष्ठान के लिए किन-किन अर्हताओं की आवश्यकता है? किस क्रिया का अनुष्ठान कौन व्यक्ति करेगा? कौन सी क्रिया मुख्य है और कौन उसकी अङ्गीभूत? अपूर्णविधान वाले यागों के विधान की पूर्ति का क्या उपाय है? इत्यादि प्रश्नों का उचित उत्तरमीमांसा से ही दिया जा सकता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि मीमांसादर्शन के दो मुख्य विषय हैं—कर्मकाण्ड की विधियों की असङ्गति दूर करने तथा सङ्गति उत्पन्न करने के लिए व्याख्यापद्धति का निर्माण करना और कर्मकाण्ड के मूलभूत सिद्धांतों का तर्कनिष्ठ प्रतिपादन करना है।

महाकवि माघ राजसूययज्ञ के प्रसङ्ग में मीमांसादर्शन का विवेचन एवं उनके सिद्धान्तों का विश्लेषण करते हैं। राजसूययज्ञ के प्रकरण में व्याकरण, वेद, कर्मकाण्ड एवं दान की छोटी-छोटी बातों की चर्चा करते हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने अपने जीवन में किसी विशाल यज्ञ का समारम्भ एवं समावर्तन समारोह सम्पन्न किया रहा होगा। राजसूययज्ञ में दान के मार्मिक प्रसङ्गों को लेकर माघ ने अपनी सहृदयता से अत्यन्त उज्जवल तो बना ही देते हैं साथ ही युधिष्ठिर के पावन चरित्र में चार-चाँद लगा देते हैं—

'निर्गुणोऽपि विमुखो न भूपते-
दानशौण्डमनसः पुरोऽभवत्।
वर्षुकस्य किमपः कृतोन्नते-
रम्बुदस्य परिहार्यमूषरम्॥'[६६]

दानशूर चित्तवाले राजा (युधिष्ठिर) ने विद्या, तप आदि से शून्य निर्गुण अर्थात् गुणहीन किसी भी याचक को खाली हाथ नहीं जाने दिया; क्योंकि पानी बरसाने वाला, उन्नति को प्राप्त किया हुआ अर्थात् आकाश में छाया हुआ (पक्षा०-उदार होने से) उन्नत चित्तवाला मेघ ऊसर (बीजाङ्कुर नहीं पैदा करने वाली भूमि) को क्या छोड़ देता है? अर्थात् नहीं छोड़ता, अतएव दानशील राजा युधिष्ठिर ने निर्गुणों को भी दान दिया।

'प्रेम तस्य न गुणेषु नाधिकं
न स्म वेद न गुणान्तरं च सः।
दित्सया तदपि पार्थिवोऽर्थिनं
गुण्यगुण्य इति न व्यजीगणत्॥'[६७]

उस (राजा युधिष्ठिर) को गुणों में अधिक प्रेम नहीं था, ऐसी बात नहीं

थी और वे गुणों के भेद (न्यूनाधिक्य-कमीवेशी) को नहीं जानते थे, यह भी बात नहीं थी अर्थात् वे गुणों में अधिक प्रेम रखते थे एवं किसमें कम और किस में अधिक गुण है? इस बात को भी जानते थे; तथापि देने की इच्छा से उन्होंने यह याचक गुणवान् है और यह निर्गुण है, इसकी गणना ही नहीं की।

महाकवि माघ अर्घ प्राप्त करने योग्य व्यक्तियों को भी रेखाङ्कित करते हैं–

'स्नातकं गुरुमभीष्टमृत्विजं
संयुजा च सह मेदिनीपतिम्।
अर्घभाज इति कीर्तयन्ति षट्
ते च ते युगपदागताः सदः॥'[६८]

(सदाचारी) गृहस्थ-विशेष, (पिता आदि) गुरुजन, इष्टबन्धु, ऋत्विज, जामाता और राजा–ये छः अर्घ के प्राप्त करने योग्य होते हैं, ऐसा शास्त्रज्ञ कहते हैं और वे सभी तुम्हारी सभा में एक साथ आये हुए हैं।

'शोभयन्ति परितः प्रतापिनो
मन्त्रशक्तिविनिवारितापदः।
त्वन्मख मुखभुवः स्वयम्भुवो
भूभुजश्च परलोकजिष्णवः॥'[६९]

प्रतापी (तेजस्वी, पक्षा०-प्रताप से शत्रुओं को सन्तप्त करने वाले), मन्त्र (विचार, पक्षा०-वेदमन्त्र) की शक्ति से (दैवकृत् एवं मानवकृत्, पक्षा०–शत्रुकृत) आपत्तियों को रोके हुए तथा परलोक (स्वर्गादि लोकान्तर, पक्षा०-शत्रुसमूह) को जीतने वाले, ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न (ब्राह्मण) 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् इति श्रुतेः' और राजा लोग तुम्हारे यज्ञ को सब ओर से सुशोभित कर रहे हैं।

'आभजन्ति गुणिनः पृथक्पृथक्-
पार्थ सत्कृतिमकृत्रिमाममी।
एक एव गुणवत्तमोऽथवा
पूज्य इत्ययमपीष्यते विधिः॥'[७०]

यद्यपि गुणवान् सभी अलग-अलग सत्कार के योग्य हैं; तथापि अधिक गुणवान् एक ही व्यक्ति पूज्य या पूजा के योग्य होता है, यह भी शास्त्र से अनुमोदित विधि है।

महाकवि माघ ने देवताओं को आह्वान करने वाले मंत्र-विशेष तथा यज्ञाङ्ग

साधनभूत मंत्र-विशेष के द्वारा तत्तद्देवताओं के आह्वान के मंत्रोच्चारण की मीमांसा पर जोर देते हुए कहते हैं कि–

'शब्दितामनपशब्दमुच्चकै-
र्वाक्यलक्षणविदोऽनुवाक्यया।
याज्यया यजनकर्मिणोऽत्यज-
न्द्रव्यजातमपदिश्य देवताम्।।'[७१]

अर्थात् मीमांसाशास्त्र में पारङ्गत ऐसे यज्ञकर्त्ता पुरोहित लोग, जिनके उच्चारण में कभी अशुद्धियाँ नहीं होती थीं, उच्च स्पष्ट स्वर से याज्या श्रुति का उच्चारण कर आवाहित देवताओं को लक्ष्य करके अग्नि में आहुतियाँ छोड़ने लगे।

भाव यह कि यज्ञ के मन्त्रोच्चारण में विशेष रूप से योग्यता होनी चाहिए अन्यथा अनर्थ या अशुभ होने की आशङ्का बनी रहती है। कहा जाता है कि एक बार इन्द्र के शत्रु वृत्रासुर ने अपनी अभ्युदय की कामना से यज्ञ कराया, किन्तु पुरोहितों द्वारा मंत्रों के स्वर विपर्यय कर देने से उसी बेचारे का सत्यानाश हो गया। आचार्य पाणिनि ने भी मन्त्रोच्चारण के सम्बन्ध में कड़ी चेतावनी देते हुए कहा है–

'मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोपराधात्।।'

(पाणिनि शिक्षा–५२)

अर्थात् स्वर या वर्ण के उच्चारण दोष के कारण मंत्र अपने वास्तविक अर्थ को प्रकट नहीं करता है और इस प्रकार वह वाग्वज्र बनकर उसी प्रकार यजमान का नाश कर देता है जैसे वृत्रासुर का हुआ था।

महाकवि माघ निम्नलिखित श्लोक में सामवेद पढ़ने की विधि और तरीके की विवेचना की है। मीमांसा पर ध्यानाकृष्ट करते हुए कहते हैं कि–

'सप्तभेदकरकल्पितस्वरं साम सामविदसङ्गमुज्जगौ।
तत्र सूनृतगिरश्च सूरयः पुण्यमृग्यजुषमध्यगीषत्।।'[७२]

अर्थात् सामवेद के ज्ञाता (उद्गाता) लोग हाथ के सञ्चालन-विशेष से व्यक्त किये गये निषादादि (या–कष्ट, मन्द आदि) सात स्वरों वाले सामवेद को स्खलनरहित अर्थात् कहीं पर स्खलित नहीं होते हुए उच्च स्वर से गाने लगे और सत्य तथा प्रिय बोलने वाले (होता आदि) विद्वान् लोग कल्याणकारक ऋग्वेद तथा यजुर्वेद को पढ़ने लगे।

तात्पर्य यह है कि हस्तसञ्चालन के द्वारा स्वरोच्चारण नहीं करने पर उच्चारण करने वाले का वियोनि में जन्म होता है तथा हस्तसञ्चालन के द्वारा स्वर, वर्ण तथा अर्थ के साथ मंत्रो का उच्चारण करने वाला ऋग्वेदादि वेदों से पवित्र होकर ब्रह्मलोक में पूजित होता है। यथा–

'हस्तहीनं तु योऽधीते स्वरवर्णविवर्जितम्।
ऋग्यजुःसामभिर्दग्धो वियोनिमधिगच्छति॥
हस्तेन वेदं योऽधीते स्वरवर्णार्थसंयुतम्।
ऋग्यजुःसामभिः पूतो ब्रह्मलोके महीयते॥'[७३]

अतएव युधिष्ठिर के यज्ञ में सामवेद के गान करने वाले ऋत्विज् लोग हस्तसञ्चालन के द्वारा स्वरों का सङ्केत करते हुए उच्चारण करते थे।

महाकवि माघ ने यजमान की धर्मपत्नी को हविष्य आदि पदार्थों को देखने के बाद संस्कारयुक्त होने पर हवन करने का 'पत्न्यवेक्षते' मन्त्र द्वारा विधान किया है इसका उल्लेख करते हुए कहते हैं–

'बद्धदर्भमयकाञ्चिदामया-
वीक्षितानि यजमानजायया।
शुष्मणि प्रणयनादिसंस्कृते
तैर्हवींषि जुहवाम्बभूविरे॥'[७४]

अर्थात् कुशाओं की बनी हुई मेखला को पहनी हुई यजमान (युधिष्ठिर) की धर्मपत्नी (द्रोपदी) के द्वारा देखे गये हविष्यों (यज्ञीय घृत आदि पदार्थों) को प्रणयन आदि (परिस्तरण, समिदाधान, संमार्जन आदि) से संस्कार युक्त अग्नि में वे ऋत्विज् लोग हवन करने लगे।

महाकवि माघ निम्नलिखित श्लोक में व्याकरणादि के ज्ञाता द्वारा आवश्यकतानुसार लिङ्गवचनादि के भेदों से परिवर्तन का उल्लेख करते हुए कहते हैं–

'नाञ्जसा निगदितुं विभक्तिभि-
र्व्यक्तिभिश्च निखिलाभिरागमे।
तत्र कर्मणि विपर्यणीनमन्
मन्त्रमूहकुशलाः प्रयोगिणः॥'[७५]

अर्थात् लिङ्ग, वचन इत्यादि के भेद से शब्दों के अर्थों को बदलने में निपुण पुरोहित लोग उस यज्ञ में वेदोक्त समस्त विभक्ति, वचन और लिङ्गों द्वारा कठिन मंत्रो के अर्थों में बड़ी कुशलता से उक्त फेर-बदल कर देते थे।

और भी–

'संशयाय दधतोः सरूपतां
दूरभिन्नफलयोः क्रियां प्रति।
शब्दशासनविदः समासयो-
र्विग्रहं व्यवससुः स्वरेण ते॥'[७६]

अर्थात् व्याकरणशास्त्र के ज्ञाता वे (ऋत्विज्) लोग, सन्देह (उत्पन्न) करने के लिए समान रूप वाले अर्थात् समान रूप होने से सन्देहोत्पादक, (किन्तु) कार्य के प्रति भिन्न फल देने वाले दो समासों के विग्रह का स्वर के द्वारा निर्णय करते थे।

तात्पर्य यह है कि सन्दिग्ध समासों से विपरीत अर्थ निकलने की सम्भावना बनी रहती थी। जैसे–वृत्रासुर के यज्ञ में पुरोहितों ने 'इन्द्रशत्रु' शब्द के लिए षष्ठी तत्पुरुषसमास तथा बहुब्रीहिसमास में स्वरभेद करके अपने यजमान का ही नाश कर दिया था। अतः व्याकरणशास्त्र के पंडित पुरोहित लोग अपने यजमान राजा युधिष्ठिर के अनुकुल पड़ने वाले अर्थ के अनुसार स्वर का पाठ कर रहे थे।

मीमांसाशास्त्र की निपुणता निम्नलिखित श्लोक से ज्ञात होती है–

'प्रतिशरणमशीर्णज्योतिरग्न्याहितानां
विधिविहितविरिब्धैः सामिधेनीरधीत्य।
कृतगुरुदुरितौघध्वंसमध्वर्युवर्यै-
र्हुतमयमुपलीढे साधु साम्नाय्यमग्निः॥'[७७]

अर्थात् अग्निहोत्रियों के प्रत्येक गृह (अग्निहोत्रशालाओं) में सम्यक् प्रकार से जलती हुई अग्नि, शास्त्रोक्त विधि से एक श्रुत्यादि स्वरों का उच्चारण करने वाले श्रेष्ठ ऋत्विजों के द्वारा सामधेनी (अग्नि को प्रज्वलित करने वाला 'प्र वो वाजा' इत्यादि मंत्रविशेष) को पढ़कर बड़े-बड़े पाप समूहों के विनाशपूर्वक हवन किए गये (अथवा-वहन किये गये बड़े-बड़े पाप-समूहों को नष्ट करने वाले) हविष-विशेष को सम्यक् प्रकार से आस्वादन कर (जला) रही है।

महाकवि माघ अधोलिखित पद्य में जप की विधि की ओर सङ्केत करते हैं–

'प्रकृतजपविधीनामास्यमुद्रश्मिदन्तं
मुहुरपिहितमोष्ठ्यैरक्षरैर्लक्ष्यमन्यः।
अनुकृतिमनुवेलं घट्टितोद्घट्टितस्य
व्रजति नियमभाजां मुग्धमुक्तापुटस्य॥'[७८]

जप करते हुए नियमतत्पर (तपस्वियों) के, (उ ऊ प फ ब भ म~प~फ इन) ओष्ठ्य अक्षरों से बार-बार बन्द तथा दूसरे (उक्त अक्षरों को छोड़कर अन्य) अक्षरों से दिखलाई पड़ता हुआ (अतएव) बाहर निकलती हुई प्रभा से युक्त दाँतों वाला मुख, प्रतिक्षण बन्द होते तथा खुलते हुए सुन्दर मोती के बन्द शुक्तिपुट की समानता को प्राप्त करता है।

महाकवि माघ अधोलिखित पद्य में पुरोहितों की पवित्रता, वेदसम्मत मीमांसादि के ज्ञात्वता एवं उनकी कुलीनता का सङ्केत करते हैं-

'शुद्धमश्रुतिविरोधि विभ्रतं
शास्त्रमुज्ज्वलमवर्णसङ्करैः।
पुस्तकैः सममसौ गणं मुहु-
र्वाच्यमानमशृणोद्द्विजन्मनाम्।।'[६९]

इस (राजा युधिष्ठिर) ने आचरण से पवित्र, वेदविरुद्ध (पुराणादि) शास्त्र को धारण करते (हाथ में लिए, या अभ्यास द्वारा कण्ठस्थ किये) हुए, वर्ण-सङ्करता से हीन अर्थात् सत्कुलोत्पन्न, ब्राह्मण-समूह को; (अपशब्द रहित होने से) शुद्ध, (सुनने में मधुर होने से) कान के अनुकूल व्याख्यान किए जाते हुए (अथवा-वेदाविरुद्ध पुराणदि शास्त्रों से अन्वयगुणादि के क्रम से प्रस्तुत किए जाते हुए) असङ्कीर्ण अक्षरों वाले पुस्तकों के (पुस्तकाक्षर वाक्यों के) सहित गोष्ठी (या स्वस्त्ययन) करते हुए सुना।

तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण लोग गोष्ठी (या स्वस्त्ययन पाठ) कर रहे थे, जो पवित्र सदाचारी, वेदसम्मत मीमांसादि शास्त्रों से युक्त तथा कुलीन थे और असङ्कीर्ण अक्षरों वाले, श्रवणमधुर, व्याख्या किये जाते हुए (या वेदानुकूल पुराणादि शास्त्र के अनुसार वंशादि क्रम से प्रस्तूयमान) पुस्तकों से युक्त थे; अर्थात् युधिष्ठिर ने दान देने के समय में प्रत्येक ब्राह्मणों के गुणों एवं उनकी गोष्ठियों को सुना।

'नापचारमगमन्क्वचित्क्रियाः
सर्वमत्र समपादि साधनम्।
अत्यशेरत परस्परं धियः
सत्रिणां नरपतेश्च सम्पदः।।'[७०]

इस यज्ञ में कहीं पर किसी विधि का अपचार (अभाव या विपर्यास आदि दोष अर्थात् किसी द्रव्य के अभाव में उसके प्रतिनिधि द्रव्य का उपयोग करना

आदि) नहीं हुआ, क्योंकि सभी साधन सम्पन्न (सम्यक् प्रकार से सङ्गृहीत) थे; यज्ञकर्त्ता ऋत्विजों की बुद्धि अर्थात् ज्ञान एवं राजा युधिष्ठिर की सम्पत्ति (यज्ञ सामग्री) दोनों ही परस्पर में अत्यधिक हो रही थी।

'वारिपूर्वमखिलासु सत्क्रिया-
लब्धशुद्धिषु धनानि बीजवत्।
भावि बिभ्रति फलं महद्द्विज-
क्षेत्रभूमिषु नराधिपोऽवपत्॥'[८१]

राजा (युधिष्ठिर) ने अभिषेक संस्कार रूप सत्क्रिया से शुद्ध बनी हुई, सम्पूर्ण ब्राह्मण रूपी खेत की भूमि में भविष्य में अधिक फल को देने वाले धन को बीज के समान जलपूर्वक अर्थात् पहले जल देकर बोया (बाँटा)।

जिस प्रकार चतुर किसान हल चलाकर एवं कङ्कड़ पत्थर आदि हटाकर शुद्ध की गई सम्पूर्ण खेत की भूमि में पहले पानी देकर बीज को बोता है और वह बीज भविष्य में अधिक फल देने वाला होता है, उसी प्रकार राजा युधिष्ठिर ने अभिषेकादि सत्क्रिया से शुद्ध ब्राह्मणों के लिए पहले सङ्कल्प जल को देकर बाद में धन को दान किया, जो भविष्य में बहुत फल देने वाले थे, दान देने के पूर्व सङ्कल्प के जल को भी देना शास्त्रीय विधि है।

मीमांसादर्शन के सन्दर्भ शिशुपालबध में विशेषरूप से नहीं प्राप्त होते। मीमांसा की दृष्टि से कर्मकाण्डीय विधानों की चर्चा अवश्य प्राप्त होती है। मीमांसक जगत् का कर्त्ता कोई ईश्वर है, ऐसा नहीं स्वीकार करते, जबकि माघ ईश्वरवादी हैं। इस प्रकार मीमांसा के अनेक सिद्धान्तों के प्रति माघ उदासीन हैं। मीमांसकों की गतिविधियों का उन्हें सम्यक् ज्ञान है। वे कण्ठत: मीमांसकों का उल्लेख करते हैं– **'शब्दितामनपशब्दमुच्चकैर्वाक्यलक्षण विदोऽनुवाक्यया'**[८२] यहाँ वाक्यलक्षणविद: मीमासकों का ही अववोधक है।

वेदान्त-दर्शन

'वेदान्त' का शाब्दिक अर्थ है-वेद का अन्त। श्री बलदेव उपाध्याय 'अन्त' शब्द को रहस्य या सिद्धान्त मानकर वेदान्त का अर्थ 'वेद का मन्तव्य', वेद का प्रतिपाद्य सिद्धान्त बताते हैं। सदानन्दमुनि ने तो **"वेदान्तो नामोपनिषत्प्रमाणं तदुपकारीणि शारीरिकसूत्रादीनि च।"**[८३] इस प्रकार कहकर वेदान्त की परिभाषा की है।

अधिकांश विद्वानों ने तो 'वेदान्त' शब्द का अर्थ वेद का अन्तिम भाग अर्थात् उपनिषदों से लिया है। वस्तुतः वेदों का सार ही उपनिषदों का विषय है। उपनिषदों में सर्वत्र मुख्य रूप से आत्मा, ब्रह्म पर ही विचार किया गया है। उपनिषदों के ब्रह्म और आत्म सम्बन्धी वर्णन के आधार पर जिस दार्शनिक परम्परा का विकास हुआ, वही 'वेदान्त' के नाम से अभिहित हुआ है।

महाकवि माघ 'अद्वैत वेदान्त' के तत्वों का निरूपण तो अनेक स्थलों पर करते हैं। संसार को मिथ्या माया मानकर ब्रह्म या परमात्मा को ही एक मात्र सत्य मानते हैं। माघ अनेक स्थलों पर केवल ब्रह्मज्ञानप्राप्ति की साधना एवं मोक्षप्राप्ति की आकांक्षा प्रकट करते हैं। माघ वेदान्त की कुछ अन्यान्य सिद्धान्तपरक बातों की भी चर्चा अनेक स्थलों पर करते हैं। इस प्रकार महाकवि माघ द्वारा प्रतिपादित वेदान्त विषयक तत्त्वों का विवेचन हम अधोलिखित प्रकार से करते हैं।

महाकवि माघ निम्नलिखित श्लोक में कृष्ण को जगदाधार के रूप में निर्दिष्ट करते हैं। इससे उनका पूर्ण ब्रह्मत्व सिद्ध होता है। यथा–

'युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनो
जगन्ति यस्यां सविकासमासत।
तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विष-
स्तपोधनाभ्यागमसंभवा मुदः।।'[८४]

अर्थात् सृष्टि के संहारकाल में भगवान् श्रीकृष्ण समस्त जीवात्माओं को अपने में समाहित कर लेते हैं। जिस प्रकार मकड़ी अपने द्वारा उगले गये जाल को अपने में समाहित कर लेती हैं **'एकोऽहं बहुस्याम्'** के अनुसार सम्पूर्ण जीवात्मा कृष्ण (हिरण्यगर्भ) के व्यष्टि रूप ही तो है। अतः उनके शरीर में सम्पूर्ण जगत् बड़े ही आसानी से समाहित हो जाता है।

महाकवि माघ प्रस्तुत पद्य में मायानिवृत्ति का सङ्केत करते हैं–

'जगत्यपर्याप्तसहस्त्रभानुना
न यन्नियन्तुं समभावि भानुना।
प्रसह्य तेजोभिरसंख्यतां गतै
रदस्त्वया नुन्नमनुत्तमं तमः।।'[८५]

भगवान् कृष्ण नारद से कहते हैं–महर्षे! संसार में हजारों किरणों वाला सूर्य जिस अन्तःकरणस्थ मोहान्धकार अर्थात् अज्ञान रूप अन्धकार को नहीं दूर कर

सका, आपने उस सर्वश्रेष्ठ अज्ञानान्धकार को अपने ज्ञान रूप तेज से बलपूर्वक नष्ट कर दिया।

महाकवि माघ (शिशु० १/३१-३३) में निर्गुण ब्रह्म की उपासना की ओर सङ्केत करते हैं। इससे माघ के निर्गुणोपासक होने की पुष्टि होती है। आचार्यशङ्कर के अनुसार निर्गुण ब्रह्म उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय है। श्रुति का पर्यवसान निर्गुण की व्याख्या में है, क्योंकि निर्गुण ब्रह्म ही पारमार्थिक है। यथा–

'इति ब्रुवन्तं तमुवाच स व्रती
न वाच्यमित्थं पुरुषोत्तम! त्वया।
त्वमेव साक्षात्करणीय इत्यतः
किमस्ति कार्यं गुरु योगिनामपि॥'[८६]

माघ ने प्रस्तुत पद्य में श्रीकृष्ण को पुरुषोत्तम नाम से सम्बोधित करते हैं–**'पुरुषेषु उत्तमः इति पुरुषोत्तमः'** अर्थात् पुरुषों में जो सर्वश्रेष्ठ हो वह पुरुषोत्तम है। कृष्ण का पुरुषोत्तम नाम भी है–**'देवकीनन्दनः शौरिः श्रीपतिः पुरुषोत्तमः'** (अमरकोष)। गीता में भी भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं–

'यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥' (गीता)

अतएव भगवान् कृष्ण योगियों के ध्यान के विषय भी हैं।

महाकवि माघ अधोलिाति पद्य में कृष्ण को मुमुक्षुओं के द्वारा साक्षात्करणीय बताते हैं–

'उदीर्णरागप्रतिरोधकं जनै-
रभीक्ष्णमक्षुण्णतयाऽतिदुर्गमम्।
उपेयुषो मोक्षपथं मनस्विन-
स्त्वमग्रभूमिर्निरपायसंश्रया॥'[८७]

प्रस्तुत पद्य के माध्यम से माघ भगवान् कृष्ण को अग्रभूमि बताते हैं। उनको प्राप्त कर लेने पर पुनः कोई लौटता नहीं है–**'न स पुनरावर्तते'** अर्थात् मनुष्य सांसारिक आवागमन से रहित हो जाता है। भगवत् साक्षात्कार ही वस्तुतः मोक्ष है, क्योंकि **'सोऽहम्'** यह श्रुतिवाक्य है। अतः नारद यह सिद्ध करते हैं कि कृष्ण ही मुमुक्षुओं के द्वारा साक्षात्करणीय हैं। इसके अतिरिक्त मुक्ति का कोई अन्य मार्ग नहीं हैं। प्रशस्तटीकाकार मल्लिनाथ लिखते हैं–**'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'**।

महाकवि माघ प्रस्तुत पद्य में निर्गुण-परम्परा के अनुसार कृष्ण को ब्रह्म सिद्ध करने का प्रयास करते हैं–

'उदासितारं निगृहीतमानसै-
गृहीतमध्यात्मदृशा कथञ्चन।
वहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः
पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः॥'[८८]

प्रशस्तटीकाकार मल्लिनाथ कहते हैं कि मनीषी 'पुरुष-पदवाच्य' को विज्ञानघन बोलते हैं। जैसे–

'मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्तः।
षोडषकस्तु विकारो न प्रकृतिर्नविकृतिः पुरुषः॥'

'अजामेकां लोहितशुक्ल कृष्णाम्' इत्यादि श्रुतिश्च। **सोऽपि त्वमेव' तत्त्वमसि' इत्यादि वाक्यैरेक्य श्रवणात्।** इस प्रकार मल्लिनाथ तत्त्वमसि वेदान्तवाक्य से भी ऐक्य स्थापित करते हैं।

प्रस्तुत पद्य में माघ उस पुरुष को 'व्यक्त और अव्यक्त' प्रकृति से सर्वथा भिन्न एवं उदासीन मानते हैं। वह विशुद्ध चैतन्यरूप है। वह पुरातन पुरुष आप ही हैं। यहाँ पर पुरातन शब्द से आशय–मूलप्रकृति के पूर्व भी उस पुरुष के विद्यमान होने से है। अतएव वह अनादि तथा पुरातन है। पुरुष पदवाच्य से आशय आत्मतत्त्व से है। वह प्रकृति और विकृति दोनों से भिन्न है। वह विज्ञानघनरूप है।

'अजामेकां -----०।' यह श्रुतिवचन अज्ञान से एकत्व का सूचक है। **'इन्द्रो मायाभिः -------।'** यह वाक्य अज्ञान (माया) के अनेकत्व का बोधक है। इसी से अज्ञान शब्द का एक तथा अनेक के अभिप्राय से समष्टि और व्यष्टि से व्यवहार होता है।

यहाँ पर ईश्वर (पुरुष) स्थित माया (अज्ञान) में सत्त्वगुण की प्रधानता रहती है, उस विशुद्ध सत्त्व के समक्ष रजस् तथा तमस् गुण अभिभूत से होते हैं, न कि ईश्वर में स्थित माया (अज्ञान) में रजस् एवं तमस् गुण बिल्कुल नहीं रहता। प्रस्तुत पद्य में सत्त्वगुण समष्टि (ईश्वर) में स्थित अज्ञान में रजस् तथा तमस् को अभिभूत किये रहता है। इस प्रकार उत्कृष्ट उपाधि से युक्त चैतन्य को सर्वज्ञ, सबका ईश्वर तथा सर्वनियन्ता आदि गुणों वाला, अव्यक्त, अन्तर्यामी, संसार का कारणरूप तथा ईश्वर आदि के द्वारा व्यवहृत किया जाता है।

निकृष्ट जीव की उपाधि व्यष्टिरूप अज्ञान है, इसलिए उसमें स्थित

सत्त्वगुण रजस् तथा तमस् से पराभूत होने के कारण मलिन होता है, जिस प्रकार शीशे पर धूल आदि पड़ जाने पर प्रतिबिम्ब ग्रहण की शक्ति घट जाती है, उसी प्रकार सत्त्वगुण, रजस् और तमस् के द्वारा पराभूत कर मलिन कर देने पर उसमें चिदात्मा का सुव्यक्त प्रतिविम्ब प्रतिविम्बित नहीं होता है। यही जीव के अल्पज्ञत्व का हेतु है।

'तत्त्वमसि' महावाक्य में–जिसमें किसी भी दशा में अंश अंशीभाव आदि सम्बन्ध प्रायः नहीं उठते; वह निर्णय ब्रह्म अखण्डार्थ है, जो स्वगत सजातीय और विजातीय भेदशून्य होने के कारण माया तथा उसके कार्यों से सर्वथा सम्बन्ध रहित है, वह निर्गुणब्रह्म अखण्डार्थ है।

'आन्तरिक आत्मा पदों एवं उनके अर्थों में समानाधिकरण्य, विशेषणविशेष्यभाव तथा लक्ष्यलक्षणभाव सम्बन्ध है।'[८९] इस प्रकार 'तत्त्वमसि के द्वारा निर्गुण-परम्परा के अनुसार मल्लिनाथ कृष्ण को ब्रह्मसिद्ध करने का प्रयास करते हैं।

महाकवि माघ श्रीकृष्ण भगवान् के निर्गुण स्वरूप का प्रतिपादन करने के अनन्तर, अब प्रकृतोपयोगी सगुण स्वरूप का निरूपण (शिशु० १/३४-३९ में) करते हैं। इन छः श्लोकों में सगुण दृष्टि से उनकी ब्रह्मरूपता का वर्णन करते हैं। सगुणब्रह्म तो जगत् के समान माया विशिष्ट होने से मायिक सत्ता को धारण करता है।

'निवेशयामासिथ हेलयोद्धृतं
फणाभृतां छादनमेकमोकसः।
जगत्त्रयैकस्थपतिस्त्वमुच्चकै-
रहीश्वरस्तम्भशिरःसु भूतलम्॥' (शिशु०, १/३४)

में तीनों लोकों के एकमात्र स्वामी आप इस भूतलरूप आवरण को ऊपर उठा लिया और सर्पो के पाताललोक के आवरण के रूप में ऊँचे-ऊँचे शेषनाग के फणरूपी खम्भों पर स्थापित कर दिया।

पुराणों के अनुसार भगवान् ने वराहावतार धारणकर पृथ्वी को जल से ऊपर उठाकर पाताललोक के आवरण के रूप में शेषनाग के सहस्त्रों फणों पर स्थापित कर दिया।

महाकवि माघ प्रस्तुत पद्य में सगुण दृष्टि से कृष्ण का ईश्वरत्व सिद्ध करते

'अनन्यगुर्वास्तव केन केवलः
पुराणमूर्तेर्महिमावगम्यते।
मनुष्यजन्मापि सुरासुरान्गुणै-
र्भवान्भवच्छेदकरैः करोत्यधः॥' (शिशु० १/३५)

प्रस्तुत पद्य में माघ भगवान् कृष्ण की अपूर्व एवं अजेय महिमा को रेखाङ्कित करते हैं।

नारदजी कहते हैं कि हे भगवन्! आप आदिपुरुष हैं। आपका शरीर पुरातन है। वह सबसे अधिक गुरु है। उसके समान कोई दूसरा नहीं है। उस पुराण शरीर की महिमा को पूर्णरूप से कौन जान सकता है? अर्थात् उन्हें जानने में कोई समर्थ नहीं है। आप मनुष्य का शरीर धारणकर लेने पर भी भवजनित कष्टों को दूर करने वाले गुणों के द्वारा देवताओं और राक्षसों सभी को नीचा दिखा रहे हैं। यहाँ पर माघ मानव शरीर धारण करने पर भी उनकी अपूर्व महिमा का वर्णन करते हैं।

महाकवि माघ अधोलिखित पद्य में भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार लेने और उनके द्वारा पृथ्वी का भार हलका करने की ओर सङ्केत करते हैं–

'लघूकरिष्यन्नतिभारभङ्गुराम-
मूं किल त्वं त्रिदिवादवातरः।
उदूढलोकत्रितयेन साम्प्रतं
गुरुर्धरित्री क्रियतेतरां त्वया॥'[१०]

नारदजी कृष्ण से कहते हैं कि हे भगवन्! जब पृथ्वी दानवों के अत्याचार और अधर्म के भार से भङ्गुर हो रही थी, तब आप दानवों और अधर्म का विनाश कर पृथ्वी को उस भार से मुक्त कराने की इच्छा से पृथ्वी पर अवतरित हुए, परन्तु आपके उदर अथवा कुक्षि में तीनों लोक समाया हुआ है। इतना अधिक भारग्रहण कर पृथ्वी पर विद्यमान हैं। अतः आपके भार से पृथ्वी अत्यधिक भारवती एवं गौरवशालिनी हो रही है।

जब पृथ्वी पर अधर्मजनित अत्याचार का भार बढ़ जाता है, तब भगवान् स्वयं अवतरित होकर उसका भार कम करते हैं। जैसे कि गीता में कृष्ण ने स्वयं कहा है–

'यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥'

;वि माघ अधोलिखित पद्य में कृष्ण के अवतार के महत्त्व का से प्रतिपादन करते हैं–

'निजौजसोज्जासयितुं जगद्द्रुहा-
मुपाजिहीथा न महीतलं यदि।
समाहितैरप्यनिरूपितस्ततः
पदं दृशः स्याः कथमीश! मादृशाम्॥'[११]

नारदजी कृष्णजी से कहते हैं कि हे ईश! आप अगम्य हैं, अबोध्य हैं। आप जगदीश हैं, जगन्नियन्ता है। यदि आपने तेज से संसार से द्वेष करने वाले दुष्टों के विनाश के लिए पृथ्वी पर न अवतरित हुए होते, तो हम जैसे चर्मचक्षुओं (साधारण जनों) को अपका दर्शन नहीं हो सकता, क्योंकि आपका दर्शन समाहित चित्त वाले योगियों को भी दुर्लभ है, तो साधारण मनुष्यों की बात ही क्या? प्रस्तुत पद्य में माघ कृष्ण के ब्रह्मत्व का निरूपण करते हैं। योगियों के द्वारा अगम्य बताकर उनके महत्त्व को सिद्ध करते हैं।

माघ (शिशु० १/३८,३९) में कृष्ण द्वारा दुष्टों के विनाश का तथा (१/३९) में कंसादि राजाओं के संहार का उल्लेख करते हैं। वे कहते हैं कि राक्षसों का बध करना, आपके लिए प्रशंसा की बात नहीं है, क्योंकि आप स्वयं में इतने समर्थ हैं कि इस चराचर जगत् के अन्य प्राणी आप के सामने तुक्ष ही

महाकवि माघ अधोलिखित पद्य में **'तत्त्वमसि'** के द्वारा कृष्ण के अखण्डार्थ ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं। यद्यपि प्रस्तुत पद्य में प्रकाश और अन्धकार में समानाधिकरण्य की स्थिति कैसे एक हो सकती है? इसका उल्लेख करते हैं, तथापि अवान्तररूप में जीवात्मा और ब्रह्म की अभिन्नता ही **'तत्त्वमसि'** है, इस तथ्य की ओर सङ्केत करते हैं। यथा–

'अन्यदुच्छृङ्खलं सत्त्वमन्यच्छास्त्रनियन्त्रितम्।
सामानाधिकरण्यं हि तेजस्तिमिरयोः कुतः॥'[१२]

अद्वैतवेदान्त में जीवात्मा और ब्रह्म में प्रकाश और अन्धकार की भाँति अभेद सम्बन्ध हैं। तात्पर्य यह कि दो नहीं एक, अद्वैत है। **'आत्मानमेव निर्विशेष ब्रह्मसिद्धिः'**, अर्थात् आत्मा ही ब्रह्म है तथा ब्रह्म ही आत्मा है। प्रस्तुत पद्य में प्रकाश (ज्ञान) एवं अन्धकार को अज्ञान के रूप में समझना चाहिए। भाव यह है कि अज्ञान ही ज्ञान है और ज्ञान ही अज्ञान है। **'तत्त्वमसि श्वेतकेतो'** (छन्दो०

उप० ६/८/७) अर्थात् 'हे श्वेतकेतु! तुम वही हो'। ये सभी वाक्य आत्मा और ब्रह्म की अभिन्नता या एकता को प्रतिपादित करते हैं। इन्हें महावाक्य कहते हैं। प्रश्न यह है कि इन महावाक्यों से अभेद अर्थ कैसे सिद्ध होता है? आपाततः यह अर्थ तो नहीं निकलता। साधारण दृष्टि से जीव अल्पज्ञ, अनित्य, शान्त है और ब्रह्म सर्वज्ञ, नित्य और अनन्त हैं जीव कर्त्ता, भोक्ता, ज्ञाता है और ब्रह्म शुद्ध-बुद्ध-मुक्त है। जीव संसार में दुःख-सुख का अनुभव करता है, ब्रह्म पारमार्थिक है, केवल आनन्दरूप है फिर जीव और ब्रह्म एक (**जीवो ब्रह्मैव नापरः**) है, यह कैसे हो सकता है?' सामान्य दृष्टि से तो इस श्रुतिवाक्य में विरोध है। इस विरोध का परिहार कैसे'?

शब्द के अर्थ का ज्ञान दो प्रकार से होता है–अभिधा और लक्षणा से। शब्द की मुख्य वृत्ति अभिधा कहलाती है। इसे ही शक्ति कहते हैं। इस शक्ति का ज्ञान भी हमें व्याकरण कोष आदि से होता है। उदाहरणार्थ–गो एक शब्द या पद है। इससे गो-व्यक्ति नामक पदार्थ का ज्ञान होता है। दूसरे शब्दों में, गो-अर्थ, गो-शब्द का अभिधेयार्थ है। संक्षेप में यह शाब्दिक है, परन्तु सर्वत्र शब्द का शाब्दिक अर्थ ही ग्रहण नहीं होता। कहीं-कहीं शब्द का लाक्षणिक अर्थ ही ग्रहण किया जाता है। उदाहरणार्थ–हम कह सकते हैं कि व्यक्ति बिल्कुल गाय है। यहाँ गाय का अर्थ बिल्कुल सीधा है, अर्थात् वह व्यक्ति गाय के समान सीधा है, परन्तु सीधा होना गो शब्द की मुख्यवृत्ति नहीं, वरन् गौणवृत्ति है। अतः लक्षणा शब्द की गौणवृत्ति है। लक्षणा–जहत्, अजहत् और जहज्जहत् नाम से तीन प्रकार की होती है।

जहज्जहत्लक्षणा–जहत् और अजहत् दोनों हैं, अर्थात् इसमें कुछ त्याग भी करना है कुछ नहीं भी करना है। उदाहरणार्थ–'**सोऽयं देवदत्तः**' अर्थात् यह वही देवदत्त है जिसे पहले मैने कहीं देखा था। उसे ही यहाँ इस स्थान पर देख रहा हूँ। इस वाक्य में तो देवदत्त एक ही है, परन्तु पहले देखा गया देवदत्त किसी दूसरे देश तथा काल में था। अब वही देवदत्त इस समय इस स्थान पर दिखाई दे रहा है। इस वाक्य में हम स्थान और काल को भूल जाते हैं। तत्कालीन और एतत्कालीन इन दोनों में विशेषणों का त्याग करते हैं तथा विशेष्य देवदत्त, वाच्यार्थ ज्यों का त्यों रहने देते हैं।

अद्वैतवेदान्ती शङ्कराचार्य आदि का कहना है कि '**तत्त्वमसि**' आदि महावाक्यों का अर्थ जहज्जहत् लक्षणा से ही स्पष्ट होता है। इस वाक्य में 'तत्'

शब्द ब्रह्म के लिए है और 'त्व' शब्द जीव के लिए है। अतः इसका अर्थ है कि ब्रह्म या जीव दोनों अभिन्न हैं कैसे? जीव अल्पज्ञ है, अणु है और शान्त है। ब्रह्म सर्वज्ञ हैं, विभु है और अनन्त है। दोनों में व्यावहारिक दृष्टि से भेद है परन्तु पारमार्थिक दृष्टि से दोनों एक हैं अभिन्न हैं, अद्वैत हैं। पारमार्थिक दृष्टि से दोनों में शुद्ध चैतन्य है। इस प्रकार तत् ब्रह्म से सर्वज्ञ विभु आदि विशेषणों का त्याग (जहत्) करते हैं और त्वं (जीव) के अल्पज्ञ, अणु आदि विशेषणों का त्याग (जहत्) करते हैं तथा दोनों के विशेष्य 'शुद्ध चैतन्य' का त्याग नहीं (अजहत्) करते हैं। इस प्रकार जहज्जहत् लक्षणा से महावाक्य का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। इसका अर्थ है कि जीव और ब्रह्म दोनों अभिन्न हैं–**'जीवो ब्रह्मैव नापरः'**। जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध समानाधिकरण्य बतलाया गया अर्थात् दोनों का अधिकरण चैतन्य समान है। जिस प्रकार **'सोऽयं देवदत्त'** में समानाधिकरण्य सम्बन्ध है, उसी प्रकार **'तत्त्वमसि'** में है। जिस प्रकार हम तत्कालीन और एतत्कालीन विशेषणों का त्यागकर केवल विशेष्य देवदत्त को लेते हैं, उसी प्रकार तत् (ब्रह्म) और त्वम् (जीव) के सभी विशेषणों का त्याग कर केवल विशेष्य 'शुद्ध चैतन्य' को लेते हैं। आत्मा की यह अवस्थिति अज्ञान की निवृत्ति से ही सम्भव है। जब-तक अज्ञान का आवरण रहेगा, तब-तक आत्मा की स्थिति यह नहीं होगी। इसी कारण शङ्कराचार्य **'मिथ्याज्ञान निवृत्तिमात्रं मोक्षम्'** अर्थात् अज्ञान या मिथ्याज्ञान के विनाश को मोक्ष कहते हैं। मिथ्याज्ञान के विनाश से आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान हो जाता है। यह आत्मज्ञान सर्वात्मभाव है। सर्वब्रह्म है, अतः सर्वात्मभाव ब्रह्मज्ञान है। यही मोक्ष की अवस्था है। यह आत्मा और ब्रह्म की अभिन्नता का ज्ञान है। **'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भव'** और **'ब्रह्मैव हि मुक्तावस्था'** यह ब्रह्मभाव ब्रह्मात्मैकत्वज्ञान है। प्रश्न यह है कि इस सर्वात्मज्ञान या ब्रह्मभाव का साधन क्या है? शङ्कर के अनुसार एकमात्र उसका ज्ञान ही उसका साधन है। यह कर्मसाध्य नहीं वरन् ज्ञानसाध्य है। कर्म का फल तो अनित्य होता है, मोक्ष तो नित्य अवस्था है। अतः मोक्ष केवल ज्ञान का कार्य हो सकता है। यह ज्ञान केवल अज्ञान का विनाश है। अन्तः ज्ञान की प्राप्ति या अज्ञान के विनाश में अन्तर नहीं है।

महाकवि माघ अधोलिखित पद्य में हिरण्यमय अण्डे को द्विधा विदीर्ण कर ब्रह्मा ने संसार की रचना किस क्रम से की? इस तथ्य की ओर सङ्केत करते हैं। वेदान्तसार में **'आकाशाद्वायुर्वायोरग्निरग्नेरापः.......०।'** आदि क्रम से सृष्टि बतायी गयी है। यहाँ हिरण्यमय अण्डे से सृष्टि का निरूपण माघ ने किया है–

'द्रुतशातकुम्भनिभमंशुमतो
वपुरर्धमग्नवपुषः पयसि।
रुरुचे विरञ्चिनखभिन्न-
बृहदण्डकैकतरखण्डमिव॥'[९३]

अर्थात् पिघलाये गये सुवर्ण के समान (अरुणवर्ण) तथा (पश्चिम समुद्र के) जल में आधा डूबा हुआ सूर्यबिम्ब (सृष्ट्यारम्भ में) ब्रह्मा के नख से दो भागों में विदीर्ण विशाल संसार के (आश्रयभूत हिरण्मय) ब्रह्माण्ड के एक टुकड़े के समान शोभने लगा।

हिरण्मय अण्डे को द्विधा विदीर्णकर ब्रह्मा ने संसार की रचना जिस क्रम से की है। उसकी प्रक्रिया मनुस्मृति के प्रथम अध्याय के ८ से १९ श्लोकों में प्राप्त होती है।

महाकवि माघ प्रस्तुत पद्यों में ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं–

'ध्येयमेकपथे स्थितं धियः
स्तुत्यमुत्तममतीतवाक्पथम्।
आमनन्ति यमुपास्यमादराद्
दूरवर्तिनमतीव योगिनः॥'[९४]

माघ ध्यान के योग्य होने पर भी उस ब्रह्म को बुद्धिमार्ग के परे स्थित अज्ञान के अविषय मानते हैं, स्तुति के योग्य होने पर भी वाक्पथ को अतिक्रान्त अर्थात् वचन एवं मन के अविषय मानते हैं और आदर से उपासना के योग्य होने पर भी अत्यन्त दूरवर्ती अर्थात् अचिन्तनीय रूप वाले मानते हैं, अतएव हे युधिष्ठिर! तुम इन श्रीकृष्ण भगवान् को मानवमात्र मत जानों।

प्रशस्तटीकाकार मल्लिनाथ माघ के आशय को इस प्रकार स्पष्ट करते हैं–**'योगिनः नारदादयः एकमद्वितीयमुत्तमं सर्वोत्तमं यमेनं ध्येयं ध्यातव्यम्। एकार्थगोचरात्मधारणं ध्यानं तदर्हमित्यर्थः। तथापि धियो ज्ञानस्यापथेऽमार्गे स्थितम्। तदगोचरमित्यर्थः। पथोविभाषा' (५/४/७२) इति समासान्तः। 'अपथं नपुंसकम्' (२/४/३०) इति नपुंसकत्वम्। आमनन्ति। कथयन्ति। पाघ्रा (७/३/७८) इत्यादिना म्नाधातोर्मनादेशः। स्तुत्यं स्तोतुमर्हम्। तथापि अतीतो वाक्पथो येन तम्। अवाङ्मनसगोचर- मित्यर्थः। 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' इति श्रुतेः। आमनन्ति आदरास्थया उपास्यं सेव्यम्। तथापि अतीवात्यन्तम्। दूरवर्तिनमामनन्ति यमेनमचिन्त्यरूपमामनन्ति तमेनं मर्त्यमात्रं माऽवधारयेदिति पूर्वेणान्वयः।'**[९५]

इस प्रकार माघ के मन्तव्य में ब्रह्म का स्वरूप अचिन्तनीय, अवर्णनीय ज्ञान से अगम्य और अज्ञान का अविषय है।

'पद्मभूरिति सृजञ्जगद्रजः
सत्त्वमच्युत इति स्थितिं नयन्।
संहरन्हरः इति श्रितस्तम-
स्त्रैधमेष भजति त्रिभिर्गुणैः॥'[९६]

यही भगवान् श्रीकृष्ण रजोगुण का आश्रय लेकर जब सृष्टि की रचना करते हैं; तब ब्रह्मा कहे जाते हैं, सत्त्वगुण का आश्रय लेकर जब सृष्टि का पालन करते हैं; तब अच्युत अर्थात् विष्णु कहे जाते हैं एवं तमोगुण का आश्रय लेकर जब जगत् का संहार करते हैं; तब हर अर्थात् शिव कहे जाते हैं–इस प्रकार सत्त्व, रज और तमोगुण से युक्त यही अकेले इन तीनों गुणों के आश्रय से उक्त तीनों रूप धारण करते हैं।

'सर्ववेदिनमनादिमास्थितं
देहिनामनुजिघृक्षया वपुः।
क्लेशकर्मफलभोगवर्जितं
पुंविशेषममुमीश्वरं विदुः।'[९७]

इन सर्वज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण को तत्त्वदर्शी लोग जन्म और मृत्यु से रहित, प्राणियों पर अनुग्रह करने की इच्छा से मनुष्य रूप धारण करने वाले, पाँचों क्लेशों तथा पाप-पुण्य के फलों से रहित, ईश्वर एवं परमपुरुष बतलाते हैं।

महाकवि माघ अधोलिखित पद्य में सृष्टि-प्रक्रिया के सम्बन्ध में सङ्केत करते हैं–

'पूर्वमेष किल सृष्टवान-
पस्तासु वीर्यमनिवार्यमादधौ।
तच्च कारणमभूद्धिरणमयं
ब्रह्मणोऽसृजदसाविदं जगत्॥'[९८]

अर्थात् इन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण ने सर्वप्रथम जल की सृष्टि की, तत्पश्चात् उस जल में अपना अनिवार्य अर्थात् अमोघ वीर्य छोड़ा, फिर वही वीर्य हिरण्यमय अण्डे के रूप में अर्थात् ब्रह्माण्ड होकर ब्रह्मा की उत्पत्ति का कारण हुआ, जिससे उत्पन्न होकर ब्रह्मा ने इस जगत् की सृष्टि की।

मनुस्मृति में भी इस सम्पूर्ण चराचर जगत् के मूल कारण यही है, ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है–

'सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत्॥
तदण्डमभवद्धैमं सहस्त्रांशुसमप्रभम्
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः॥'[९९]

इस प्रकार महाकवि माघ ब्रह्मा की उत्पत्ति का कारण बताते हैं। अग्रिम श्लोक में वे फिर कहते हैं–

'श्रौतमार्गसुखगानकोविद-
ब्रह्मषट्चरणगर्भमुज्ज्वलम्।
श्रीमुखेन्दुसविधेऽपि शोभते
यस्य नाभिसरसीसरोरुहम्॥'[१००]

अर्थात् कर्णपथ को सुखप्रद (गुञ्जार, पक्षा०–वैदिकपथ को सुखप्रद सामादि वेदगान) के ज्ञाता ब्रह्मारूपी भ्रमर जिसके भीतर हैं ऐसा तथा निर्मल, जिन (श्रीकृष्ण भगवान्) के नाभिरूपी जलाशय में उत्पन्न कमल लक्ष्मीजी के मुखरूपी चन्द्रमा के समीप भी शोभता है। (इन्हीं की नाभि से उत्पन्न जिस कमल में गुञ्जार करते हुए भ्रमर के समान सामादिवेद चतुष्टय का गान करते हुए ब्रह्मा स्थिर रहते हैं, वह कमल लक्ष्मी के मुखचन्द्र के समीप शोभता है)।

'सत्यवृत्तमपि मायिनं जगद्-
वृद्धमप्युचितनिद्रमर्भकम्।
जन्म बिभ्रतमजं नवं बुधा
यं पुराणपुरुषं प्रचक्षते॥'[१०१]

पंडित लोग इनके बारे में कहते हैं कि वे सत्य आचरणयुक्त होने पर भी मायायुक्त हैं, जगत् में सबसे वृद्ध होने पर भी निद्रा में निमग्न बालमुकुन्द कहलाते हैं, जन्मधारण करने पर भी अजन्मा हैं और नित्यनूतन रहने पर भी पुराणपुरुष कहलाते हैं। इस प्रकार अचिन्तनीय महिमा वाले श्रीकृष्ण भगवान् के परस्पर विरुद्ध भी ये रूप आभासमात्र हैं, वास्तविक नहीं। महाकवि माघ भगवान् श्रीकृष्ण के अवतारों का भी सङ्केत करते हैं। माघ उनके वराहावतार, नृसिंहावतार, वामनावतार, मोहिनीरूप, दत्तात्रेयावतार, परशुरामावतार, रामचन्द्रावतार और श्रीकृष्णावतार को बताते हैं। यथा–

वराहावतार का वर्णन इस प्रकार है–

'स्कन्धधूननविसारिकेसर-
क्षिप्तसागरमहाप्लवामयम्।
उद्धृतामिव मुहूर्तमैक्षत
स्थूलनासिकवपुर्वसुन्धराम्॥'[१०२]

अधोलिखित पद्यों के द्वारा नृसिंहावतार का वर्णन करते हैं–

'दिव्यकेसरिवपुः सुरद्विषो
नैव लब्धशममायुधैरपि।
दुर्निवाररणकण्डु कोमलै-
र्वक्ष एष निरदारयन्नखैः॥'[१०३]

'वारिधेरिव कराग्रवीचिभि-
र्दिङ्मतङ्गजमुखान्यभिघ्नतः।
यस्य चारुनखशुक्तयः
स्फुरन्मौक्तिकप्रकरगर्भतां दधुः॥'[१०४]

माघ प्रस्तुत पद्यों में उनके वामनावतार का वर्णन करते हैं–

'दीप्तिनिर्जितविरोचनादयं
गां विरोचनसुतादभीप्सतः।
आत्मभूरवरजाखिलप्रजः
स्वर्पतेरवरजत्वमाययौ॥'[१०५]

'किं क्रमिष्यति किलैष वामनो
यावदित्थमहसन्न दानवाः।
तावदस्य न ममौ नभस्तले
लङ्घितार्कशशिमण्डलः क्रमः॥'[१०६]

'गच्छतापि गगनाग्रमुच्चकै-
र्यस्य भूधरगरीयसाङ्घ्रिणा।
क्रान्तकन्धर इवाबलो बलिः
स्वर्गभर्तुरगमत्सुबन्धताम्॥'[१०७]

'क्रामतोऽस्य ददृशुर्दिवौकसो
दूरमूरुमलिनीलमायतम्।
व्योम्नि दिव्यसरिदम्बुपद्धति-
स्पर्धयेव यमुनौघमुत्थितम्॥'[१०८]

महाकवि माघ भगवान् श्रीकृष्ण के मोहिनीरूप का वर्णन इस प्रकार करते हैं–

'यस्य किंचिदपकर्तुमक्षमः
कायनिग्रहगृहीतविग्रहः।
कान्तवक्रसदृशाकृतिं कृती
राहुरिन्दुमधुनापि बाधते॥'[१०९]

माघ निम्नलिखित पद्य में उनके दत्तात्रेय अवतार को रेखाङ्कित करते हैं–

'सम्प्रदायविगमादुपेयुषी-
रेष नाशमविनाशिविग्रहः।
स्मर्तुमप्रतिहतस्मृतिः श्रुती-
र्दत्त इत्यभवदत्रिगोत्रजः॥'[११०]

महाकवि माघ अधोलिखित श्लोक में परसुरामावतार का सङ्केत करते हैं–

'रेणुकातनयतामुपागतः
शातितप्रचुरपत्रसंहतिः।
लूनभूरिभुजशाखमुज्झित-
च्छायमर्जुनवनं व्यधादयम्॥'[१११]

माघ रामावतार का निरूपण करते हुए कहते हैं कि–

'एष दाशरथिभूयमेत्य च-
ध्वंसितोद्धतदशाननामपि।
राक्षसीमकृत रक्षितप्रज-
स्तेजसाधिकविभीषणां पुरीम्॥'[११२]

माघ कृष्णावतार का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से करते हैं–

'निष्प्रहन्तुममरेशविद्विषा-
मर्थितः स्वयमथ स्वयंभुवा।
सम्प्रति श्रयति सूनुतामयं
कश्यपस्य वसुदेवरूपिणः॥'[११३]

महाकवि माघ अधोलिखित पद्य द्वारा कृष्ण के ब्रह्मत्व को रेखाङ्कित करते

'रथ्याघोषैर्बृहणैर्वारणानामैक्यं
गच्छन्वाजिनां ह्रेषया च।
व्योमव्यापी सन्ततं दुन्दुभीना-
माव्यक्तोऽभूदीशितेव प्रणादः॥'[११४]

अर्थात् रथ समूह के शब्दों से, हाथियों के चिग्घाड़ने से, घोड़ों की हिनहिनाहट से, एकता को प्राप्त करता हुआ सर्वदा आकाशस्पर्शी युद्ध की भेरियों का महाघोष उस प्रकार अव्यक्त (यह रथ समूह का शब्द है, यह हाथी के चिग्घाड़ने का शब्द है–इत्यादि पृथक-पृथक नहीं ज्ञात होने वाला हो गया, जिस प्रकार सर्वतो व्याप्त एवं अभेद को प्राप्त होने वाला ब्रह्मरूप महाप्रणाद अव्यक्त– 'यह जीव है', 'यह ईश्वर है' इस प्रकार उपाधि के नाश होने से भेदशून्य हो जाता है।

महाकवि माघ प्रस्तुत पद्य में भी भगवान् श्रीकृष्ण के निर्गुण स्वरूप का वर्णन प्रकारान्तर रूप से करते हैं–

'सकलैर्वपुः सकलदोषसमुदितमिदं गुणैस्तव।
त्यक्तमपगुण गुणत्रितयत्यजनप्रयासमुपयासि किं मुधा॥'[११५]

शिशुपाल भगवान् श्रीकृष्ण के 'निर्गुण अर्थात् गुणत्रयातीत' होने का प्रकारान्तर से समर्थन करता हुआ कहता है कि हे अपगुण अर्थात् दुर्गुणों से युक्त कृष्ण! तुम्हारा यह शरीर सम्पूर्ण दोषों से व्याप्त तथा सम्पूर्ण गुणों से हीन है, तब तुम तीनों गुणों (सत्त्व, रज और तम, पक्षा० मात्र तीन गुण) को छोड़ने का व्यर्थ प्रयास क्यों करते हो? जहाँ सभी गुणों की हीनता है, वहाँ केवल तीन गुणों से हीन होने की चिन्ता करना व्यर्थ है, क्योंकि सम्पूर्ण गुणों के अन्तर्गत ही तीन गुण होते हैं। यहाँ पर शिशुपाल सत्त्वादि गुणत्रय से परे रहने के कारण 'गुणत्रयातीत या निर्गुण' कहलाने को प्रकारान्तर से सब गुणों से हीन होना कहकर श्रीकृष्ण भगवान् की निन्दा करता है।

महाकवि माघ अधोलिखित पद्य में भगवान् श्रीकृष्ण के विराट स्वरूप का सङ्केत करते हैं–

'चतुरम्बुधिगर्भधीरकुक्षेर्वपुषः
सन्धिषु लीनसर्वसिन्धोः।
उदगुः सलिलात्मनस्त्रिधाम्नो
जलवाहावलयः शिरोरुहेभ्यः॥'[११६]

जिनकी गम्भीर कुक्षि में चारों समुद्र समाये हुए हैं, और जिनके शरीर की संधियों में समस्त नदियाँ व्याप्त हैं, उन्हीं जलात्मक (भूर्भुवः स्वः, या सत्त्व, रज और तम रूप) तीन धामों वाले अर्थात् लोकत्रयव्याप्त भगवान् श्रीकृष्ण के केशों से मेघों की पंक्तियाँ उत्पन्न होकर बाहर निकलने लगीं।

माघ के उक्त आशय से सम्बन्धित यही तथ्य अन्यत्र भी रेखाङ्कित हैं–

'यस्य केशेषु जीमूता नद्यः सर्वाङ्गसन्धिषु।
कुक्षौ समुद्राश्चत्वारस्तस्मै तोयात्मने नमः॥'[११७]

महाकवि माघ निम्नलिखित पद्य में मोक्ष का निरूपण करते हैं–

'श्रिया जुष्टं दिव्यैः सपटहरवैरन्वितं पुष्पवर्षै-
र्वपुष्टश्चैद्यस्य क्षणमृषिगणैः स्तूयमानं निरीय।
प्रकाशेनाकाशे दिनकरकरान्विक्षिपद्विस्मिताक्षै-
र्नरेन्द्रैरौपेन्द्रं वपुरथ विशद्धाम वीक्षांबभूवे॥'[११८]

शिशुपाल का सिर कटकर जब धरती पर गिरा, तब राजाओं ने अपने विस्मित नेत्रों से देखा कि क्षणभर के लिए आकाशगामी देवताओं आदि के नगाड़ों की ध्वनियों तथा पुष्प-वर्षा के बीच एवं ऋषियों की स्तुति के साथ-साथ अपने अमन्द प्रकाश से आकाश में सूर्य की किरणों को मन्द करता हुआ एक परमदीप्तिमान तेज शिशुपाल के शरीर से निकलकर भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर में प्रविष्ट हो गया।

मूर्धन्य टीकाकार मल्लिनाथ अपनी टीका में उक्त आशय के सन्दर्भ का इस प्रकार निरूपण करते हैं–

अत्र भगवान् व्यासः–

'ततश्चेदिपतेर्देहात्तेजोऽग्रयं ददृशे नृपैः।
उत्पपात यदा राजन् तदा तेजो विवेश च॥
दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद् भासस्तस्य महात्मनः॥'[११९]

एतेन भगवद्वपुषोऽपि तदासक्तवचनसा (?) तारक इत्यनुसन्धेयभ्। यदाह नारदः–

'कामाद्गोप्यो भयात्कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः।
सम्बन्धाद् वृष्णयः स्नेहाद् यूयं भक्त्या वयं प्रभो॥'

इस प्रकार सहस्रों·सूर्य रश्मियों की भाँति प्रतीत होने वाला शिशुपाल का तेज, भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर में प्रवेश करते हुए राजाओं द्वारा प्रत्यक्ष अलौकिक आश्चर्य को उत्पन्न करने वाला दिखाई दिया।

बौद्ध एवं जैन-दर्शन

बौद्धदर्शन

महाकवि माघ यद्यपि वैष्णवधर्म के पक्के अनुयायी हैं, तथापि वे अन्य धर्मो में भी अपनी निष्ठा व्यक्त की है, जो कि उनकी साम्प्रदायिक उदारता के वैशिष्ट्य का प्रमाण कहा जा सकता है। एक ओर तो सनातनधर्म में प्रतिष्ठित यज्ञ, हवन आदि की चर्चा करते हैं, तो दूसरी ओर बौद्धधर्म के अमूल्य सन्देशों को सहृदयों तक पहुँचाना चाहते हैं।

महाकवि माघ अधोलिखित पद्य में बौद्धों के पञ्चस्कन्धों का सङ्केत करते

'सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्धपञ्चकम्।
सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम्।।'[१२०]

माघ यहाँ पर यद्यपि राजनीति की चर्चा करते हैं, तथापि अवान्तर रूप में बौद्धों के पञ्चस्कन्धों की ओर सङ्केत करते हैं। वे कहते हैं कि जिस प्रकार बौद्धों के मत में इस सम्पूर्ण शरीर में पाँच स्कन्धों के अतिरिक्त कोई अन्य आत्मा नहीं है, उसी प्रकार से राजाओं के समस्त कार्य रूपी शरीर में पाँच अङ्गों वाले मंत्र के अतिरिक्त अन्य कोई दूसरा मंत्र नहीं है।

तात्पर्य यह है कि बौद्ध शरीर में आत्मा नाम की कोई वस्तु स्वीकार नहीं करते हैं। वे शरीर को पाँच स्कन्धों से युक्त मानते हैं–रूपस्कन्ध, वेदनास्कन्ध, विज्ञानस्कन्ध, संज्ञास्कन्ध और संस्कारस्कन्ध। इस चराचर जगत् में दृश्यमान सभी वस्तुओं का आकार रूपस्कन्ध है। सुख-दुःखों का अनुभव अथवा रूप का ज्ञान वेदनास्कन्ध है। धाराप्रवाह रूप में होने वाला आश्रयज्ञान अथवा अध्ययन की हुई वस्तु का अविस्मरण विज्ञानस्कन्ध है। चैतन्य तथा वस्तु समूह का नाम संज्ञास्कन्ध है और चित्त पर पड़ी हुई छाया संस्कारस्कन्ध है। इन पाँचों स्कन्धों के अतिरिक्त शरीर में आत्मा नाम की कोई वस्तु बौद्धों के लिए नहीं है, किन्तु उक्त स्कन्धपञ्चक से परिवर्तन होता हुआ ज्ञानसन्तान ही आत्मा है।

महाकवि माघ प्रस्तुत पद्य में 'बोधिसत्त्व' की बात करते हैं–

'इति तत्तदा विकृतरूप-
मभजत्तदविभिन्नचेतसम्।
मारबलमिव भयङ्करतां
हरिबोधिसत्त्वमभि राजमण्डलम्।।'[१२१]

इस प्रकार उस अवसर पर (१५/४८-५७) क्रोध से भीषण आकृति वाले वे (शिशुपाल पक्षीय) राजा लोग कामदेव की सेना की भाँति अविकृतचित्त भगवान् श्रीकृष्णरूपी बोधिसत्त्व के सम्मुख अत्यन्त क्रोधित हो गये।

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार महात्मा 'बुद्धदेव' की समाधि को भङ्ग करने के लिए प्रयत्नशील कामदेव की सेना भयङ्कर हो गई थी और उसे बुद्धदेव ने असफल अर्थात् नष्ट कर दिया, उसी प्रकार शिशुपालोक्त निन्दावचन सुनने पर भी विकार रहित श्रीकृष्ण भगवान् के प्रति वह शिशुपालपक्षीय विकारयुक्त राजसमूह भयङ्कर हो गया, और श्रीकृष्ण भगवान् भी 'बुद्धदेव' के समान ही इस राजसमूह को नष्ट कर डालेंगे, यह सूचित किया गया है।

जैन-धर्म

साधारणतः विष्णु को देवता मानने वाले को वैष्णव, शिव को शैव और शक्ति को मानने वाले को शाक्त कहते हैं, उसी प्रकार 'जिन' को देवता मानने वाले को जैन कहते हैं तथा उनके धर्म को जैनधर्म कहते हैं। 'जिन' शब्द 'जि' धातु से निष्पन्न होता है जिसका शाब्दिक अर्थ जीतने वाला' अर्थात् सभी प्रकार के विकारों पर विजय प्राप्त करने वाले को 'जिन' कहते हैं। जिनों के द्वारा उपदेश किये गये धर्म को जैनधर्म कहते हैं। 'जिन' लोग स्वभावसिद्ध, जन्मसिद्ध, शुद्ध, बुद्ध भगवान् नहीं होते, वरन् साधारण प्राणियों के समान जन्म ग्रहण कर काम, क्रोधादि विकारों पर विजय प्राप्तकर परमात्मा बन जाते हैं, अर्थात् ईश्वरत्व को प्राप्त होते हैं। ऐसे वीतराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशी ही 'जिन' है तथा उनके द्वारा दिया गया उपदेश जैनधर्म है।[१२२]

महाकवि माघ अधोलिखित पद्य में जिन, शब्द को रेखाङ्कित करते हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि उनको जैनधर्म के बारे में भी जानकारी थी, इसका प्रमाण द्रष्टव्य है–

'भीमास्त्रराजिनस्तस्य बलस्य ध्वजराजिनः।
कृतघोराजिनश्चक्रे भुवः सरुधिरा जिनः॥'[१२३]

'जिन' अर्थात् महावीरस्वामी का अवतार धारण करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने विपक्षियों की उस सेना की, जो भयङ्कर अस्त्र समूहों से सुसज्जित, ध्वजा पताकाओं से सुशोभित एवं भयङ्कर युद्ध कर चुकी थी, भूमि को रक्त से प्लावित कर दिया।

यहाँ पर प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ **'जिनो हरिः अवतारान्तरनाम्ना**

व्यपदेशः' इस प्रकार व्याख्या करते है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् महावीर श्रीकृष्ण के ही अवतार हैं।

माघ की वैदिकदर्शन में गहरी आस्था तथा वर्णनीय विषय की दृष्टि से आने वाले प्रसङ्गों के कारण वैदिकदर्शनों के प्रतिविम्बन की अधिकतम संभावना थी, तथापि जैन और बौद्धदर्शन की चर्चा माघ द्वारा की गई है यह उनके दार्शनिक दृष्टिकोण की व्यापकता का परिणम है। जैन और बौद्ध का सङ्केत अत्यल्प होने पर भी महत्त्वपूर्ण है।

सन्दर्भ :

१. शिशु०, १/३३
२. 'तस्माच्च विपर्यात्सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरुषस्य।
कैवल्यं माध्यस्थ्यं द्रष्टृत्वमकर्तृभावश्च।।' (सां०का०, १९)
३. 'त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि।
व्यक्तं तथा प्रधानं, तद्विपरीतस्तथा च पुमान्।।' (सां०का०, ११)
४. शिशु०, २/५९
५. शिशु० टीका, २/५९
६. सां०का०, २०
७. शिशु०, ४/५५
८. शिशु० टीका, ५५
९. सां०का० १५, १३, १२, २०, १७, १८, १२, २२, ३, ६२, ५९, ६१, ४४, ६४, ६२, ५, ६६, ६७, ६८ द्रष्टव्य।
१०. शिशु०, ९/१४
११. 'इत्येष प्रकृतिकृतौ महदादिविशेषभूतपर्यन्तः।
प्रतिपुरुषविमोक्षार्थं स्वार्थ इव परार्थ आरम्भः।।' (सा०का० ५६)
१२. शिशु०, १४/१९
१३. शिशु०, १४/६१
१४. शिशु०, १२/५५
१५. श्रीमद्०भ०गी०, २/२२
१६. श्रीमद्०भ०गी०, २/२०
१७. शिशु०, १३/६
१८. श्रीमद्०भ०गी० २/६३

१९. शिशु०, १३/२८
२०. शिशु०, १५/४–(प्रक्षिप्त श्लोक)
२१. शिशु०, १/३३
२२. शिशु०, १/३१
२३. शिशु०, ४/५५
२४. शिशु०, ४/५५
२५. यो०सू०, २/२९
२६. यो०सू०, १/३३
२७. यो०सू०, २/३
२८. शिशु०, १३/२३
२९. यो०सू०, २/३०
३०. यो०सू०, २/३२
३१. यो०सू०, २/४६
३२. यो०सू०, २/४९
३३. यो०सू०, २/५४
३४. यो०सू०, ३/१
३५. यो०सू०, ३/२
३६. यो०सू०, ३/३
३७. शिशु०,. १४/६२
३८. यो०सू०,
३९. शिशु०, १४/६०
४०. शिशु०, १४/६३
४१. शिशु०, १४/६४
४२. न्या०भा०, १/१/१
४३. 'प्रत्यक्षागमाश्रितं अनुमानं सा अन्वीक्षा अथवा प्रत्यक्षागमाभ्यामीक्षितस्य अन्वीक्षणं अन्वीक्षा तया प्रवर्तते इति आन्वीक्षिकी न्यायविद्या न्यायशास्त्रम्।' (न्या०भा०, १/१/१)
४४. शिशु०, १/३
४५. शिशु०, १/११
४६. शिशु०, १/२३
४७. शिशु०, १/२८

४८. शिशु०. १/२६
४९. शिशु०. २/४७
५०. शिशु०. २/९१
५१. शिशु०. २०/११
५२. शिशु०, २०/१८
५३. शिशु०, २०/२३
५४. शिशु०, ५/३८
५५. शिशु०. १४/२६
५६. शिशु १४/२७
५७. शिशु०, १४/२९
५८. शिशु०, १४/३१
५९. शिशु०, १४/३५
६०. शिशु०, १४/३८
६१. शिशु०, १४/४६
६२. शिशु०, १४/४७
६३. शिशु०, १४/४९
६४. शिशु०, १४/५९
६५. शिशु०, १४/८८
६६. शिशु०, १४/४६
६७. शिशु०, १४/४७
६८. शिशु०, १४/५५
६९. शिशु०, १४/५६
७०. शिशु०, १४/५७
७१. शिशु०, १४/२०
७२. शिशु०, १४/२१
७३. पा०शि०, ५४-५५
७४. शिशु०, १४/२२
७५. शिशु०, १४/२३
७६. शिशु०, १४/२४
७७. शिशु०, ११/४१
७८. शिशु०, ११/४२

७९. शिशु०, १४/३७
८०. शिशु०, १४/३२
८१. शिशु०, १४/३४
८२. शिशु०, १४/२०
८३. वेदा०सा०, ३, पृ० ५०
८४. शिशु०, १/२३
८५. शिशु०, १/२७
८६. शिशु०, १/३१
८७. शिशु०, १/३२
८८. शिशु०, १/३३
८९. 'समानाधिकरणञ्च विशेषणविशेष्यता।
लक्ष्यलक्षण सम्बन्धः पदार्थ प्रत्यगात्मना।।' (वेदा०सा०, १५०)
९०. शिशु०, १/३६
९१. शिशु०, १/३७
९२. शिशु०, २/६२
९३. शिशु०, ९/९
९४. शिशु०, १४/६०
९५. शिशु०टी०, १४/६०
९६. शिशु०, १४/६१
९७. शिशु०, १४/६२
९८. शिशु०, १४/६७
९९. मनु०, १/८-९
१००. शिशु०, १४/६९
१०१. शिशु०, १४/७०
१०२. शिशु०, १४/७१
१०३. शिशु०, १४/७२
१०४. शिशु०, १४/७३
१०५. शिशु०, १४/७४
१०६. शिशु०, १४/७५

१०७. शिशु०, १४/७६
१०८. शिशु०, १४/७७
१०९. शिशु०, १४/७८
११०. शिशु०, १४/७९
१११. शिशु०, १४/८०
११२. शिशु०, १४/८१
११३. शिशु०, १४/८२
११४. शिशु०, १८/३
११५. शिशु०, १५/३२
११६. शिशु०, २०/६६
११७. महा०शा०प०, ४७/६०
११८. शिशु०, २०/७९
११९. महा०श०प०, (अ०-४५)
१२०. शिशु०, २/२८
१२१. शिशु०, १५/५८
१२२. भा०द०का०हि०वि०मा०लं०वा०-५, पृष्ठ १४९, षष्ठ संस्करण १९९०
१२३. शिशु०, १९/११२

पञ्चम अध्याय

काव्यशास्त्रीयतत्त्व

आचार्य भामह ने काव्यालङ्कार में लिखा है–

'अवलोक्य मतानि सत्कवीनामगम्य स्वधिया च काव्यलक्ष्म।
सुजनावगमान भामहेन रचितं रक्रिलगोमिसूनुनेदम्।'[1]

इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि काव्यशास्त्री अपने काव्यतत्त्वों के निरूपण में कवियों के मतों का भी अवलोकन करते रहे हैं। भामह ने वाल्मीकि, व्यास और कालिदास आदि कवियों के मतों को अपना आधार बनाया है।[2] महाकवि माघ भामह के उत्तरवर्ती हैं, तथापि उनका कथन इस दिशा में अन्वेषण की प्रेरणा देता है कि काव्यों में भी यथास्थल काव्यशास्त्रीयतत्त्व खोजे जा सकते हैं। इस दृष्टि से यदि हम माघकाव्य का अवलोकन करते हैं तो अनेक काव्यशास्त्रीयतत्त्व उसमें अनुस्यूत दिखाई देते हैं। यहाँ काव्यप्रयोजन, काव्यहेतु, काव्यलक्षण, रचनाप्रक्रिया, अलङ्कार और अलङ्कार्य, शब्द, अर्थ, एवं शब्दशक्तियाँ और नाट्यशास्त्रीयतत्त्व आदि की दृष्टि से शिशुपालवध में सङ्केतित सन्दर्भों का सङ्कलन किया गया है।

काव्यशास्त्रीय सन्दर्भों का निरूपण महाकवि माघ के शिशुपालवध के आधार पर अधोलिखित प्रकार से किया जा सकता है–

काव्य-प्रयोजन

कोई भी कार्य निष्प्रयोजन नहीं किया जाता है, चाहे वह कार्य सोद्देश्य हो अथवा निरुद्देश्य। क्योंकि प्रत्येक कार्य का कुछ न कुछ प्रयोजन होता है। मनुष्य किसी भी कार्य को करने के लिए किसी विशेष प्रयोजन या उद्देश्य से प्रवृत्त होता है। यहाँ तक कि मूर्ख व्यक्ति भी किसी न किसी उद्देश्य से ही किसी कार्य में संलग्न होता है। क्योंकि निष्प्रयोजन कार्यों में किसी की प्रवृत्ति नहीं होती है। निष्काम कार्य भी प्रयोजनशून्य नहीं होता। निष्काम का तात्पर्य–न तो यह है कि उसके फल की कामना ही न की जाये और न तो फलशून्य को ही निष्काम

कहा जा सकता है– **'तत्ततफलेहाराहित्यं निष्कामत्वम्'** से यह सिद्ध हो जाता है कि किसी भी कार्य का सप्रयोजन होना अनादिकाल से चला आ रहा है।

'ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत्' अर्थात् स्वर्ग की कामना वाले को ज्योतिष्टोमयज्ञ करना चाहिए। यदि कोई निष्कामभाव से ज्योतिष्टोमयाग करता है, तो उसका तात्पर्य यही हुआ कि वह स्वर्ग की कामना नहीं करता, ऐसा नहीं। क्योंकि याग से अपने समय पर फल तो अवश्य प्राप्त हो ही जाता है। चाहे वह स्वर्गरूप हो या आत्मकल्याणरूप।

श्रीमद्भगवद्गीता में– **'योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गंत्यक्त्वाऽत्मशुद्धये'** अर्थात् योगीजन भी आत्मशुद्धि के लिए कर्म करते हैं।

'विहायकामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥'

आदि उद्धरणों के द्वारा भी प्रयोजन की सिद्धि हो जाती है।

इसी प्रकार काव्यरूपी कार्य का भी कोई न कोई प्रयोजन होता है। बिना प्रयोजन के कवि एवं पाठक दोनों की इसमें प्रवृत्ति नहीं होगी। **'प्रयोजनमनुदिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते।'** और **'सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणोवाऽपि कस्यचित्। यावत् प्रयोजनं नोक्तं नावत्तत्केन गृह्यते॥'**

काव्यप्रयोजन के सम्बन्ध में आदि आचार्य भरतमुनि से लेकर वर्तमान समय तक के काव्यशास्त्रियों ने अपने-अपने विचार व्यक्त किए हैं। आचार्यों ने अनेक प्रयोजनों का निर्वचन किया है। काव्याचार्यों ने एक या अनेक प्रयोजनों को लक्ष्य करके काव्य की रचना की है। कई बार तो कवियों ने किसी विशेष प्रयोजन के उद्देश्य से काव्य की रचना की, किन्तु उन्हें अन्य फल स्वतः प्राप्त हो गये हैं।

इस प्रकार प्रायः सभी आचार्यों ने अपनी काव्यशास्त्रीय कृति में काव्यप्रयोजन बतलाया है। आचार्यों के प्रयोजननिरूपण में काव्यस्वरूप की अवधारणा भी अवान्तररूप से व्यक्त हो गई है। आचार्य मम्मट की काव्यप्रयोजन की कारिका 'काव्यं यशसे' (१/२) के 'सद्यः परनिर्वृतये' की वृत्ति इस तथ्य को उद्धरित करती है।

भामह ने काव्य-प्रयोजन की अनेक कारिकाएँ लिखी हैं, किन्तु उनकी सुप्रसिद्ध कारिका अधोलिखित हैं–

'धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्यनिवन्धनम्।'[३]

अर्थात् उत्तम काव्य की रचना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप चारों

पुरुषार्थों को तथा समस्त कलाओं में निपुणता को और प्रीति (आनन्द) तथा कीर्ति को उत्पन्न करती है। उनके अनुसार चतुर्वर्गफलप्राप्ति, सफलज्ञान, कीर्ति और प्रीति ये काव्य के प्रयोजन हैं। यहाँ प्रीति का अर्थ आनन्द है।

इस कथन के आलोक से यदि हम माघकाव्य का अवलोकन करते हैं; तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप चारों पुरुषार्थ तथा कलावैचक्षण्य, कीर्ति और प्रीति (आनन्दानुभूति) ये सभी प्रयोजन अवान्तररूप में प्राप्त होते हैं।

महाकवि माघ के काव्यप्रयोजन के सन्दर्भ में उनके महाकाव्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि उनमें महती यशोलिप्सा थी। कविवंशवर्णन के अन्तिम पद्य से यह बात स्पष्ट है–

'श्रीशब्दरम्यकृतसर्गसमाप्तिलक्ष्म
लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारु।
तस्यात्मजः सुकविकीर्तिदुराशयादः
काव्यं व्यधत्त शिशुपालवधाभिधानम्॥'[४]

कीर्ति–प्रस्तुत पद्य में महाकवि माघ की यशोलिप्सा का सङ्केत मिलता है। हालाँ कि उन्होंने अपनी लघुता का प्रदर्शन किया है, क्योंकि श्रेष्ठ कवियों की कीर्ति पाने की दुराशा से माघकाव्य की रचना की। तात्पर्य यह है कि महाकवि माघ कीर्ति चाहते थे। महाकवि कालिदास ने भी अपनी लघुता व्यक्त की है–

'मन्दः कवियशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः॥'[५]

कल्याण–पद्य में प्रयुक्त 'श्रीशब्द' मङ्गलवाचक है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि महाकवि माघ ने काव्य की रचना कल्याण के लिए की है। अधोलिखित श्लोक से और भी स्पष्ट हो जाता है। श्रेष्ठ वाणी का प्रयोजन कल्याण है–

'विलोकनेनैव तवामुना मुने
कृतः कृतार्थोऽस्मि निबर्हितांहसा।
तथापि शुश्रूषुरहं गरीयसी-
र्गिरोऽथवा श्रेयसि केन तृप्यते॥'[६]

'श्रेयसि विषये-केन तृप्यते?' अर्थात् मङ्गल के विषय में कौन सन्तुष्ट होता है? अर्थात् कोई नहीं। वस्तुतः वाणी ही तो काव्य है। यह निर्देश निर्विवादरूप से काव्य के एक हेतु कल्याण के रूप में ग्रहण किया जा सकता है।

सद्य:परनिवृत्ति–'कीर्तनमात्रचारु' का आशय 'वर्णनमात्रेण चारु मनोज्ञम्' अर्थात् जो काव्य वर्णन मात्र से सुन्दर (अलौकिक) हो। तात्पर्य यह कि जिस काव्य के दर्शन या श्रवण से अव्यवहितोत्तरकाल में पराशान्ति प्राप्त होती है। काव्य के पठन-पाठन से पाठक को रसास्वादन होता है और वह एक अलौकिक आनन्द का अनुभव करने लगता है। उस वक्त उसे किसी अन्य वस्तु का ज्ञान नहीं रहता। यह आनन्द ही 'सकलप्रयोजनमौलिभूत' है। इस अलौकिक आनन्द की चर्वणा तो केवल काव्य के द्वारा ही सम्भव है, क्योंकि वेदादि के द्वारा रसचर्वणा नहीं हो सकती। ये चतुर्वर्ग की प्राप्ति भले ही करा दें, किन्तु ब्रह्मानन्दसहोदर आनन्दानुभूति नहीं करा सकते। वस्तुत: सभी प्रयोजनों में श्रेष्ठ 'सद्य: परनिवृत्ति' की पुष्टि भी उक्त पद्य से हो जाती है।

प्रीति–महाकवि माघ के प्रस्तुत पद्य में प्रीति शब्द आया है। यहाँ पर भी प्रीति का अर्थ प्रेम नहीं आनन्द है–

'दिदृक्षमाणाः प्रतिरथ्यमीयु-
र्मुरारिमारादनघं जनौघाः।
अनेकशः संस्तुतमप्यनल्पा
नवं नवं प्रीतिरहो करोति॥'[७]

श्रीकृष्ण भगवान् सेना के सहित युधिष्ठिर के यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए जब इन्द्रपुर के लिए प्रस्थान करते हैं, तब श्रीकृष्ण को देखने के इच्छुक जनसमूह गलियों से समीप आ जाता है। अत्यधिक प्रेम अनेक बार परिचित को भी नवीन बना देता है। अहो आश्चर्य है! काव्य में भी प्राय: यही स्थिति होती है।

यहाँ पर कवि की पैनी दृष्टि रीति, गुण और अलङ्कार आदि काव्यसम्बन्धी सद्‌गुणों से रमणीयकाव्य की ओर अवान्तररूप से सङ्केत करती है। जिस प्रकार से सद्‌गुणों से रमणीयकाव्य के अनेक बार पढ़ने से उसमें आनन्दानुभूति के समय प्रतिक्षण जो नवता दिखाई देती है, वही नवता भगवान् में दिखाई दे रहा था। ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्ववर्ती रमणीयता को माघ ने नवता प्रदान करने के लिए काव्य की रचना की। 'A things of beauty is joy for ever'. कीट्स का यह वक्तव्य माघ के समर्थन में है।

कलावैचक्षण्य (व्यवहारज्ञान)–महाकवि माघ के निम्नलिखित श्लोक उनके व्यवहारज्ञान के परिचायक हैं–

'बह्वपि स्वेच्छया कामं प्रकीर्णमभिधीयते।
अनुज्झितार्थसम्बन्धः प्रबन्धो दुरुदाहरः॥'[८]

अर्थात् अपनी इच्छानुसार नीतिशास्त्रविरुद्ध असङ्गत वचन बहुत कहा जा सकता है, किन्तु कार्यसङ्गति को नहीं छोड़ने वाला वचन दुःख से कहा जा सकता है। मल्लिनाथ ने अपनी टीका में लिखा है–'**रामेण तु सङ्गतमेवोक्तमिति स्तुतिः, असङ्गतमेवोक्तमिति निन्दा च गम्यते**' से व्यवहारज्ञान का सङ्केत मिलता है। ध्यातव्य है कि यहाँ प्रबन्धशब्द कण्ठतः उपात्त है।

'विशेषविदुषः शास्त्रं यत्तवोद्ग्राह्यते पुरः।
हेतुः परिचयस्थैर्ये वक्तुर्गुणनिकैव सा॥'[९]

प्रस्तुत पद्य में उद्धवजी अपनी लघुता प्रकट करते हुए श्रीकृष्ण भगवान् की स्तुतिकर उन्हें अपने अनुकूल करते हुए अपने सिद्धान्त को बतलाते हैं– विशेषज्ञ या विशिष्ट विद्वान् आपके सामने, जो शास्त्र उपस्थित किया जाता है अर्थात् अपने वचन को शास्त्र का आधार बतलाकर शास्त्रज्ञाता सूचित किया जाता है, वह वक्ता अर्थात् मेरी गुणनिका (पठितचर अर्थात् पूर्वपठितशास्त्र की उद्धरणी करना-पहले पढ़े हुए शास्त्र को पुनः कहना। अभ्यास की दृढ़ता में कारण है अर्थात् शास्त्रविस्मरण न हो जाय उसके लिए है। यहाँ पर शास्त्रों का अध्ययन व्यवहारज्ञान की ओर सङ्केत कर रहा है।

'आरम्भन्तेऽल्पमेवाज्ञाः कामं व्यग्रा भवन्ति च।
महारम्भाः कृतधियस्तिष्ठन्ति च निराकुलाः॥'[१०]

अर्थात् मूर्ख व्यक्ति छोटा-सा कार्य आरम्भ करते हैं तथा अत्यन्त व्याकुल हो जाते हैं और इसके विपरीत कुशल बुद्धिवाले बड़े-बड़े कार्य आरम्भ करते हैं तथा निराकुल रहते हैं। अतएव पुरुष को बुद्धिमान होना परमावश्यक है।

भाव यह कि काव्य के अध्ययन से व्यवहारज्ञान होता है। व्यवहारज्ञान के द्वारा ही सामाजिक कार्यों में निपुणता प्राप्त होती है। पुराण, इतिहासादि तो व्यवहारज्ञान के कोष हैं। भाई का भाई के साथ व्यवहार, पिता का पुत्र के लिए महान् उत्सर्ग, पुत्र का पिता से यह कहना–**त्वामहं सत्यमिच्छामि नानृतं पुरुषर्षभः**' यह सब रामायण की ही देन है। इस प्रकार काव्य के अनुशीलन से हम किसी युग विशेष के लोगों का आचार-व्यवहार भलीभाँति जान सकते हैं। व्यवहारज्ञान के द्वारा ही समाज में अपना स्थान बनाया जा सकता है। इसलिए व्यवहारज्ञान के लिए शास्त्रों का अध्ययन आवश्यक है।

भामह 'धर्मार्थकाम -----------०।' के द्वारा पुरुषार्थचतुष्ट्य में सम्मिलित किया है। महाकवि माघ भी इस तथ्य को रेखाङ्कित करते हैं। अधोलिखित पद्य धर्म की दृष्टि से द्रष्टव्य है–

'सप्ततन्तुमधिगन्तुमिच्छतः
कुर्वनुग्रहमनुज्ञया मम।
मूलतामुपगते प्रभो त्वयि
प्रापि धर्ममयवृक्षता मया॥'[११]

अर्थात् हे भगवन्! मैं यज्ञ करना चाहता हूँ। अतः उसके लिए आप अनुज्ञा प्रदान करें। मूल में आप ही को प्राप्त करके ही मैंने 'धर्ममय वृक्ष का पद प्राप्त किया है।

जिस प्रकार मूल अर्थात् जड़ के न होने से वृक्ष कुछ देर भी नहीं ठहर सकता, उसी प्रकार मूल में आपके अनुग्रह के बिना मेरी धर्मराजरूपी वृक्षता नहीं ठहर सकती। महाकवि माघ के चतुर्दश सर्ग के अवलोकन से यह कहा जा सकता है कि वे अपने जीवन में किसी बहुत बड़े यज्ञ का आयोजन किये थे। यज्ञ धार्मिक अनुष्ठान है। इससे भी धर्म की सिद्धि हो जाती है।

अर्थ की दृष्टि से निम्नलिखित श्लोक अवलोकनीय है–

'नानवाप्तवसुनाऽर्थकाम्यता
नाचिकित्सितगदेन रोगिणा।
इच्छताशितुमनाशुषा न च
प्रत्यगामि तदुपेयुषा सदः॥'[१२]

उस यज्ञ में धन की इच्छा से आने वाले बिना धन के नहीं लौटे, रोगग्रस्त विना नीरोग हुए नहीं लौटे, भूखे बिना भरपेट खाये वापस नहीं हुए। तात्पर्य यह कि जो जिस इच्छा से आया था उसकी सभी इच्छाएँ पूरी हुए बिना नहीं रही।

काम की दृष्टि से निम्नलिखित श्लोक द्रष्टव्य है–

'हृदयमरिवधोदयादुदूढद्र-
ढिम दधातु पुनः पुरन्दरस्य।
घनपुलकपुलोमजाकुचाग्र-
द्रुतपरिरम्भनिपीडनक्षमत्वम्॥'[१३]

प्रस्तुत पद्य में नारदजी श्रीकृष्ण के पास आकर शिशुपाल के पूर्व जन्म और

वर्तमान जीवन के अत्याचारों की चर्चा करते हैं और अन्त में कृष्ण से कहते हैं कि आप उसे मारे, जिससे इन्द्र अपनी पत्नी शची के साथ काम-सुख निर्वाधरूप से प्राप्तकर सकें।

अधोलिखित पद्य से मोक्ष की पुष्टि हो जाती है–

'ग्राम्यभावमपहातुमिच्छवो
योगमार्गपतितेन चेतसा।
दुर्गमेकमपुनर्निवृत्तये
यं विशन्ति वशिनं मुमुक्षवः।'[१४]

अर्थात् मोह को त्यागने के इच्छुक अर्थात् मुमुक्षु लोग इस संसार में पुनः आगमन से छुटकारा पाने के लिए योगमार्ग में अपने चित्त को लगाकर इन्हीं अद्वितीय, दुष्प्राप्य एवं स्वतन्त्र भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करते हैं।

इस प्रकार से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि महाकवि माघ ने मुख्य प्रयोजन के रूप में कीर्ति को स्वीकार किए हैं अन्य प्रयोजन के रूप में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप पुरुषार्थ, कलावैचक्षण्य, सद्यःपरिनिवृत्ति, प्रीति, व्यवहारज्ञान और (शिशु०, ५/१) में कान्तासम्मितउपदेश को अवान्तररूप में स्वीकार किए है।

काव्य-हेतु

किसी भी कार्य को करने का कोई न कोई कारण या हेतु अवश्य होता है; क्योंकि निरुद्देश्य या विना कारण के कोई भी कार्य नहीं किया जाता। इसलिए कार्य की उत्पत्ति के निमित्त कारण या हेतु का होना आवश्यक है। यह कारण पूर्व विद्यमान् होता है। जिससे कार्य की उत्पत्ति होती है। इसकी पुष्टि के लिए 'सांख्यकारिका' की निम्नलिखित कारिका द्रष्टव्य है–

'असदकरणादुपादानादग्रहणात् सर्वसम्भवभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्चसत्कार्यम्।।'[१५]

इस प्रकार से देखा जाय तो काव्य भी एक कार्य है। क्योंकि **'कवेः कर्म काव्यम्।' कविः क्रान्तदर्शी मननशीलो दूर द्रष्टेति यास्क मतम्। भगवान् स्वयमपि कविः, 'कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूरिति, तन्नामस दर्शनात्। कविं पुराणमनुशासितारमिति' स्वयं भगवत् रचनाच्च।'**[१६] से स्पष्ट हो जाता है।

अतः काव्य अथवा कविता करने के लिए भी कारण या हेतु का होना नितान्त आवश्यक है; क्योंकि बिना कारण या हेतु के काव्य बन ही नहीं सकता।

यदि बन भी गया तो उपहसनीय ही होगा। जैसा कि मम्मट की निम्नलिखित वृत्ति से स्पष्ट है–

'यां विना काव्यं न प्रसरेत, प्रसृतं वा उपहसनीयं स्यात्।'

(काव्यप्रकाश)

इसीलिए मम्मट ने **'लोकोत्तरवर्णानां निपुणः कविकर्मः'** का वर्णन क्रमशः काव्यप्रकाश और काव्यकौतुक में किया है। पंडितराज जगन्नाथ ने **'सा च काव्यघटनानुकूल शब्दार्थोपस्थितिः'** (इस प्रकार से रसगङ्गाधर में) लिखकर वस्तुवादी ढंग से परिचय दिया है। भामह ने काव्यालङ्कार में क्रमशः **'सर्वथा पदमप्येकं न निगाद्यमवद्यवत्। विलक्ष्मणा हि काव्येन दुस्सुतेनेव निन्द्यते।'** और **'अकवित्वमधर्माय व्याधये दण्डनाय वा। कुकवित्वं पुनः साक्षाद्मृतिमाहुर्मनीषिणः'**[१७] उक्त ढङ्ग से विवेचन किया है।

इस प्रकार से उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि काव्यरचना अलौकिक होनी चाहिए। कवि में अलौकिक रचना के लिए उसके अन्तःकरण में स्थित प्रेरकतत्त्व का होना आवश्यक है। प्रेरकतत्त्व के बिना कविता में अलौकिकता आ ही नहीं सकती। इस प्रकार से कहा जा सकता है कि काव्य का कारण या हेतु प्रेरकतत्त्व ही है।

काव्य रचना के हेतु या कारण के सन्दर्भ में प्रायशः काव्यशास्त्री मतैक्य नहीं है। कुछ मात्र प्रतिभा को और कुछ प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास को कारण अथवा हेतु के रूप में स्वीकार करते हैं।

इस सन्दर्भ में चूंकि काव्य करने वाले के अन्तर्निहित भावों को उत्पन्न करने वाली प्रधान सत्ता के रूप में पूर्वस्थित, अणुता के कारण इन्द्रिय सन्निकर्ष न होने वाली, ऐसा नहीं कि अपने अभाव अर्थात् न हाने के कारण दृष्टिगोचर नहीं होती है, की पुष्टि आनन्दवर्धन की निम्नलिखित कारिका से की जा सकती है–

'प्रतीयमानं पुनरन्यदेवं वस्तस्तुवाणीषु महाकवीनाम्।
यत् तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभातिलावण्यमिवाङ्गनासु।।'[१८]

उक्त कारिका में प्रतिभा का स्वरूप स्पस्ट रूप से परिलक्षित हो रहा है। इस तथ्य की पुष्टि के लिए आनन्दवर्धन की निम्नलिखित कारिका द्रष्टव्य है–

'सरस्वतीस्वादुतदर्थवस्तु निःस्यन्दमानामहतां कवीनाम्।
अलोक सामान्यमभिव्यनक्ति परिस्फुरन्त प्रांतभाविशेषम्।।'[१९]

वृत्ति में स्पष्ट करते हुए **'वस्तुतत्त्वं निःष्यन्दमानामहतां कवीनां भारती अलोकसामान्यं प्रतिभाविशेषं परिस्फुरन्तं अभिव्यनक्ति। येनस्मिन्नतिविचित्र कविपरम्परावाहिनि संसारे कालिदास प्रभृतयो द्वित्राः पञ्चषा एव वा महाकवय इति गण्यन्ते।** (ध्वन्या०वृ०, १/६)

प्रतिभा की विशिष्टता (**अपूर्ववस्तुनिर्माणक्षमाप्रज्ञा**) को द्योतित किया है।

जहाँ तक व्युत्पत्ति का सम्बन्ध है, विभिन्न शास्त्रों और काव्यों के अध्ययन, अध्यापन तथा लोकव्यवहार द्वारा सहज प्रतिभा का परिपोष कहना अनुचित नहीं होगा। व्युत्पत्ति के द्वारा काव्य परिष्कृत, प्रखर, चमत्कृत, शक्तिसम्पन्न, मर्मस्पर्शनी और सारग्राहिणी हो जाता है; किन्तु इससे प्रतिभा के अभाव की पूर्ति नहीं हो सकती है।

'अभ्यासः इति मङ्गलः' राजशेखर ने काव्यमीमांसा में ऐसा उल्लेख किया है। इससे प्रतीत होता है कि मङ्गल ने अभ्यास को काव्य का हेतु माना है; पर न तो यह काव्य का अनिवार्य हेतु है और न ही प्रमुख एवं आवश्यक हेतु; क्योंकि ऐसे भी कवि संसार में हो चुके हैं, जिनकी प्रथम रचना ही उनकी अमर कृति है। यथा–

'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शास्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्च मिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥'[२०]

यह श्लोक ही इस तथ्य का प्रमाण है। हाँ, अभ्यास द्वारा प्रतिभा में और उसके द्वारा तत्प्रणीत काव्य में परिष्कार अवश्य आ जाता है। अतः प्रतिभा के परिष्कार के लिए इस तत्त्व की स्वीकृति अति आवश्यक है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर काव्य के मूल प्रेरक तत्त्वों को काव्य का हेतु या कारण कहा जा सकता है। काव्य का अनिवार्य एवं एकमात्र हेतु प्रतिभा है। व्युत्पत्ति और अभ्यास, प्रतिभा के परिष्कारक, पोषक तथा सम्बर्धक हेतु हैं। यह कहा जा सकता है कि प्रतिभा का विशेष सम्बन्ध आह्लाद से, व्युत्पत्ति का शब्दयोजना; विविध कलाओं एवं इतिहासादि को उपन्यस्त करने से तथा अभ्यास का काव्यविधा एवं वृत्तादि की योजना से है।

महाकवि माघ ने काव्यहेतु कहकर किसी वस्तु का निर्देश नहीं किया है; किन्तु काव्यरचना के लिए कौन उपादान आवश्यक है? इस तथ्य की जानकारी उनके काव्य के अध्ययन से अवश्य हो जाती है। उनके काव्य का विश्लेषण ओर विवेचन करके काव्यहेतु शब्द माना जा सकता है। इस सन्दर्भ की पुष्टि महाकवि माघ की निम्नलिखित कारिकाओं से की जा सकती है–

'स्थाने शमवतां शक्त्या व्यायामे वृद्धिरङ्गिनाम्।
अयथाबलमारम्भो निदानं क्षयसंपदः॥'[२१]

आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश में **'शक्तिः कवित्त्वबीजरूपः संस्कार-विशेषः, यां विना काव्यं न प्रसरेत् प्रसृतं वा उपहसनीयं स्यात्।'**

अर्थात् कवि में रहने वाली स्वाभाविक प्रतिभा रूप शक्ति काव्य का बीजभूत संस्कार है। जिसके अभाव में काव्य की रचना नहीं हो सकती। यदि हुआ भी तो उपहास का कारण बन जाएगा। हालाँ कि प्रस्तुत श्लोक में राजनीति की चर्चा की गई है, किन्तु श्लेष द्वारा शक्ति का तात्पर्य प्रतिभा से किया जा सकता है; क्योंकि प्रतिभायुक्त व्यक्ति ही कुशल राजनीतिज्ञ हो सकता है। प्रतिभासम्पन्न राजा ही प्रभुशक्ति, मंत्रशक्ति और उत्साहशक्ति के द्वारा राजशक्ति की वृद्धि कर सकता है। इसके विपरीत (प्रतिभाविहीन) राजशक्ति को विनाश की ओर ढकेल सकता है।

महाकवि माघ ने भी शक्ति या प्रतिभा को कवित्व का बीजभूत संस्कार उपमान के माध्यम से स्वीकार करते हुए लिखा है– **'प्रज्ञावल वृहन्मूलः।'**[२२] अभिनवगुप्त के **'प्रतिभा अपूर्ववस्तु निर्माणक्षमा प्रज्ञा'** से प्रज्ञा शब्द की प्रतिभा से पुष्टि हो जाती है।

निम्नलिखित श्लोक में उद्धवजी के सिद्धान्तों के अन्तःस्थल में प्रविष्ट होकर अवगाहन करने पर प्रभुशक्ति (तेजविशेष या प्रतिभा) को ही प्रधान कारण माना जा सकता है। जैसा कि स्पष्ट है–

'प्रज्ञोत्साहावतः स्वामी यतेताधातुमात्मनि।
तौ हि मूलमुदेष्यन्त्या जिगीषोरात्मसम्पदः।'[२३]

तात्पर्य यह कि प्रतिभा त्रिकालदर्शिनी भी है और नवनवोन्मेषशालिनी भी। प्रतिभा की इस परिभाषा में कवि के उस धर्म का सुन्दर निर्देश है, जिसे क्रान्तदर्शी कहते हैं। कवि की कृति में केवल वर्तमान की प्रतिच्छाया ही नही, अतीत का आकलन और भविष्य का दिशानिर्देश भी दृष्टिगोचर होता है। इसीलिए कवि को क्रान्तदर्शी की संज्ञा से सम्बोधित किया जाता है। प्रस्तुत पद्य में महाकवि माघ ने अतीत के अनुभव के द्वारा भविष्य का दिशानिर्देश किया है, जो कि वर्तमान की प्रतिच्छाया मात्र है।

महाकवि माघ ने विशेषज्ञ या विशिष्ट विद्वानों के समक्ष, जो शास्त्र की चर्चा है अर्थात् अपने वचन को शास्त्र का आधार बतलाकर शास्त्रज्ञ सूचित किया

है, वह (चर्चा) वक्ता अर्थात् मेरी गुणनिका (पठितचर अर्थात् पूर्व पठितशास्त्र की उद्धरणी करना, पहले पढ़े हुए शास्त्र को पुनः कहना) अभ्यास की दृढ़ता में कारण है अर्थात् शास्त्रविस्मरण न हो जाय; इसके लिए है, ऐसा बतलाते हैं जैसा कि स्पष्ट है–

'विशेषविदुषः शास्त्रं यत्तवोद्ग्राह्यते पुरः।
हेतुः परिचयस्थैर्ये वक्तुर्गुणनिकैव सा।'[२४]

प्रस्तुत श्लोक में अध्ययन और अध्यापन तथा लोकव्यवहार (जो व्युत्पत्ति के अन्तर्गत आता है) सहजप्रतिभा का परिपोष कहना अनुचित नहीं होगा; क्योंकि व्युत्पत्ति के द्वारा काव्य में निखार आता है। साथ ही पूर्व पठित शास्त्र को पुनः कहना अभ्यास की दृढ़ता का कारण है, किन्तु इससे प्रतिभा के अभाव की पूर्ति नहीं हो सकती है।

इस तथ्य को दृढ़ करने के लिए भामह के काव्यालङ्कार की निम्नलिखित कारिका द्रष्टव्य है–

'गुरुपदेशादध्येतुं शास्त्रं जड़धियोऽप्यलम्।
काव्यं तु जायते जातु कस्यचित्प्रतिभावतः॥'[२५]

अर्थात् गुरु के उपदेश से जड़बुद्धि भी शास्त्रों का अध्ययन कर सकते हैं, किन्तु काव्य किसी प्रतिभाशाली को कभी कभी (स्फुरित) होता है। इन्होंने प्रतिभा को मुख्य कारण माना है।

महाकवि माघ मात्र प्रतिभा (बुद्धि) को ही स्वीकार नहीं करते, अपितु व्युत्पत्ति और अभ्यास की तरफ भी ध्यानाकृष्ट करते हैं। यथा–

'सोपधानां धियं धीराः स्थेयसीं खट्वयन्ति ये।
तत्रानिशं निषण्णास्ते जानते जातु न श्रमम्॥'[२६]

हालाँ कि महाकवि माघ भी प्रतिभा को ही मुख्य कारण के रूप में स्वीकार करते हैं जैसा कि स्पष्ट है–

'स्पृशन्ति शरवत्तीक्ष्णाः स्तोकमन्तर्विशन्ति च।
वहुस्पृशापि स्थूलेन स्थीयते बहिरश्मवत्॥'[२७]

तात्पर्य यह है कि कुशाग्रबुद्धि लोग किसी बात को तनिक सा ही सुनकर उसका तत्त्व समझ लेते हैं और मन्दबुद्धि व्यक्ति बहुत कुछ समय देकर भी ऊपर ही रह जाते हैं, पूरा मर्म नहीं समझ पाते अथवा यह भी तात्पर्य हो सकता है कि

बुद्धिमान् लोग अल्प परिश्रम से बहुत बड़ा कार्य सिद्ध कर लेते हैं और मूर्ख छोटे से कार्य के लिए बहुत प्रयास करने पर सिद्धि नहीं प्राप्तकर पाते।

काव्यप्रतिभा की दुर्लभता अग्निपुराण के इस श्लोक में बड़ी स्पष्टता से कही गई है–

'नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र च दुर्लभा।।'[२८]

इस सन्दर्भ में आनन्दवर्धन का यह कथन ध्यान देने योग्य है–

'अस्मिन् अतिविचित्रकविपरम्परावाहिनिसंसारेकालिदासप्रभृतयो द्वित्राः पञ्चषा वा महाकवयो गण्यन्ते।' (ध्वन्यालोकवृत्ति, १/६)

महाकवि माघ इस तथ्य को और स्पष्ट करते हुए लिखते हैं–

'आरभन्तेऽल्पमेवाज्ञाः कामं व्यग्रा भवन्ति च।
महारम्भाः कृतधियस्तिष्ठन्ति च निराकुलाः।।'[२९]

अर्थात् मूर्ख व्यक्ति छोटा सा कार्य आरम्भ करते हैं तथा अत्यन्त व्याकुल हो जाते हैं और (इसके विपरीत) कुशल (निपुण) बुद्धि वाले बड़े-बड़े कार्य आरम्भ करते हैं, तथा निराकुल रहते हैं। अतएव बुद्धिमान होना परमावश्यक है।

महाकवि माघ 'प्रज्ञावान् व्यक्ति को प्रमाद कदापि नहीं करना चाहिए, सदा जागरुक रहना चाहिए,' की पुष्टि निम्नलिखित पद्य में की है–

'उपायमास्थितस्यापि नश्यन्त्यर्थाः प्रमाद्यतः।
हन्ति नोपशयस्थोऽपि शयालुर्मृगयुर्मृगान्।।'[३०]

भाव यह कि प्रज्ञावान् व्यक्ति को भी काव्यरचना के लिए शास्त्रों का पठन-पाठन निरन्तर करना चाहिए। प्रस्तुत पद्य में महाकवि माघ व्युत्पत्ति और अभ्यास की तरफ ध्यानाकृष्ट करते हैं।

महाकवि माघ निम्नलिखित श्लोक में अभ्यास की तरफ ध्यानाकृष्ट किया है–

'त्वष्टुः सदाभ्यासगृहीतशिल्प-
विज्ञानसम्पत्प्रसरस्य सीमा।
अदृश्यतादर्शतलामलेषु
च्छायेव या स्वजलधेर्जलेषु।।'[३१]

अर्थात् ब्रह्मा के निरन्तर अभ्यास के द्वारा प्राप्त शिल्पविज्ञानसम्पत्ति के

विस्तार की सीमा रूप जो (द्वारकापुरी) दर्पणतल के समान निर्मल समुद्रजल में स्वर्ग के छाया के समान दृष्टिगोचर होती थी। भाव यह कि निरन्तर अभ्यास के द्वारा जिस प्रकार द्वारकापुरी स्वर्गतुल्य दिखाई पड़ती थी ठीक उसी प्रकार काव्य का भी निरन्तर अभ्यास के द्वारा शब्द और अर्थ का सम्यक् ज्ञान प्राप्तकर, अन्य काव्यकारों की रचनाओं को देखकर काव्यप्रणयन में प्रवृत्त होने पर उसमें चमत्कार और निखार आता है।

उपर्युक्त तथ्यों की पुष्टि के लिए महाकवि माघ का निम्नलिखित पद्य अवलोकनार्थ है–

'क्षणशयितविबुद्धाः कल्पयन्तः प्रयोगा
नुदधिमहति राज्ये काव्यवदुर्विगाहे।
गहनमपररात्रप्राप्तबुद्धिप्रसादाः
कवय इव महीपाश्चिन्तयन्त्यर्थजातम्।।[३२]

तात्पर्य यह कि जिस प्रकार कवि लोग रात्रि के पिछले प्रहर में जागकर समुद्र के समान गम्भीर तथा दुर्विगाह काव्यरचना की चिन्ता में लग जाते हैं और उत्तम अर्थ तथा उत्तम शब्द के प्रयोग पर विचारकर वाच्य, लक्ष्य, व्यङ्ग्य इत्यादि गहन अर्थो की चिन्ता करते हैं; उसी प्रकार राजा लोग रजनी के पिछले प्रहर में जागकर राज्य की चिन्ता में लगकर साम, दामादि उपायों पर विचार करते हुए धर्म, अर्थ और काम की चिन्ता कर रहे हैं।

भामह की निम्नलिखित कारिका से उपर्युक्त कथन की पुष्टि की जा सकती है–

'शब्दाभिधेये विज्ञाय कृत्वा तद्विदुपासनाम्।
विलोक्यान्यनिबन्धांश्च कार्यः काव्यक्रियादरः।।' (का० अ०-१/१०)

अर्थात् शब्द और अर्थ का सम्यक् ज्ञान प्राप्तकर काव्यज्ञों की उपासनाकर और अन्य (लेखकों की) रचनाओं को देखकर काव्यप्रणयन में प्रवृत्त होना चाहिए। भामह शब्दार्थ के विशिष्ट ज्ञान की ओर लोगों को ध्यानाकृष्ट किया है।

महाकवि माघ अभ्यास पर जोर देते हुए निम्नलिखित पद्य उल्लखित करते हैं–

'श्लथतां व्रजतस्तथा परेषाम-
गलद्धारणशक्तिमुज्झतः स्वाम्।
सुगृहीतमपि प्रमादभाजां
मनसःशास्त्रमिवास्त्रमग्रपाणेः।।'[३३]

अर्थात् और दूसरे लोगों के शिथिल होते हुए एवं अपनी (धनुष को) पकड़ने की शक्ति को छोड़ते हुए हस्ताग्र से सम्यक् प्रकार पकड़ा गया भी हथियार (निद्रित होने के कारण) उस प्रकार गिर पड़ा, जिस प्रकार (बार-बार अभ्यास नहीं करते रहने से) प्रमादी व्यक्तियों के मन से सम्यक् प्रकार पढ़ा गया भी शास्त्र नष्ट (विस्मृत) हो जाता है।

भामह ने व्युत्पत्ति के लिए निम्नलिखित कारिका प्रस्तुत किया है–

'शब्दश्छन्दोऽभिधानार्था इतिहासाश्रयाः कथा।
लोको युक्तिः कलाश्चेति मन्तव्या काव्यगैरमी॥'[३४]

अर्थात् काव्यरचना के लिए व्याकरण, छन्द, कोष, अर्थ इतिहासाश्रित कथाएँ, लोकव्यवहार तथा कलाओं का मनन करना आवश्यक है। इस प्रकार भामह ने प्रस्तुत कारिका के माध्यम से व्युत्पत्ति के लिए विभिन्न शास्त्रों का ज्ञान होना, आवश्यक बताया। महाकवि माघ को उपर्युक्त शास्त्रों का अच्छा ज्ञान था। वेदाङ्गनिरूपण में व्याकरण, छन्दादि का पर्याप्त निरूपण किया जा चुका है। जहाँ तक कोष के ज्ञान का समबन्ध है, इस सन्दर्भ में माघ की **'नवसर्गगतेमाघः नवशब्दो न विद्यते'** यह उक्ति ही उनके कोषविषयकज्ञान की पुष्टि कर देता है। उनका अधोलिखित पद्य सत्कवि के लिए शब्दार्थज्ञान की अभीष्टता का सङ्केत करता है–

'शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते।'[३५]

महाकवि माघ (शिशुपालवध, १२/६२-७७ तक में) इतिहाश्रित कथाओं का पर्याप्त विवेचन किए हैं। इससे उनके इतिहास सम्बन्धी ज्ञान का पता चलता है। निम्नलिखित श्लोकों में लोकचित्रण पर प्रकाश डाला है–

'त्रस्तौ समासन्नकरेणु सूत्कृतान्नियन्तरि व्याकुलमुक्तरज्जुके।
क्षिप्तावरोधाङ्गनमुत्पथेनगां विलङ्घ्य लध्वीं करभौ वभञ्जतुः॥'[३६]

अर्थात् पास में आये हुए हाथी के सूत्कार (सू सू करने) से डरे हुए (छकड़े में जुते हुए) दो खच्चरों ने सारथि के घबड़ाकर रास (बागडोर) को छोड़ देने पर (उस पर चढ़ी हुई) अन्तःपुर की स्त्री को गिराकर बेरास्ते (ऊँची-नीची) भूमि को पारकर छकड़ी (छोटी गाड़ी) को तोड़ दिया।

लोकशास्त्र सम्बन्धी अन्य उदाहरण–

'वनस्पतिस्कन्धनिषण्णबाल-
प्रवालहस्ताः प्रमदा इवात्र।
पुष्पेक्षणैर्लम्भितलोचकैर्वा
मधुव्रतव्रातवृतैर्व्रतत्यः॥'[३७]

भाव यह कि जिस प्रकार स्त्रियाँ पति के कन्धों पर नवपल्लव के समान हाथों को रखती हैं तथा भ्रमरयुक्त पुष्पों के समान कज्जल शोभित नेत्रों को हर्ष से विकसित कर लेती हैं, उसी प्रकार वनस्पतियों के स्कन्धों पर हाथ के समान नवपल्लवों को रखी हुई तथा भ्रमरसमूह से आच्छादित; अतएव लोचकयुक्त पुष्परूपी नेत्रों वाली ये लताएँ इस रैवतक पर्वत पर शोभ रही हैं। 'ग्रामीण स्त्रियों के मस्तक के कपड़े का जो भाग मलिन होता है, उसे 'लोचक' कहते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि महाकवि माघ की कृति शिशुपालवध में भामह से लेकर पंडितराज जगन्नाथ द्वारा निर्दिष्ट काव्यहेतुओं का उद्धरण दिया जा सकता है। इस विवेचन में मुख्य रूप से जो काव्य के प्रमुख हेतु हैं–अर्थात् प्रतिभा, व्युत्पत्ति एवं अभ्यास को ही केन्द्र में रखकर विचार किया गया है। शिशुपालवध के अध्ययन से यद्यपि मुख्य रूप से उनकी प्रतिभा ही प्रतिभाषित होती है, तथापि सम्पूर्ण महाकाव्य 'व्युत्पत्ति का एक वृहद् आकर' के रूप में परिलक्षित होता है। काव्य में कही-कहीं अभ्यास का हेतु के रूप में सङ्केत मिलता है। महाकवि की एकमात्र रचना उनके स्वतः के अभ्यास को नहीं सूचित करती, तथापि काव्य में अवान्तररूप में कई वर्णन मिलते हैं। संक्षेप में महाकवि माघ-काव्यहेतुओं में प्रतिभा एवं व्युत्पत्ति के समर्थक कहे जा सकते हैं, साथ ही अवान्तररूप में अभ्यास को भी स्वीकार करते हैं।

काव्यलक्षण

किसी भी पदार्थ का अव्याप्ति, अतिव्याप्ति एवं असम्भव दोषों से रहित निर्दुष्ट लक्षण प्रस्तुत करना, यद्यपि कठिन कार्य है, फिर तो काव्य जैसे दुर्बोध पदार्थ का लक्षण बतलाना तो और भी कठिन जान पड़ता है। यही कारण है कि भारतीय ब्रह्मचिन्तक ब्रह्म का स्वरूप या लक्षण बताते-बताते अन्ततः भ्रान्त होकर 'नेति-नेति' प्रक्रिया का आश्रय ले बैठे।

भारतीय काव्यशास्त्रियों ने काव्यलक्षण को प्रस्तुत करने के लिए लगभग डेढ़ या दो हजार वर्ष के सुदीर्घ काल में 'एड़ी से चोटी' तक का पसीना एक

करके निरन्तर चिन्तन में जुटे रहे, फिर भी सर्वपूर्ण एवं निर्दोष लक्षण प्रस्तुत करने में असमर्थ रहे। सम्पूर्ण काव्यशास्त्रियों ने स्वचिन्तन के आधार पर काव्यलक्षण को प्रस्तुत किए हैं, जिसमें उनका अपना-अपना दृष्टिकोण व्यक्त होता है।

वस्तुतः लक्षण को 'पहचान' के पर्याय के रूप में लिया जा सकता है। काव्यशास्त्रियों में से कुछ ने काव्य के वाह्यरूप को लेकर लक्षण प्रस्तुत किया है और कुछ ने आभ्यान्तररूप को। काव्यशास्त्रीय ग्रंथों के अतिरिक्त लक्ष्य ग्रन्थों अर्थात् काव्यकृतियों में भी कवियों ने काव्यलक्षण की ओर सङ्केत किया है।

यदि काव्यलक्षण और स्वरूप को पृथक् करके देखा जाये तो लक्षण के रूप में सभी आचार्यो को 'लोकोत्तर आह्लाद' ही अभिप्रेत है। वस्तुतः लक्षण 'चिह्न' को कहते हैं। स्वरूप काव्यशरीर को कहा जा सकता है। जैसे-दण्डी कहते हैं- **'शरीरं तावदिष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावली।'**[३८] आनन्दवर्धन कहते हैं- **'शब्दार्थशरीरं तावत्काव्यम्', 'सहृदयहृदयाह्लादित्वमेव काव्यलक्षणम्',**[३९] इसी प्रकार आचार्य वामन ने लिखा है- **'काव्यशब्दोऽयं गुणालङ्कार संस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वर्तते।'**[४०] यहाँ 'शब्दार्थयोः' में सप्तमी विभक्ति है, जो इस तथ्य को ध्वनित करती है कि काव्यगत आह्लाद का आधार या शरीर 'शब्दार्थ' है। आचार्य मम्मट काव्यप्रकाश के मङ्गलाचरण एवं प्रयोजन में प्रायः काव्यलक्ष्म (आह्लादकता) का सङ्केत कर देते हैं- **'शब्दार्थयोर्गुणभावेन रसाङ्गभूत व्यापार प्रवणतया विलक्षणं यत्काव्यं लोकोत्तरवर्णनानिपुणं कविकर्म।'**[४१] यहाँ मम्मट 'विलक्षण' शब्द का प्रयोग करते हैं किन्तु स्वरूप प्रतिपादन के समय लिखते हैं- **'तत्स्वरूपमाह-तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि।'**[४२] यह भी ध्यातव्य है कि प्रयोजन प्रतिपादन के पूर्व वे लिखते हैं- **'इहाभिधेयं सप्रयोजनमित्याह'**[४३] अर्थात् काव्यलक्षण प्रयोजन के साथ लिखा जा रहा है। इसीलिए वे 'सद्यः परनिर्वृतये की व्याख्या में वे 'शब्दार्थयोः यह पूर्वोद्धत वाक्य लिखते हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि 'लोकोत्तर आह्लाद' काव्य के लक्षण के रूप में सभी आचार्यों को स्वीकार्य है। स्वरूप के बारे में वैमत्य है। आह्लाद तो अन्य साधनों से प्राप्त हो सकता है किन्तु काव्याह्लाद-शब्द, अर्थ, शब्दार्थ, वाक्य, पदावली एवं उक्ति आदि के माध्यम से ही प्राप्त होता है, जो उसका स्वरूप या शरीर है।

अचार्य भामह ने **'शब्दार्थो सहितौ काव्यम्'**[४४] अर्थात् शब्द और अर्थ के सहितभाव को काव्य माना है। शब्दार्थ युगल का सहभाव समग्र वाङ्मय में निर्मित है अतः इससे भामह का क्या अभिप्राय है? इस पर अनेक विरोधी विचार

व्यक्त किये गये हैं। अन्ततः वे **'वक्राभिधेयशब्दोक्तिरिष्टां वाचामलङ्कृतिः'**[४५] के द्वारा चमत्कार निष्पादक तत्त्वों में अलङ्कार को मानकर शब्द और अर्थ की वक्रता के रूप में उसकी कल्पना करते हैं। इस प्रकार चमत्कारपूर्ण वाणी को काव्य कहकर उसके निष्पादक तत्त्वों को शब्द एवं अर्थ की वक्रता कहा है। अतः भामह की दृष्टि में वक्रतायुक्त शब्दार्थ ही काव्य है।

कालिदास ने भी काव्यलक्षण का सङ्केत रघुवंश महाकाव्य में किया है। अधोलिखित पद्य द्रष्टव्य है–

'वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ॥'[४६]

कालिदास भी शब्द और अर्थ की अपेक्षा करते हैं। उनके शब्द को अर्थ से और अर्थ को शब्द से अलग नहीं किया जा सकता है, क्योंकि शब्द और अर्थ सापेक्ष हैं। एक के अभाव में दूसरे का कोई अस्तित्व नहीं है। इस प्रकार कालिदास भी शब्दार्थ की अपेक्षा करते हैं। वे शब्दार्थ की प्रतिपत्ति (ज्ञान) के लिए वागर्थ की भाँति सम्पृक्त शिव और पार्वती को प्रणाम करते हैं। कवि की इस अपेक्षा का माघ ने भी स्पष्ट सङ्केत किया है। प्रस्तुत पद्य इस तथ्य का प्रमाण है–

'नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे।
शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते॥'[४७]

माघ ने 'सत्कविः शब्दार्थौ–अपेक्षते' कहकर शब्द और अर्थ के साहित्य की अपेक्षा करते हैं। वे सत्कवि को विद्वान् का समकक्ष और उपमेय मानकर चलते हैं। मूर्धन्य टीकाकार मल्लिनाथ ने **'सत्कविः सत्कवयिता शब्दार्थाविव तयोः काव्यशरीरत्वादिति भावः'** लिखकर शब्द और अर्थ को काव्य का शरीर माना है। इस प्रकार माघ ने अपने वाग्वैचित्र की साधना के लिए शब्द और अर्थ दोनों को समान रूप से संवारा है। शब्दार्थ का अपेक्षी होने के साथ कवि रसभावविद् होता है। कवि की रुचि केवल ओज या प्रसाद गुण में ही नहीं होती, जैसा कि स्पष्ट है–

'नैकमोजः प्रसादो वा रसभावविदः कवेः।'[४८]

अर्थात् रसभाव को जानने वाला कवि तदनुसार ओजगुण से युक्त प्रौढ़-प्रबन्धरचना या प्रसादगुणयुक्त सुकुमारप्रबन्धरचना करता है, सर्वत्र किसी एक गुण

प्रौढ़ या प्रसाद का ही आश्रय नहीं करता, अपितु जहाँ जैसी आवश्यकता होती है, उसका प्रयोग करता है।

माघ रस की भी बात करते हैं, क्योंकि लोकोत्तर आह्लाद के लिए रसपरिपाक होना आवश्यक है। प्रस्तुत पद्य में अवान्तररूप से रस को काव्यलक्षण में महत्त्व दिया गया है माघ स्थायीभाव तथा सञ्चारीभाव की भी चर्चा करते हैं।

यथा–

स्थायिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावाः सञ्चारिणो यथा।
रसस्यैकस्य भूयांसस्तथा नेतुर्महीभृतः।।'[४९]

माघ के आशय को स्पष्ट करते हुए मल्लिनाथ ने अपनी टीका में–

'विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः।
आनीयमानः स्वादुत्वं स्थायिभावो रसः स्मृतः।।'

ऐसा उल्लेख किया है। वस्तुतः काव्य का प्रधान लक्ष्य रसास्वादन या रसानुभूति का होना ही है।

माघ निम्नलिखित श्लोक में **'शुद्धवर्णा सरस्वती'** की बात करते हैं।

यथा–

'द्योतितान्तःसभैः कुन्दकुड्मलाग्रदतः स्मितैः।
स्नपितेवाभवत्तस्य शुद्धवर्णा सरस्वती।।'[५०]

शुद्धवर्णों वाली सरस्वती ही स्नापित होती है। यहाँ पर वाणी की शुद्धता माघ को अभीष्ट है। वस्तुतः वाणी ही तो काव्य है। इस प्रकार दोषरहित वाणी अथवा शब्दार्थ को ही माघ काव्य के लिए उपयुक्त मानते हैं।

माघ प्रस्तुत पद्य में अर्थगौरव से युक्त वाणी का प्रतिपादन करते हैं। वस्तुतः वर्णनीय विषय के अनुरूप काव्य में सरल तथा अर्थगौरवसमन्वितभाषा का होना उचित होता है–

'भारतीमाहितभरामथानुद्धतमुद्धवः।
तथ्यामुतथ्यानुजवज्जगादाग्रे गदाग्रजम्।।'[५१]

यहाँ ध्यातव्य है कि माघ आहित शब्द का प्रयोग कर रहे हैं, जो अर्थगौरव के साथ 'आसमन्तात् हितम्' का भी वाचक है। साहित्य शब्द की व्युत्पत्ति में भी हित शब्द सन्निविष्ट है। **'सहितस्यभावः साहित्यम्'** से स्पष्ट है। **'तथ्यां**

यथार्थां भारतीम्' अर्थात् अर्थगौरव से युक्त यथार्थ भारती (वाणी) की बात कर रहे हैं। इस प्रकार उक्त पद्य में 'तथ्या' और 'आहितभरा' की बात करते हैं।

'**यावदर्थपदां वाचम्**' के द्वारा भी माघ 'तथ्या' और 'आहितभरा' भारती की पुष्टि करते हैं–

'यावदर्थपदां वाचमेवमादाय माधवः।
विरराम महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः॥'[५२]

यहाँ पर माघ अर्थगौरव के साथ शब्द (पद) की बात करते हैं। मल्लिनाथ ने अपनी टीका में–'**यावदर्थं पदानि यस्यास्ताम्। अभिधेय सम्मिताक्षरमित्यर्थः। एव मुक्तप्रकारेण वाचमादाय गृहीत्वा।**' इस प्रकार से व्युत्पत्ति की है। इसी प्रकार ध्वन्यालोककार कहते हैं–

'सरस्वती स्वादु तदर्थवस्तु निःष्यन्दमाना महतां कवीनाम्।
अलोकसामान्यमभिव्यनक्ति परिस्फुरन्तं प्रतिभाविशेषम्॥'[५३]

माघ 'विवक्षितामर्थविदः' की बाते करते हैं। '**सत्कविः शब्दार्थौ अपेक्षते**' की भी बात करते हैं। सत्कवि को विद्वान् के सदृश भी बताते हैं। यथा–

'विवक्षितामर्थविदस्तत्क्षणप्रतिसंहृताम्।
प्रापयन् पवनव्याधेर्गिरमुत्तरपक्षताम्॥'[५४]

यहाँ पर गिर् (वाणी) से 'शब्दार्थौ' का अभिप्राय है, क्योंकि 'विवक्षितामर्थविदः' की वाणी को सिद्धान्तरूप में बतलाया गया है। अन्ततः वाणी की श्रेष्ठता 'शब्दार्थ' के द्वारा ही तो बतलायी गई है।

माघ वाणी (काव्य) की निर्दोषता को इस प्रकार से सिद्ध कर रहे हैं–

'यद्वासुदेवेनादीनमनादीनवमीरितम्।
वचसस्तस्य सपदि क्रिया केवलमुत्तरम्॥'[५५]

मल्लिनाथ ने अपनी टीका में लिखा है–'**वासुदेवेन न दीनमित्यदीनमकातरं न आदीनवोऽस्येत्यनादीनवं निर्दोषम्।**' अर्थात् दोष आदि को नया मत उसी प्रकार बतलाते हैं, जिस प्रकार '**उत्तिष्ठमानस्तु परः**' में सिद्ध किया गया है। अतः श्रीकृष्णजी की वाणी को सिद्धान्तभूत वचन मानकर कार्यरूप में परिणत करने को कहा गया है। फिर पुष्ट करते हुए माघ कहते हैं–

'नैतल्लघ्वपि भूयस्या वचो वाचातिशय्यते।
इन्धनौघधगप्यग्निस्त्विषा नात्येति पूषणम्॥'[५६]

यहाँ पर वाणी के विशेषणों के द्वारा उसकी निर्दोषता सिद्ध की गयी है। साथ ही अर्थगौरव के साथ आसमन्तात् हितम् की बात भी कही गई है। माघ फिर पुष्ट करते हुए कहते हैं–

'संक्षिप्तस्याप्यतोऽस्यैव वाक्यस्यार्थगरीयसः।
सुविस्तरतरा वाचो भाष्यभूता भवन्तु मे॥'[५७]

यहाँ पर संक्षिप्तस्य, गरीयस और सुविस्तरतरा आदि वाणी के कई विशेषण बतलाये गये हैं। यहाँ पर जो विशेषण प्रयुक्त है; वे अर्थगौरव के 'आसमन्तात् हितम्' के भी वाचक है। अन्ततः **'सहितस्यभावः साहित्यम्'** की पुष्टि हो जाती है।

महाकवि माघ ने निम्नलिखित श्लोक में सङ्केतग्रह के माध्यम से शब्दार्थ का स्वरूप बतलाया है–

'असम्पादयतः कञ्चिदर्थं जातिक्रियागुणैः।
यदृच्छाशव्दवत्पुंसः संज्ञायै जन्म केवलम्॥'[५८]

माघ अधोलिखित पद्य में गुणों एवं अलङ्कारों की बात करते हैं–

'म्रदीयसीमपि घनामनल्पगुणकल्पिताम्।
प्रसारयन्ति कुशलाश्चित्रां वाचं पटीमिव॥'[५९]

माघ अधोलिखित पद्य में रमणीयंता का स्वरूप भी बतलाते हैं–

'दृष्टोऽपि शैलः स मुहुर्मुरारेरपूर्ववद्विस्मयमाततान्।
क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदैव रूपं रमणीयतायाः।'[६०]

अर्थात् जो प्रतिक्षण नवीनता धारण करता है, वही रमणीयता का स्वरूप है।

यद्यपि यहाँ पर माघ भगवान् श्रीकृष्ण के आगमन पर सजाये गये 'रैवतक पर्वत' की अपूर्व नवीनता का वर्णन करते हैं तथापि अवान्तर रूप में उनका भाव काव्य के सौन्दर्यवोध की अपूर्वता और नवीनता से है, ऐसा अनुमानतः कहा जा सकता है, क्योंकि इनके उत्तरवर्ती आनन्दवर्धन की अधोलिखित कारिका इसका प्रमाण है, जो कि माघ से प्रभावित होकर लिखी गई है, ऐसा अनुमानतः कहा जा सकता है–

'दृष्टपूर्वा अपि ह्यर्थाः काव्ये रसपरिग्रहात्।
सर्वे नवा इवाभान्ति मधुमास इव द्रुमाः॥'[६१]

जिस प्रकार मधुमास अर्थात् वसन्तऋतु में वृक्षों में नई-नई कोपलें आ जाने के कारण सम्पूर्ण वृक्षों में नवता का सञ्चार दिखाई देता है, ठीक उसी प्रकार काव्य में रस का सञ्चार होने से पूर्व दृष्ट सारे पदार्थ भी नवीन से प्रतीत होने लगते हैं।

पंडितराज जगन्नाथ ने रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को ही काव्य माना है–

'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।'[६२]

रमणीय क्या है? इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं–

'रमणीयता च लोकोत्तराह्लादजनकज्ञानगोचरता।'[६३]

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि महाकवि माघ काव्य का शरीर-शब्द और अर्थ को मानते हैं तथा उसके आह्लादक तत्त्व रस, भाव आदि हैं। काव्य की सौन्दर्यवृद्धि में गुण और अलङ्कार सहायक हैं। प्रसङ्गानुकूल माघ काव्यभाषा में ओज और प्रसाद दोनों का प्रयोग उचित मानते हैं। यथास्थल अर्थगाम्भीर्य और अलङ्कार वैचित्र्य के समर्थक हैं। शब्दार्थ की निर्दोषता भी उन्हें अभीष्ट वर्णन की अपूर्वता और रमणीयता में उनकी अभिरुचि है। रमणीयता के लिए नए-नए अर्थों के सन्निवेश की वे अनुशंसा करते हैं। इस प्रकार काव्यशास्त्रियों द्वारा अभिलषित काव्यस्वरूप के सभी पक्षों पर माघ की परिष्कृत दृष्टि दिखाई देती है। कवि होने के साथ काव्यशास्त्रीय सङ्केत की दृष्टि से 'शिशुपालवध' एक महनीय काव्य है। सारांशतः हम कह सकते हैं कि माघ का काव्यलक्षण इस प्रकार है–

'निर्दोष तथा रसगुणालङ्कारयुक्त रमणीय शब्दार्थ काव्य है।'

रचना-प्रक्रिया

संस्कृत कविता का इस लौकिक जगत् में आविर्भाव आदिकवि महर्षि वाल्मीकि से होता है। काव्योत्पत्ति की घटना का आधार क्रौञ्ची का करुणक्रन्दन है। उसकी मार्मिक वेदना ने महर्षि के हृदय को एकाएक समुद्वेलित कर दिया। क्रौञ्ची की करुण आह ने महर्षि के करुणसंस्कार को जागृत कर दिया। करुणा का प्रवाह इतना तीव्र था कि महर्षि के नियन्त्रण से उन्मुक्त होकर स्वतः कवितारूप में प्रस्फुटित हो पड़ा। संस्कृतसाहित्य के अनेक समालोचकों ने इस घटना को ही काव्योत्पत्ति की घटना स्वीकार किया है। आचार्य आनन्दवर्धन का अधोलिखित कथन इसका प्रमाण है–

'काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा।
क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः॥'[६४]

'मा निषाद -----------०।' के रूप में वाल्मीकि द्वारा दिया गया शाप संस्कृत की लौकिक काव्यधारा के लिए वरदान बन गया। उनके द्वारा रचित आदिकाव्य 'रामायण' जन-जन का कण्ठहार बना तथा कवियों को काव्यरचना की प्रेरणा दी। इस प्रकार अवलोकित या अनुभूत दृश्य के अनुव्याहण से कविता की उत्पत्ति होती है। यह बात सिद्ध है। जिस प्रकार आदिकवि वाल्मीकि का क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थ' शोक अनुव्याहण से श्लोक के रूप में पर्णित हो गया। उसी प्रकार महाकवि माघ की श्रीकृष्णासक्ति ने उनके चारुचरितकीर्तन के लिए माघ को प्रेरित किया। माघ का कथन ही इस तथ्य की पुष्टि करता है–

'श्रीशब्दरम्यकृतसर्गसमाप्तिलक्ष्म
लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारु।
तस्यात्मजः सुकविकीर्तिदुराशयादः
काव्यं व्यधत्त शिशुपालवधाभिधानम्॥'[६५]

आचार्य आनन्दवर्धन ने कवि को स्वयं ब्रह्मा और काव्यसंसार को उनकी सृष्टि कहा है। निम्नलिखित पद्य इसका प्रमाण है–

'अपारे काव्यसंसारे कविरेकः प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते॥'[६६]

आचार्य मम्मट ने कवि की सृष्टि ब्रह्मा की सृष्टि से भी उत्कृष्ट माना है। आचार्य मम्मट की प्रस्तुत कारिका इस तथ्य को सिद्ध करती है–

'नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति॥'[६७]

इस प्रकार कविवाणी सृष्टिकर्त्ता-विधाता के नियम से उन्मुक्त, एकमात्र आह्लादतत्त्व से परिपूर्ण, परमस्वतन्त्र, नवरसों से रुचिर, अलौकिक निर्माण करती हुई सर्वातिशायिनी रही है। वस्तुतः काव्य का प्रधानलक्ष्य 'सद्यः परिनिवृत्ति' अर्थात् अपूर्व आनन्दानुभूति या रसास्वादन ही है।

हालाँ कि संस्कृत साहित्य के कालिदास, भवभूति, भारवि, माघ एवं

श्रीहर्ष आदि कवि प्राय: सम्पन्न राजाओं के आश्रय में रहे, तथापि उनकी कविता में सात्त्विकसाधना की अभिव्यक्ति है।

पूर्वोद्धत आचार्य मम्मट की कारिका 'नियतिकृत ---------।' (का०प्र०, १/१) में कवि की वाणी को अनन्य परतन्त्रा भी कहा गया है। रैवतक वर्णन के एक पद्य में माघ भी विना दीवार के चित्र की कल्पना और उसके द्रष्टाओं के आश्चर्य का वर्णन करते हैं। यह अंश अप्रत्यक्षरूप से काव्यरचना की स्थिति को रेखाङ्कित करता है–

'अन्योन्यव्यतिकरचारुभिर्विचित्रै-
रत्रस्यन्नवमणिजन्मभिर्मयूखैः।
विस्मेरान् गगनसदः करोत्यमुष्मि-
न्नाकाशे रचितमभित्तिचित्रकर्म॥'[६८]

माघ की धारणा है कि स्वयं सुन्दरतम दृश्य को वर्णन के लिए चुनने से कवि पर मिथ्या कल्पना का आरोप नहीं लगता। जैसा प्रस्तुत पद्य से स्पष्ट होता है–

'मुदे मुरारेरमरैः सुमेरो-
रानीय यस्योपचितस्य शृङ्गैः।
भवन्ति नोद्दामगिरां कवीनामु-
च्छ्रायसौन्दर्यगुणा मृषोद्याः॥'[६९]

तात्पर्य यह है कि देवताओं ने सुमेरु के शिखरों की समृद्धि तथा उच्चता को लाकर रैवतक के शिखरों को बढ़ा दिया था। अत: कवि जो कुछ भी प्रगल्भ वाणी, उसकी उच्चता तथा सुन्दरता के विषय में करता है, वह मिथ्या नहीं है।

शिशुपालवध के चतुर्दश सर्ग में प्रथम से एकादश पद्य तक का वर्णन, कथावस्तु से सम्पृक्त होकर भी कवि की वर्णनधर्मिता की स्थिति को भी रेखाङ्कित करता है। यदि वर्णनीय पात्र का व्यक्तित्व महान् है, तब कवि द्वारा उसकी प्रशंसा में लिखे गये अंश मिथ्या न होकर सहृदयहृदयसंवेद्य बन जाते हैं–

'वह्वपि प्रियमयं तव ब्रुवन्न
व्रजत्यनृतवादितां जनः।
संभवन्ति यद्दोषदूषिते
सार्व सर्वगुणसंपदस्त्वयि॥'[७०]

सत्यवादी राजा युधिष्ठिर मर्मज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण से कहते हैं–मैं आपकी

प्रशंसा की बहुत सी बातें करते हुए भी मिथ्यावादी नहीं हो रहा हूँ। हे सम्पूर्ण जगत् के कल्याणकर्त्ता! सब प्रकार के अवगुणों से रहित आपसे ही तो सब प्रकार के गुणों की सम्पदा उत्पन्न होती है।

माघ ने काव्यरचना के विविध आयामों पर चिन्तन एव मनन करने का उपयुक्त समय ब्राह्ममुहूर्त माना है। ब्राह्ममुहूर्त का अपर नाम देवबेला है। देववेला में बुद्धि विशद रहती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि माघ ब्राह्ममुहूर्त में ही काव्यरचना करते थे। माघ का अधोलिखित पद्य उक्त तथ्य का प्रमाण है–

'क्षणशयितविवुद्धाः कल्पयन्तः प्रयोगा
नुदधिमहति राज्ये काव्यवद्दुर्विगाहे।
गहनमपररात्रप्राप्तबुद्धिप्रसादाः
कवय इव महीपाश्चिन्तयन्त्यर्थजातम्॥'[७१]

अर्थात् थोड़ी देर सोकर जागे हुए राजा लोग रात्रि के अन्तिम प्रहर (ब्राह्ममुहूर्त) में बुद्धि के नैर्मल्य को पाये हुए तथा समुद्र के समान हाथी, घोड़े आदि से पक्षा०–अभिधा, लक्षणा आदि एवं रसभावादि से गम्भीर और काव्य के समान दुष्प्रवेश्य राज्य में सामादि उपाय, पक्षा०–अर्थ तथा गुणयुक्त रमणीय पद सम्रुदाय की कल्पना करते हुए कवि के समान धमार्थकामरूप पुरुषार्थ पक्षा०–अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जनादियुक्त अर्थसमुदाय का विचार कर रहे हैं।

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार कवि लोग रात्रि के पिछले प्रहर में जागकर समुद्र के समान गम्भीर तथा दुर्विगाह काव्यरचना की चिन्ता में लग जाते हैं और उत्तम शब्द एवं उत्तम अर्थ के प्रयोग पर विचार कर वाच्य, लक्ष्य और व्यङ्ग्य इत्यादि गहन अर्थों की चिन्ता करते हैं, उसी प्रकार राजा लोग भी रजनी के पिछले प्रहर में जागकर राज्य की चिन्ता में लगकर साम, दामादि उपायों पर विचार करते हुए धर्म, अर्थ एवं काम की चिन्ता कर रहे हैं।

माघ ने रसभाव के ज्ञाता कवि के लिए ओजगुणयुक्त या प्रसादगुणयुक्त ही प्रबन्ध को रचना करने का नियम नहीं स्वीकार करते हैं। माघ कवि के दृष्टिकोण को व्यापक मानते हैं, अधोलिखित पद्य इसका प्रमाण है–

'तेजः क्षमा वा नैकान्तं
कालज्ञस्य महीपते।
नैकमोजः प्रसादो वा
रसभावविदः कवेः॥'[७२]

अर्थात् समय के पहचानने वाले राजा के लिए केवल तेजस्विता अथवा केवल क्षमा, ऐसा कोई एकान्त नियम नहीं है। वे समय को देखकर जहाँ जिसकी आवश्यकता पड़ती है उसका प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार रसों एवं भावों के मर्म को जानने वाले कवि के लिए केवल ओजगुण या प्रसादगुण ही नहीं होता अपितु दोनों का ही यथाप्रसङ्ग अनुशरण करते हैं। इतना ही नहीं काव्यगत अन्यतत्त्वों में भी उनका सहज अभिनिवेश होता है।

इस प्रकार माघ, कवि की रचनाधर्मिता के बारे में कहना चाहते हैं कि शृङ्गारादि रसों को जानने वाला कवि तदनुसार ओजगुण से युक्त प्रौढ़प्रबन्धरचना या प्रसादगुणयुक्त सुकुमारप्रबन्धरचना करता है, सर्वत्र किसी एक गुण (प्रौढ़ या प्रसाद) का ही आश्रय नहीं करता। मल्लिनाथ ने अपनी टीका में इस तथ्य की पुष्टि की है– **'कवेः कवियितुरेकं केवलमोजः प्रौढ़प्रवन्धत्वं वा एकः प्रसादः सुकुमारप्रबन्धत्वं वा न। किन्तु तत्र हि रसानुगुण्येन यथायोग्यमुभयमप्यु-पादेयम्।'**

पूर्वावलोकित दृश्य के वर्णन में नवीनता का आधान काव्यरचना का वैशिष्ट्य होता है। रैवतक-वर्णन का प्रकृत पद्य यद्यपि प्रत्यक्षरूप से इस आशय को नहीं व्यक्त कर रहा है, तथापि इस सन्दर्भ में कवि का दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है–

'दृष्टोऽपि शैलः स मुहुर्मुरारे-
रपूर्ववद्विस्मयमाततान।
क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति
तदेव रूपं रमणीयतायाः॥'[७३]

बार-बार देखे गये भी उस रैवतक पर्वत ने अपूर्व के समान श्रीकृष्ण भगवान् के आश्चर्य को बढ़ा दिया, यह ठीक ही है, क्योंकि जो प्रतिक्षण नवीनता धारण करता है, वही रमणीयता का स्वरूप है।

इसमें सन्देह नहीं कि रमणीयता अथवा सौन्दर्य की सहृदयों को अनुभूति करा देना ही कवि का लक्ष्य होता है। यहाँ माघ लगभग रमणीयता की परिभाषा ही कर देते हैं।

इस प्रकार उक्त उद्धरणों से माघ के काव्यरचनाविषयक दृष्टिकोणों का अनुमान किया जा सकता है। वस्तुतः काव्यरचना का प्रधान लक्ष्य अपूर्वानन्दानुभूति या रसास्वादन ही है। इस तथ्य की सिद्धि काव्यरचना के लिए, उद्धृत उदाहरणों से ही हो जाती है।

अलङ्कार और अलङ्कार्य

अलङ्कार की परिभाषा देते हुए आचार्य मम्मट ने लिखा है–

'उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।
हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः॥'[७४]

अर्थात् रस के होते हुए अङ्ग (शब्द और अर्थ) के माध्यम से काव्य का तत्त्व है, उसे अलङ्कार कहते हैं।

अलङ्कार्य उसे कहते हैं जिसे अलङ्कारों से सजाया जाता है। वस्तुतः अलङ्कार्य ही काव्य की आत्मा है, जिसे आचार्यों ने रस, ध्वनि आदि के रूप में स्वीकार किया है। आचार्यों ने काव्यगुणों को अलङ्कार्य अर्थात् अङ्गी से नित्य सम्बद्ध माना है।

महाकवि माघ अपने महाकाव्य 'शिशुपालवध' में अलङ्कार और अलङ्कार्य का यथास्थल उल्लेख करते हैं। कहीं-कहीं गुण और अलङ्कारों का और कहीं गुण और रसभावादि का एक साथ सङ्केत करते हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

'म्रदीयसीमपि घनामनल्पगुणकल्पिताम्।
प्रसारयन्ति कुशलाश्चित्रां वाचं पटीमिव॥'[७५]

अर्थात् कुशल वक्ता (पक्षा०-कपड़ा बुनने वाला बुनकर) अत्यन्त मृदु (सुनने में मधुर, पक्षा०-स्पर्श करने में चिकनी तथा कोमल) होने पर भी सघन (अर्थगौरव से युक्त, पक्षा०-वजनदार, गाढ़ा) तथा बहुत से गुणों (ओज-प्रसाद-माधुर्य या श्लेषादि, पक्षा०-सूतों) से बनायी गयी चित्र (रङ्ग-विरङ्गी-विविध प्रकार की) साड़ी के समान चित्र (गोमूत्रिका-मुरज-कमलादि बन्धों से अनेक प्रकार के शब्दवैचित्र्य से युक्त) वचन को फैलाते (कहते) हैं। यहाँ पर गुण और अलङ्कार दोनों का प्रयोग करते हैं। शब्दवैचित्र्य से युक्त उद्धवजी का वचन (वाणी) अलङ्कार्य है। जिससे अलङ्कृत किया गया है, वह अलङ्कार है।

अधोलिखित पद्य में रसभावादि का उल्लेख करते हुए कहते हैं–

'स्थायिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावाः सञ्चारिणो यथा।
रसस्यैकस्य भूयांसस्तथा नेतुर्महीभृतः॥'[७६]

तात्पर्य यह है कि शृङ्गारादि नव रसों के रति आदि नव स्थायीभाव हैं। वे सञ्चारी, व्यभिचारी से पुष्ट होकर दर्शकादि को शृङ्गारादि रस रूप में प्रतीत होने लगते हैं, अतएव शृङ्गारादि रस की सिद्धि के लिए वे सञ्चारी आदि अनेक भाव ही सहायक माने जाते हैं।

महाकवि माघ रसास्वादन और स्थायीभाव का उल्लेख करते हैं। अभिनवगुप्त ने आगे चलकर प्रपाणक रसन्याय से रस की निष्पत्ति पर विचार किया है। माघ की इस सन्दर्भ में अवधारणा निश्चित रूप से महत्त्व रखती है, क्योंकि भरतमुनि के बाद शताब्दियों तक भामह, दण्डी, वामन आदि आचार्यों ने अलङ्कार के महत्त्व को ही विशेष रूप से प्रतिपादित किया था। आनन्दवर्धन भी माघ के उत्तरवर्ती हैं। माघ का अधोलिखित पद्य रसानुभूति और स्थायीभाव की स्थिति का प्रतिपादन करता है–

'स्वादयन्रसमनकसस्कृत-
प्राकृतैरकृतपात्रसङ्करैः।
भावशुद्धिसहितैर्मुदं जनो
नाटकैरिव वभार भोजनै[७] ॥'

प्रशस्त टीकाकार मल्लिनाथ प्रस्तुत पद्य के आशय को इस प्रकार रेखाङ्कित करते हैं–**'अनेकानि बहूनि संस्कृतानि हिङ्गुमरिचादिना कृतसंस्काराणि प्राकृतानि प्रकृतिसिद्धानि संस्कारं विना स्वादूनि चूतफलादीनि च येषु तैः। अन्यत्रानेक-विचित्रसंस्कृतप्राकृतौ भाषाविशेषौ येषु तैः। अकृतः पात्राणां भाजनानाम्, अन्यत्र भूमिकानां च सङ्करौ व्यतिकरो येषु तैः। भावशुद्धि पदार्थानां मृष्टता अथवा भावशुद्धिः गर्हाविरहः तत्सहितैः। अन्यत्र भावाः स्थायिनों रत्यादयः तेषां शुद्धिः सजातीयविजातीयातिरस्कृतरूपकम्।' सजातीयैर्विजातीयैरतिरस्कृत-मूर्तिमान्। यादृसं वर्तमानः स्थायिभाव उदाहृतः॥' इति तल्लक्षणात्। तत् सहितैर्भोजनैरभ्यवहारैर्नाटकै रूपकविशेषैरिव रसं मधुरादिकं शृङ्गारादिकं च स्वादयन्ननुभवन् जनो भोक्तृजनः सामाजिक-जनश्च मुदमानन्दं वभार।'**

अर्थात् अनेक तरह के हीङ्ग, मिर्च, जीरा आदि से संस्कृत करने से स्वादिष्ट (यथा-शाकादि) और स्वभावतः स्वादयुक्त (यथा-आम, सन्तरा आदि) वर्तनों को मिश्रण से रहित अर्थात् एक वर्तन में एक ही भोज्य पदार्थ परोसे गये (या एक-एक वर्तन में एक ही आदमी के लिए परोसे गये) भावशुद्धि (पदार्थों की स्वच्छता या अनिन्दनीयता या प्रसन्नचित्तता) से युक्त भोजनों से अनेक विध (छः प्रकार के) रसों को, अनेकविध (चित्र-विचित्र) संस्कृत तथा प्राकृत भाषा वाले, पात्रों के मिश्रण से रहितभाव (रति आदि स्थायीभाव) की शुद्धि (एकजातीय एवं भिन्नजातीय से अतिरस्कृत रूपवाले) से युक्त नाटकों के द्वारा (शृङ्गारादि) अनेक रसों का आस्वादन करते हुए लोग हर्ष को प्राप्त हुए अर्थात् उक्त रूप नाटकों के द्वारा शृङ्गारादि रसों का आस्वादन करते हुए दर्शकों

के समान युधिष्ठिर के यज्ञ में उक्तरूप भोजनों से मधुरादि रसों का आस्वादन करते हुए भोजनकर्त्ता लोग प्रसन्न हुए।

महाकवि माघ अधोलिखित पद्य में वाणी के द्वारा प्राप्त रस की ओर सङ्केत करते हैं–

'मर्त्यलोकदुरवापमवाप्तरसोदयं
नूतनत्वमतिरक्ततयानुपदं दधत्।
श्रीपतिः पतिरसाववनेश्च परस्परं
सङ्कथामृतमनेकमसिस्वदतामुभौ॥'[७८]

अर्थात् लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण भगवान् तथा भूपति युधिष्ठिर दोनों ही मर्त्यलोक में दुर्लभ, रसता को प्राप्त, अत्यधिक स्नेह से युक्त होने के कारण क्षण-क्षण में नवीनता को प्राप्त अनेक प्रकार के सम्भाषणरूपी अमृत रस का परस्पर आस्वादन करने लगे अर्थात् बातचीत करने लगे।

माघ शृङ्गारिक चेष्टाओं की स्थिति तथा सात्त्विक भावादि का विवेचन निम्नलिखित पद्य में करते हैं–

'अनवद्यवाद्यलयगामिकोमलं
नवगीतमप्यनवगीततां दधत्।
स्फुटसात्त्विकाङ्गिकमनृत्यदुज्ज्वलं-
सविलासलासिकविलासिनीजनः॥'[७९]

महाकवि माघ प्रस्तुत पद्य में अलङ्कारों और गुणों का निरूपण करते हैं–

'प्राणच्छिदां दैत्यपतेर्नखाना-
मुपेयुषां भूषणतां क्षतेन।
प्रकाशकार्कश्यगुणौ दधानः
स्तनौ तरुण्यः परिवव्रुरेनम्॥'[८०]

अर्थात् भूषणत्व को प्राप्त तथा दैत्यराज हिरण्यकशिपु के प्राणापहरण करने (मारने) वाले, वज्र से भी कठोर नखों के क्षतों से स्पष्टरूप से कठोरता रूप गुण को व्यक्त करने वाले स्तनद्वय को धारण करती हुई युवतियों ने इन्हें चारों ओर से घेर लिया।

महाकवि माघ ने निम्नलिखित पद्य में अलङ्कार और अलङ्कार्य की स्थिति का स्पष्टरूप से सङ्केत किया है–

'प्रसाधितस्यास्य मधुद्विषोऽभू-
दन्यैव लक्ष्मीरिति युक्तमेतत्।
वपुष्यशेषेऽखिललोककान्ता
सानन्यकान्ता ह्युरसीतरा तु॥'[८१]

इस प्रकार विविध आभूषणों से अलङ्कृत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की श्री (लक्ष्मी, शोभा) एक अन्य ही हो गयी थी, यह उचित ही था; क्योंकि वह अलङ्कारों से सजाई गई श्री (शोभा) उनके सारे शरीर में निवास कर रही थी और सम्पूर्ण लोक की प्रिया थी, जब कि दूसरी श्रीभगवान् की पत्नी लक्ष्मी दूसरे की प्रिया नहीं हो सकती थी और वह केवल उनके हृदय में निवास कर रही थीं।

माघ अधोलिखित पद्य में गुणों का सङ्केत करते हैं–

'ओजस्विवर्णोज्ज्वलवृत्तशालिनः
प्रसादिनोऽनुज्झितगोत्रसंविदः।
श्लोकानुपेन्द्रस्य पुरःस्म भूयसो
गुणान्समुद्दिश्य पठन्ति बन्दिनः॥'[८२]

अर्थात् स्तुतिपाठ करने वाले वन्दी लोग, तेजस्वी वर्ण (क्षत्रिय) के उज्ज्वल व्यवहार (विजय) से शोभने वाले, अनुग्रह करने वाले एवं कुल तथा आचार को नहीं छोड़े हुए अर्थात् यादववंशोत्पन्न श्रीकृष्ण भगवान् के गुणों को लक्षितकर ओजगुण (अधिक समास आदि) से युक्त अक्षरों वाले, छन्द (वसन्ततिलका आदि) से शोभने वाले, प्रसादगुण से युक्त और कुल तथा नाम से युक्त बहुत से श्लोकों को पढ़ते थे।

महाकवि माघ की ऐसी भाषा है जो कि अलङ्कारों से अलङ्कृति होकर मधुर झङ्कार सी करती हुई प्रतीत होती है, जिसका सहृदयलोग अपने स्तरानुकूल रसास्वादन करते हैं। यथा–

'नवपलाशपलाशवनं पुरः
स्फुटपरागपरागतपङ्कजम्।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्-
ससुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः॥'[८३]

महाकवि माघ का प्रस्तुत पद्य भी अलङ्कार और अलङ्कार्य की दृष्टि से द्रष्टव्य है–

'यदङ्गनारूपसरूपतायाः
कञ्चिद् गुणं भेदकमिच्छतीभिः।
आराधितोऽद्धा मनुरप्सरोभि-
श्चक्रे प्रजाः स्वाः सनिमेषचिह्नाः॥'[८४]

भाव यह है कि द्वारकापुरी में रहने वाली अङ्गनाओं एवं स्वर्गीय अप्सराओं में केवल यही भेद था कि इन अङ्गनाओं का निमेष (पलक गिरता) था तथा अप्सराओं का निमेष नहीं होता था, शेष सौन्दर्यादि समस्त गुणों से द्वारकापुरी में निवास करने वाली, अङ्गनाएँ स्वर्ग की अप्सराओं के समान ही थी।

निम्नलिखित श्लोक गुणों की दृष्टि से ध्यातव्य है–

'स्निग्धाञ्जनश्यामरुचिः सुवृत्तो
वध्वा इवाध्वंसितवर्णकान्तेः।
विशेषको वा विशिशेष यस्याः
श्रियं त्रिलोकीतिलकः स एव॥'[८५]

अर्थात् चिकने अञ्जन के समान श्यामवर्ण वाले, सदाचारयुक्त त्रिलोकी के तिलक (श्रेष्ठ) वे श्रीकृष्ण भगवान् ही ब्राह्मणादि वर्णों की मर्यादा नष्ट नहीं करने वाली जिस (द्वारकापुरी) की शोभा को उस प्रकार बढ़ा रहे थे, जिस प्रकार (तेल आदि से बनने के कारण) चिकने अञ्जन से श्यामवर्णवाला सम्यक् प्रकार से गोलाकार (ललाट का) तिलक जिसके गौरादि वर्ण तथा शरीर-लावण्य नष्ट नहीं हुए हैं, ऐसी वधू (अङ्गना) की शोभा बढ़ा देता है।

'एतस्मिन्नधिकपयः श्रियं वहन्त्यः
संक्षोभं पवनभुवा जवेन नीताः।
वाल्मीकेररहितरामलक्ष्मणानां
साधर्म्यं दधति गिरां महासरस्य॥'[८६]

इस (रैवतक पर्वत) पर अधिक जलसम्पत्ति (जलाधिक्य) को पायी हुई (पक्षा०–बहुत बन्दरों वाली तथा लक्ष्मीरूपिणी सीताजी से युक्त, या छन्द, अलङ्कार, रीति, रस, गुण आदि रूप शोभा से युक्त) वायुजन्य वेग (पक्षा०-वेगवान् वायुपुत्र हनुमानजी) से संक्षुब्ध महासरसियां (बड़े-बड़े जलाशय) राम-लक्ष्मण से संयुक्त (पक्षा०-पति से संयुक्त सारसपत्नियों वाली) वाल्मीकिमुनि की वाणी की समानता धारण करती है।

यद्यपि अन्य काव्यशास्त्रीय सन्दर्भों की भांति अलङ्कार्य और अलङ्कार के

विभाजन के बारे में माघ के पद्यों से स्पष्ट निर्देश नहीं प्राप्त होता, तथापि उक्त उद्धरणों से उनकी तद्विषयक अवधारणा की परिकल्पना की जा सकती है।

शब्द, अर्थ और शब्द-शक्तियाँ

'नवसर्ग गते माघे नव शब्दों न विद्यते' की सहृदयाभिस्वीकृति माघ के शब्दविषयक पाण्डित्य को इङ्गित करती है। माघ अत्यन्त कुशलता से काव्योचित शब्दों का चयन करते हैं। योजनाबद्ध तरीके से न कहने पर भी उनका शब्दार्थविषयक दृष्टिकोण यत्र-तत्र स्पष्ट होता गया है। 'स्थालीपुलाकन्याय' से कुछ स्थल अवलोकनीय हैं-

महाकवि माघ के सत्कवि एवं विद्वान् होने का सङ्केत अधोलिखित पद्य से हो जाता है-

'नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे।
शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते।।'[८७]

यहाँ पर सत्कवि को शब्दार्थ की अपेक्षा है। सत्कवि विद्वान् का समकक्ष होता है। अब प्रश्न यह उठता है कि शब्द और अर्थ कैसे होने चाहिए? इसके लिए सत्कवि अथवा विद्वान् किन-किन बातों पर विचार करते हैं? इसके लिए प्रस्तुत पद्य अवलोकनीय है-

'क्षणशयितविवुद्धाः कल्पयन्तः प्रयोगा
नुदधिमहति राज्ये काव्यवद्दुर्विगाहे।
गहनमपररात्रप्राप्तबुद्धिप्रसादाः
कवय इव महीपाश्चिन्तयन्त्यर्थजातम्।।'[८८]

यहाँ पर माघ 'कल्पयन्तः प्रयोगा', 'काव्यवद्दुर्विगाहे', 'प्राप्तबुद्धि प्रसादाः' और 'अर्थजातम्' शब्दों की ओर ध्यानाकृष्ट करते हैं।

माघ का मन्तव्य है कि जिनकी बुद्धि विशद या निर्मल है, ऐसे सत्कवि अथवा विद्वान् काव्य जैसे कठिन कार्य के लिए अर्थ एवं गुण समन्वित रमणीय पदसमुदाय तथा अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जनायुक्त अर्थ समुदाय पर गहन चिन्तन करते हैं।

महाकवि माघ के इस आशय का, प्रशस्त टीकाकर मल्लिनाथ अपना मन्तव्य अधोलिखित प्रकार से रेखाङ्कित करते हैं-**'तत्र प्राप्तबुद्धिप्रसादा लब्धबुद्धिप्रकाशाः सन्तः उदधिमहति समुद्रगम्भीरे। एकत्र तुरगादिभिरपरत्र**

रसभावादिभिश्चेति भावः। अतएव दुर्विगाहे दुष्प्रवेशे राज्ये काव्ये इव काव्यवत्। प्रयोगान् सामाद्युपायानुष्ठानानि, अन्यत्रार्थगुणसाधुशब्दगुम्फान् कल्पयन्तस्तर्कयन्तः 'ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय चिन्तयेदात्मनो हितम्' (याज्ञ० आचा०अ० ११५) इति स्मरणादिति भावः। गहनं दुष्प्रापमन्यत्र दुर्दर्शमर्थजातं पुरुषार्थजातम्। त्रिवर्गमित्यर्थः। अन्यत्र वाच्यलक्ष्यव्यङ्ग्यरूपमभिधेयजातं चिन्तयन्ति विचारयन्ति।'

मल्लिनाथ की व्याख्या के आलोक में माघ का दृष्टिकोण इस रूप में आकलित होता है–

१. अर्थ पर गम्भीरता से विचारकर शब्दों का प्रयोग।

२. शान्त वातावरण में निर्मलबुद्धि होने पर रचना करना।

३. काव्य के वर्ण्यविषयानुकूल प्रयोगों की कल्पना और गुणादिसमन्वित रसभावप्रवण रचना।

४. विविध अर्थाभिव्यक्ति के लिए वाचक, लक्षक और व्यञ्जक शब्दों का अनुसंधान करना।

महाकवि माघ शब्दों की प्रवृत्ति का व्याकरणसम्मत निरूपण करते हैं, जैसा कि मम्मटादि आचार्यों ने किया है।[८९] इस दृष्टि से निम्नलिखित पद्य द्रष्टव्य है–

'असम्पादयतः कञ्चिदर्थं जातिक्रियागुणैः।
यदृच्छाशब्दवत्पुंसः संज्ञायै जन्म केवलम्॥'[९०]

अर्थात् जाति (गोत्व आदि), क्रिया (पाचकत्व आदि) और गुण (शुक्लत्व आदि) के द्वारा किसी अर्थविशेष को सम्पादन नहीं करते हुए (डित्थ-डवित्थ आदि) यदृच्छा शब्द के समान जाति (ब्राह्मणत्व आदि), क्रिया (अध्ययन आदि) तथा गुण (शौर्य आदि) के द्वारा किसी (पुण्य, कीर्ति, पुरुषार्थ आदि) प्रयोजन की सिद्धि को नहीं करते हुए पुरुष का जन्म केवल (देवदत्त, यज्ञदत्त आदि) नाम के लिए है।

जिस प्रकार जात्यादि प्रवृत्तिशून्य स्वेच्छाकल्पित डित्थादि पारिभाषिक शब्द किसी नाममात्र का अनुभव (ज्ञान-सङ्केत) कराने के लिए हैं, (उनसे प्रवृत्ति-निमित्त जन्य कोई अवयवार्थ नहीं निकलता) उसी प्रकार ब्राह्मणत्वादि जात्यादि प्रवृत्ति-शून्य किसी अर्थसिद्धि को नहीं करने वाले पुरुष का जन्म भी देवदत्त, यज्ञदत्त आदि नाम के लिए है। (उस पुरुष से कोई कार्य-विशेष सिद्ध नहीं हो सकता, अतएव उसका जन्म लेना व्यर्थ है)।

रुद्रट आदि आचार्यों ने शब्द की इस चतुष्टयी प्रवृत्ति के आधार पर अर्थालङ्कारों का निरूपण किए हैं–

'अर्थः पुनरभिधावान् प्रवर्तते यस्य वाचकः शब्दः।
तस्य भवन्ति द्रव्यं गुणः क्रिया जातिरिति भेदाः॥'[११]

रुद्रट इसी आधार पर काव्यालङ्कार के सप्तम अध्याय में अलङ्कारों का विवेचन किए हैं। इस प्रकार काव्यशास्त्रीय दृष्टि से माघ का प्रस्तुत पद्य अत्यन्त महत्त्व रखता है। माघ के ठीक बाद होने वाले रुद्रट के विवेचन पर हो सकता है, माघ का प्रभाव पड़ा हो।

'अन्यद्धि शब्दानां प्रवृत्तिनिमित्तमन्यच्च व्युत्पत्ति निमित्तम्।' यह सिद्धान्त माघ की दृष्टि में है। यहाँ पर वे व्युत्पत्ति निमित्तक शब्दों की ओर सङ्केत भी करते हैं। यथा–

'उद्धतान्द्विषतस्तस्य निघ्नतो द्वितयं ययुः।
पानार्थे रुधिरं धातौ रक्षार्थे भुवनं शराः॥'[१२]

यहाँ पीने के अर्थ में ('पा पाने' इस धातु के अर्थ में) रक्त को और रक्षा के अर्थ में ('पा रक्षणे' इस धातु के अर्थ में) संसार–इन दोनों को प्राप्त किया अर्थात् शत्रुओं को मारते हुए श्रीकृष्ण भगवान् के वाणों ने शत्रुओं का रक्त पिया ओर संसार की रक्षा की।

मल्लिनाथ ने उक्त तथ्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है–**पानार्थे धातौ 'पा पाने' इति धातौ सति रुधिरं, रक्षार्थे धातौ 'पा रक्षणे' इति भुवनं जगच्चेति द्वितयं ययुः। रुधिरमपिबन् भुवनमरक्षञ्चेति श्लेषार्थः। अत्र पानयोरभेदाध्यवसायेन रुधिरभुवनयोस्तुल्ययोगितालङ्कारः। तत्र 'पानार्थे' इत्यादिवाक्यस्य शत्रुवधेन भुवनमरक्षन्निति सूक्ष्मार्थगर्भत्वात्सौक्ष्म्यं नाम गुणः। 'अतः सङ्कल्परूपत्वं शब्दानां सौक्ष्म्यमुच्यते इति लक्षणात्।'** इस प्रकार मल्लिनाथ ने माघ के मन्तव्य की व्याख्या की है।

तथा द्रष्टव्य–

'छन्नेष्वपि स्पष्टतरेषु यत्र
स्वच्छानि नारीकुचमण्डलेषु।
आकाश साम्यं दधुरम्बराणि
न नामतः केवलमर्थतोऽपि॥'[१३]

यहाँ पर 'अम्बर' शब्द आकाश तथा वस्त्र दोनों अर्थों को कहता है, उस

स्वच्छ 'अम्बर' (वस्त्र) से आच्छादित होने पर भी स्त्रियों के कुचमण्डल (स्तन) स्पष्ट दिखलाई पड़ते थे, अतएव वे 'अम्वर' (वस्त्र) केवल नाम से ही आकाशवाचक नहीं रह गये, किन्तु अर्थ (वाचकशक्ति) से भी आकाश की समता प्राप्तकर लिए अर्थात् आकाशवाचक हो गये।

'रथचरणधराङ्गनाकराब्ज-
व्यतिकरसम्पदुपात्तसौमनस्याः।
जगति सुमनसस्तदादि नूनं
दधति परिस्फुटमर्थतोऽभिधानम्।।'[९४]

यहाँ पर 'सुमनस्' अर्थात् पुष्प पहले केवल संज्ञा मात्र से 'सुमनस्' थे, क्योंकि उनका मन सुन्दर-सुप्रसन्न नहीं था, किन्तु जब उनको श्रीकृष्ण भगवान् की अङ्गनाओं ने अपने हाथ में लिया, तब वे विशेष शोभा-सम्पन्न होने से वस्तुतः 'सुमनस्' (सुन्दर मन वाले अर्थात् प्रसन्नचित) हो गये, अतः तब से ही उनके नाम का अवयवार्थ सार्थक हो गया।

'धातूनामनेकार्थः' अर्थात् धातुओं के अनेक अर्थ हैं। इस वैयाकरण सिद्धांत के अनुसार 'भू' आदि धातुओं में अनेक अर्थ सर्वदा ही विद्यमान रहते हैं, जो व्यवहार में प्रयुक्त नहीं होने से अप्रकाशित रहते हैं और जब उपसर्ग के साथ उन धातुओं का प्रयोग किया जाता है, तब वे अर्थ प्रकाशित हो जाते हैं। यथा—ध्यातव्य है—

'सन्तमेव चिरमप्रकृतत्वाद
प्रकाशितमदिद्युतदङ्गे।
विभ्रमं मधुमदः प्रमदानां
धातुलीनमुपसर्ग इवार्थम्।।'[९५]

काव्य में उपसर्ग या प्रत्यय की व्यञ्जनाओं का महत्त्व काव्यशास्त्री भी स्वीकार करते हैं।

भिन्नार्थक किन्तु स्फुट अर्थ के प्रतिपादक शब्दों के प्रयोग की ओर भी माघ का सङ्केत है—

'दमघोषसुतेन कश्चन प्रतिशिष्टः प्रतिभानवानथ।
उपगम्य हरिं सदस्यदः स्फुटभिन्नार्थमुदाहरद्वचः।।'[९६]

कवि ऐसे अर्थवान् शब्दों का प्रयोग करता है कि सहृदय अपने स्तरानुरूप उसके अर्थ की अनुभूति करता है—

'मधुरं बहिरन्तरप्रियं कृतिनाऽवाचि वचस्तथा त्वया।
सकलार्थतया विभाव्यते प्रियमन्तर्बहिरप्रियं यथा।'[९७]

और भी–

'अतिकोमलमेकतोऽन्यतः
सरसाम्भोरुहवृन्तकर्कशम्।
वहति स्फुटमेकमेव ते
वचनं शाकपलाशदेश्यताम्।।'[९८]

तथा द्रष्टव्य–

'प्रकटं मृदु नाम जल्पतः
परुषं सूचयतोऽर्थमन्तरा।
शकुनादिव मार्गवर्तिभिः
पुरुषादुद्विजितव्यमीदृशः।।'[९९]

प्रतिभा की सम्पन्नता से प्रयुक्त वाणी (शब्दार्थ) विरुद्धभाव को व्यक्त करने वाली होकर भी हृदयग्राह्य होती है। यद्यपि यह पद्य कथावस्तु से सर्वथा सम्पृक्त होने से सीधे इस आशय को व्यक्त नहीं करता; तथापि इससे माघ का दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है। यथा–

'ब्रुवते स्म दूत्य उपसृत्य नरान्नर-
वत्प्रगल्भमतिगर्भगिरः।
सुहृदर्थमीहितमजिह्मधियां
प्रकृतेर्विराजति विरुद्धमपि।।'[१००]

भिन्नार्थक शब्दों के प्रयोग के साथ माघ अवसरानुकूल श्लेषरहित और स्फुटार्थक भाषा के प्रयोग की ओर भी सङ्केत करते हैं–

'स्पष्टं बहिः स्थितवतेऽपि निवेदयन्त-
श्चेष्टाविशेषमनुजीविजनाय राज्ञाम्।
वैतालिकाः स्फुटपदप्रकटार्थमुच्चै-
र्भोगावलीः कलगिरोऽवसरेषु पेठुः।।'[१०१]

काव्य-भाषा में माधुर्य होना माघ को अभीष्ट है, क्योंकि इससे श्रोता तत्क्षण आकृष्ट हो जाता है। माघ की मधुर शब्दावली में ही इस आशय का अवलोकन करें–

'मधुकरैरपवादकरैरिव
स्मृतिभुवः पथिका हरिणा इव।
कलतया वचसः परिवादिनी-
स्वरजिता रजिता वशमाययुः॥'[१०२]

एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है–

'मधुरया मधुबोधितमाधवी-
मधुसमृद्धिसमेधितमेधया।
मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मद-
ध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे॥'[१०३]

इस प्रकार षष्ठ सर्ग के अनेक पद्यों में मधुर वाणी की वे प्रशंसा करते हैं–

अप्रियरहित वाणी का प्रयोग महाकवि माघ को मान्य है–

'इत्थं गिरः प्रियतमा इव सोऽव्यलीकाः
शुश्राव सूततनयस्य तदाव्यलीकाः।
रन्तुं निरन्तरमियेष ततोऽवसाने
तासां गिरौ च वनराजिपटं वसाने॥'[१०४]

इस प्रकार उपर्युक्त उद्धरणों के आधार पर शब्द, अर्थ एवं शब्दशक्तियों का विवेचन किया गया है। इसमें शब्दों की प्रवृत्ति, भिन्नार्थक शब्दों का प्रयोग एवं अर्थ पर गम्भीरता से विचार किया गया है। तीनों प्रकार के शब्दों तीनों प्रकार के अर्थो एवं अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना का भी सङ्केत किया गया है।

नाट्यशास्त्रीयतत्त्व

महाकवि माघ के शिशुपालवध में भरतमुनि का कण्ठतः उल्लेख हुआ है। कुछ पद्यों में उन्होंने नाट्यशास्त्र में प्रतिपादित नाट्यतत्त्वों का उल्लेख इस प्रकार किया है कि उससे उनके नाट्यशास्त्र के गम्भीर अध्येता होने का अनुमान किया जा सकता है। माघ पूर्वरङ्ग, कञ्चुकी, नृत्य, रस आदि का उल्लेख तत्तत् परिभाषाओं के सङ्केत के साथ करते हैं।

महाकवि माघ का अधोलिखित उद्धरण पूर्वरङ्ग की दृष्टि से द्रष्टव्य है–

'पूर्वरङ्गः प्रसङ्गाय नाटकीयस्य वस्तुनः॥'[१०५]

पूर्वरङ्ग शब्द की व्युत्पत्ति–'पूर्वे रज्यतेऽस्मिन्' अर्थात् जिसमें सामाजिकों

को पहले आनन्द मिले। इस प्रकार पूर्वरङ्ग का तात्पर्य नाट्यशाला से है। मल्लिनाथ ने अपनी टीका में लिखा है–

'यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये।
कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः प्रकीर्तितः॥'[१०६]

अर्थात् नाटक आरम्भ होने के पूर्व विघ्न की शान्ति के लिए गान, वाद्यादि के साथ देवताओं की जो स्तुति की जाती है, उसको पूर्वरङ्ग कहते हैं। यद्यपि नाटक का उद्देश्य पूर्वरङ्ग नहीं है, प्रत्युत वह कथावस्तु के प्रसङ्ग को आरम्भ करने के लिए है। वस्तुतः वे नाटक के विषय नहीं हाते हैं।

महाकवि माघ ने निम्नलिखित पद्य में स्वयं को नाट्यशास्त्रज्ञ एवं काव्य गुणों से गुम्फित नाटक रचना धर्मिता की ओर सङ्केत किया है–

'दधतस्तनिमानमानुपूर्व्या
बभुरक्षिश्रवसो मुखे विशालाः।
भरतज्ञकविप्रणीतकाव्य
ग्रथिताङ्का इव नाटकप्रपञ्चाः॥'[१०७]

मुख (पक्षा०-मुखसन्धि) में मोटे (पक्षा०-विस्तृत) और क्रमशः (मुख के अतिरिक्त मध्यभाग पूँछ में) पतलापन धारण करते (पतला होते) हुए (पक्षा०–प्रतिमुख आदि सन्धियों में गोपुच्छ के समान संक्षिप्त होते हुए) सर्प, नाट्यशास्त्र के नियमों के विशेषज्ञ कवियों द्वारा रचे गये काव्य में ग्रथित अङ्कों वाले नाटकों के विस्तार के समान शोभित हुए।

प्रशस्त टीकाकार मल्लिनाथ ने अपनी टीका में लिखा है–**'मुखे मुखभागे मुखसन्धौ च विशालाः विस्तृता आनुपूर्व्या अनुक्रमेण तनिमानं तनुत्वं मुखादन्यत्र शरीरे उत्तरोत्तरं तनुत्वं दधतः, अन्यत्र प्रतिमुखादिसन्धिषु गोपुच्छवत्संक्षिप्तत्वं दधानाः अक्षिश्रवसः सर्पाः भरतज्ञो नाट्यशास्त्रज्ञः। 'भरतो नाट्यशास्त्रेऽपि इति विश्वः। तेन कविना प्रणीतं प्रकल्पितं यत्काव्यं कविकर्म लक्षणया काव्यार्थः कथावस्तु। तेन ग्रथिता गुम्फिता अङ्काः परिच्छेदरूपा अवान्तरसन्दर्भविशेषा येषु ते तथोक्ता नाटकप्रपञ्चा नाटकविस्तारा इव वभुरिति। 'प्रत्यक्षनेतृचरितो बिन्दुबीज पुरस्कृतः। अङ्को नानाप्रकारार्थसंविधान-रसाश्रयः॥' (दशरूपके ३/३०,३१) इति अङ्कलक्षणम्। मुखं प्रतिमुखङ्गर्भो-ऽवमर्श उपसंहृतिः' (दशरूपके, १/२४) इति सन्धयः॥४४॥**

तात्पर्य यह है कि नाटकों की मुख सन्धि को विस्तृत और अन्यान्य प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श, निर्वहण संधियों को क्रमशः सूक्ष्म रखना चाहिए।

महाकवि माघ प्रस्तुत श्लोक में नृत्य और नृत्त के संबंध में संकेत करते हैं–

'अनवद्यवाद्यलयगामि कोमलं
नवगीतमप्यनवगीततां दधत्।
स्फुटसात्त्विकाङ्गिकमनृत्यदुज्ज्वलं
सबिलासलासिकविलासिनीजनः॥'[१०८]

अर्थात् विलासयुक्त नर्तकियों ने, अनिन्दनीय (तत, आनद्ध, घन और शुषिर रूप चतुर्विध) वाद्यों के (द्रुत, मध्य और विलम्बितरूप त्रिविध) लयों से (अथवा अनिन्दनीय वाद्यों एवं लयों से) अनुगत, नवगीत (नया गाया हुआ) होने पर भी अनवगीत (नवगीत से भिन्न) ऐसे अर्थ द्वारा विरोध आने पर, (विरोध परिहार पक्ष में–अनिन्दनीय) और स्पष्ट (स्तम्भादि रूप) सात्त्विक तथा (भ्रूविक्षेपादिरूप) आङ्गिक भावों से युक्त नर्तन किया।

यहाँ पर जड़ता, पसीना, रोमाञ्च, स्वरभङ्ग, कम्पन, विवर्णता, अश्रु और प्रलय ये आठ 'सात्त्विक' भाव हैं। सिर, नेत्र, हाथ, वक्षःस्थल, कटि और चरण के भेद से छः 'आङ्गिक' भाव हैं।

महाकवि माघ के आशय को स्पष्ट करते हुए प्रशस्त टीकाकार मल्लिनाथ ने अपनी टीका में–**'सविलासो विलासयुक्तो लासिकविलासिनीजनो नर्तकस्त्रीजनः सविलासलासिकविलासिनीजनः।' नर्तकीलासिके समे' इत्यमरः अनवद्यमगर्ह्यं यत् वाद्यं वंशादि तस्य लयः साम्यं गीतस्य समकालत्वं तद्गामि। द्रुतविलम्बादिमा नानुवर्तीत्यर्थः। 'तालःकालक्रियामानं लयः साम्यम्' इत्यमरः। नवं गीतं यस्य तन्नवगीतं तथाप्यनवगीततां दधदिति विरोधेऽपिशब्दः। अविगर्हितत्वं दधदित्यः विरोधाद्विरोधाभासः। 'अवगीतं तु निर्वादे मुहुर्गीतेऽविगर्हिते' इति विश्वः। सत्त्वमन्तःकरणं तेन निर्वृत्तं नृत्यं सात्त्विकम्। अङ्गं हस्तादि तेन निर्वत्तमाङ्गिकम्। 'निर्वृत्तेत्वङ्गसत्त्वाभ्यां द्वे त्रिष्वाङ्गिकसात्त्विके इत्यमरः। ते स्फुटे यस्मिंस्तत्तथोक्तम्। वाचिकस्याप्युपलक्षणमेतत्। तथाह भगवान्भरतः 'पदार्थाभिनयो नाम ज्ञेयो वागङ्गसत्त्वजः' इति। अतएव कालिदासोऽपि 'अङ्गसत्त्ववचनाश्रयं मिथः स्त्रीषु नृत्तमुपधाय दर्शयन्' (रघुवंशे, १९/३६) इति। कोमलं मधुरनृत्यमुज्जवलमुद्धतं चानृत्यत्। तथोक्तं दशरूपके– 'भावाश्रयं तु नृत्यं स्यान्नृतं ताललयाश्रयम्। आद्यं पदार्थाभिनयो मार्गादेशी तथापरः॥ मधुरोद्धतभेदेन तद्द्वयं द्विविधं पुनः। लास्यदण्डकरूपेण**

नाटकाद्युपचारकम्॥' (१-९,१०) इति ॥९९॥ अर्थात् नृत्य उसे कहते हैं जो भावात्मक होता है, तथा जो ताल और लय के अनुसार होता है उसे नृत्त कहते हैं। नृत्य द्वारा पदार्थाभिनय होता है। दूसरा अर्थात् नृत्त देशज होता है। मधुर और उद्धत भेद से ये दोनों दो प्रकार के होते हैं तथा लास्य और ताण्डवरूप से नाटकादि में सहायक होते हैं।

महाकवि माघ निम्नलिखित श्लोक में नाटक के लक्षण एवं उद्देश्य का सङ्केत करते हैं–

'स्वादयन्रसमनेकसंस्कृत-
प्राकृतैरकृतपात्रसङ्करैः।
भावशुद्धिसहितैर्मुदं जनो
नाटकैरिव बभार भोजनैः॥'[१०१]

अनेक तरह के हीङ्ग, मिर्च, जीरा आदि से संस्कृत करने से स्वादिष्ट (यथा-शाकादि) और स्वभावतः स्वादयुक्त (यथा-आम, सन्तरा आदि) वर्तनों को मिश्रण से रहित अर्थात् एक वर्तन में एक ही भोज्य पदार्थ परोसे गये (या एक-एक वर्तन में एक-एक ही आदमी के लिए परोसे गये), भावशुद्धि (पदार्थों की स्वच्छता, या अनिन्दनीयता, या प्रसन्नचित्तता) से युक्त भोजनों से अनेकविध (छः प्रकार के) रसों को, अनेकविध (चित्र-विचित्र) संस्कृत तथा प्राकृत भाषा वाले, पात्रों के मिश्रण से रहित भाव (रति आदि स्थायी भाव) की शुद्धि (एकजातीय एवं भिन्नजातीय से अतिरस्कृत रूप वाले) से युक्त नाटकों के द्वारा (शृङ्गारादि) अनेक रसों का आस्वादन करते हुए लोग हर्ष को प्राप्त हुए अर्थात् उक्त रूप नाटकों के द्वारा शृङ्गारादि रसों का आस्वादन करते हुए दर्शकों के समान युधिष्ठिर के यज्ञ में उक्त रूप भोजनों से मधुरादि रसों का आस्वादन करते हुए भोजनकर्त्ता लोग प्रसन्न हुए।

मूर्धन्य टीकाकार मल्लिनाथ इस आशय को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि–**'तत्सहितैर्भोजनैरम्यवहारैर्नाटकै रूपकविशेषैरिव रस मधुरादिकं शृङ्गारादिकं च स्वादयन्ननुभवन् जनो भोक्तृजनः सामाजिकजनश्च मुदमानन्दं बभार॥'** अर्थात् सामाजिक लोग नाटक अथवा रूपक आदि के द्वारा मधुर शृङ्गार रस का रसास्वादन करके आनन्दित हो उठते हैं, या आनन्द का अनुभव करते हैं। नाटक में रस का परिपाक पूर्णरूप से तथा अनेकरूप से पाया जाता है। नाटक में शृङ्गार या वीर कोई भी अङ्गी रस हो सकता है, तथा अन्य सभी रस अङ्गरूप में सन्निविष्ट किये जा सकते हैं।

महाकवि माघ अधोलिखित पद्य में कञ्चुकी का भी उल्लेख करते हैं–

'यानाज्जनः परिजनैरवतार्यमाणा
राज्ञीर्नरापनयनाकुलसौविदल्लाः।
स्त्रस्तावगुण्ठनपटाः क्षणलक्ष्यमाण–
वक्त्रश्रियः सभयकौतुकमीक्षते स्म॥'[११०]

अर्थात् लोग, सवारी (पालकी या गाड़ी) से परिजनों (दासी या कञ्चुकी आदि) से उतारी जाती हुई, पुरुषों को हटाने में व्यस्त कञ्चुकियों वाली, लटकते हुए घूँघट के वस्त्रवाली तथा क्षणमात्र देखी गई मुखशोभावाली रानियों को भय तथा कौतुहल के साथ देख रहे थे।

मल्लिनाथ कञ्चुकी का आशय इस प्रकार स्पष्ट करते हुए– **'नराणामालोकिजनानामपनयनेऽपसारणे आकुलाः सौविदल्लाः कञ्चुकिनो यासां ताः।' सौविदल्लाः कञ्चुकिनः' इत्यमरः'** लिखा है।

महाकवि माघ शिशुपालवध में अर्थप्रकृतियों एवं अवस्थाओं का अवान्तररूप में सङ्केत करते हैं। वे शृङ्गारी नायक और नायिकाओं का भी भेदोपभेद उल्लेख करते हैं।

सन्दर्भ :

१. का०अ०, ६/६४
२. द्रष्टव्य-कालिदासाभिमतं काव्यस्वरूपम्। डॉ० रहसविहारी द्विवेदी, (सागरिका २८/४)
३. का०अ०, १/२
४. शिशु० - क०वं०प०/ ५
५. र०बं०, १/३
६. शिशु०, १/२९
७. शिशु०, ३/३१
८. शिशु०, २/७३
९. शिशु०, २/७५
१०. शिशु०, २/७९
११. शिशु०, १४/६
१२. शिशु०, १४/४९
१३. शिशु०, १/७४

१४. शिशु०, १४/६४
१५. सां०का०, ९
१६. श०य०, ४० अ०, ८ म०
१७. का०अ०, १/११-१२
१८. ध्वन्या०लो०, १/४
१९. ध्वन्या०लो०, १/६
२०. उ०रा०च०, २/५
२१. शिशु०व०, २/९४
२२. शिशु०व०, २/८९
२३. शिशु०व०, २/७६
२४. शिशु०व०, २/७५
२५. का०ल०, १/५
२६. शिशु०व०, २/७७
२७. शिशु०व०, २/७८
२८. अ०पु०, ३३७/३
२९. शिशु०व०, २/७९
३०. शिशु०व०, २/८०
३१. शिशु०व०, ३/३५
३२. शिशु०व०, ११/६
३३. शिशु०व०, २०/३५
३४. का०अ०, १/९
३५. शिशु०व०, २/८६
३६. शिशु०व०, १२/२४
३७. शिशु०व०, ४/३५
३८. काव्यादर्श, १/१०
३९. ध्व०का०-१, वृत्ति, पृ० ६ व ९
४०. का०सू०वृ०, १/१/१
४१. का०प्र०, पृ १०
४२. का०प्र०, १/४
४३. का०प्र०, १/२
४४. का०अ०, १/१६
४५. का०अ०, १/३६

४६. र०वं०, १/१
४७. शिशु०, २/८६
४८. शिशु०, २/८३
४९. शिशु०, २/८७
५०. शिशु०, २/७
५१. शिशु०, २/६९
५२. शिशु०, २/१३
५३. ध्व०, १/६
५४. शिशु०, २/१५
५५. शिशु०, २/२२
५६. शिशु०, २/२३
५७. शिशु०, २/२४
५८. शिशु०, २/४७
५९. शिशु०, २/७४
६०. शिशु०, ४/१७
६१. ध्व०, ४/४
६२. रस०,पृ०-४
६३. रस०,पृ०-४
६४. ध्वन्या०, १/५
६५. शिशु०, क०वं०प० ५
६६. ध्वन्या०पृ०-४२२
६७. का०प्र०, १/१
६८. शिशु०, ४/५३
६९. शिशु०, ४/१०
७०. शिशु०, १४/४
७१. शिशु०, ११/६
७२. शिशु०, २/८३
७३. शिशु०, ४/१७
७४. का०प्र०, ८/६७
७५. शिशु०, २/७४
७६. शिशु०, २/८७
७७. शिशु०, १४/५०

७८. शिशु०, १३/६९
७९. शिशु०, १३/६६
८०. शिशु०, ३/१४
८१. शिशु०, ३/१२
८२. शिशु०, १२/३५
८३. शिशु०, ६/२
८४. शिशु०, ३/४२
८५. शिशु०, ३/६३
८६. शिशु०, ४/५९
८७. शिशु०, २/८६
८८. शिशु०, ११/६
८९. का०प्र०द्वि०उल्ला०
९०. शिशु०, २/४७
९१. का०अ०, ७/१
९२. शिशु०, १९/१०३
९३. शिशु०, ३/५६
९४. शिशु०, ७/२८
९५. शिशु०, १०/१५
९६. शिशु०, १६/१
९७. शिशु०, १६/१७
९८. शिशु०, १६/१८
९९. शिशु०, १६/१९
१००. शिशु०, ९/६२
१०१. शिशु०, ५/६७
१०२. शिशु०, ६/९
१०३. शिशु०, ६/२०
१०४. शिशु०, ५/१
१०५. शिशु०, २/८
१०६. शिशु० टीका, पृ० ५२
१०७. शिशु०, २०/४४
१०८. शिशु०, १३/६६
१०९. शिशु०, १४/५०
११०. शिशु०, ५/१७

षष्ठ अध्याय

अन्य शास्त्रों के सन्दर्भ

गजशास्त्र

महाकवि माघ पशुविद्या, सङ्गीतशास्त्र, कामशास्त्र आयुर्वेदशास्त्र और अन्य शास्त्रों के भी अच्छे ज्ञाता थे। गजों और अश्वों के लक्षणों से लेकर उनके स्वभाव की छोटी से छोटी बातों की चर्चा कवि ने की है। यहाँ तक कि ऊँटों और खच्चरों से लेकर बैलों और भैंसों के स्वभावों तथा कार्यों की भी चर्चा की है। साथ ही युद्धस्थल के लिए इन सब के खाद्य पदार्थों तथा उपयोगी औषधियों की भी अच्छी चर्चा की है। ऊँटों तथा जङ्गली साँड़ों और बैलों की प्रकृति का कवि ने इतना स्वाभाविक और सुन्दर वर्णन किया है कि उसमें रेखाचित्र प्रस्तुत करने की पूर्ण क्षमता है। इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि महाकवि माघ पशुविद्या के अच्छे ज्ञाता थे। साथ ही साथ सङ्गीतशास्त्र में स्वरों के विषय में तथा सङ्गीत से सम्बन्धित सभी पहलुओं से भलीभाँति परिचित थे। कामशास्त्र के विषय में तो जितना भी कहा जाय कम है। इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि माघ सभी विद्याओं के एक कुशल ज्ञाता थे।

महाकवि माघ हाथियों के स्वाभाविक स्थिति का वर्णन निम्नलिखित पद्यों में की है, जो इस प्रकार है–

'गण्डूषमुज्झितवता पयसः सरोषं
नागेन लब्धपरवारणमारुतेन।
अम्भोधिरोधसि पृथुप्रतिमानभाग-
रुद्धोरुदन्तमुसलप्रसरं निपेते॥'[1]

अर्थात् दूसरे गजराज के मद की सुगन्ध पाकर एक गजराज क्रोध के साथ अपने मुखस्थ जल को बाहर फेंककर समुद्रतट पर मसल के समान दोनों विशाल दाँतो के प्रहार करने के वेग को निरुद्ध करते हुए कोई अवरोधक न होने के कारण स्वयं गिर पड़ा।

'स्तम्भं महान्तमुचितं सहसा मुमोच
दानं ददावतितरां सरसाग्रहस्तः।
बद्धापराणि परितो निगडान्यलावीत्-
स्वातन्त्र्यमुज्ज्वलमवाप करेणुराजः॥'[२]

अर्थात् एक गजराज ने अनियन्त्रित स्वच्छन्दता प्राप्त की। उसने अपने चिरपरिचित महान् स्तम्भ को एकाएक तोड़ दिया। हस्त (शुण्ड) के अग्रभाग को आर्द्र (गीला) करके प्रचुर मात्रा में दान दिया अर्थात् मदजल गिराया तथा चारों ओर से पिछले पैरों को बाँधने वाली बेड़ियों को तोड़ डाला। गजराज की भाँति राजा भी इसी प्रकार की उज्ज्वल स्वतंत्रता प्राप्त करता है वह भी अपने बन्धनों को तोड़ता है, हाथ में जल लेकर ब्राह्मणों को दान करता है तथा कारागार में पड़े हुए शत्रुओं की बेड़ियाँ काट देता है।

प्रस्तुत श्लोक में महाकवि माघ ने यह व्यक्त किया है कि महान व्यक्ति को बल द्वारा बश में नहीं किया जा सकता है–

'जज्ञे जनैर्मुकुलिताक्षमनाददाने
संरब्धहस्तिपकनिष्ठुरचोदनाभिः।
गम्भीरवेदिनि पुरः कवलं करीन्द्रे
मन्दोऽपि नाम न महानवगृह्य साध्यः॥'[३]

अर्थात् हठीला गजराज कुपित महावत द्वारा अत्यन्त निष्ठुरतापूर्वक अंकुश लगाये जाने पर भी आँखें मूँदकर जब खड़ा ही रह गया और अपना ग्रास नहीं ग्रहण किया; तब लोगों ने जान लिया कि जो सचमुच महान होते हैं, वे क्षीणशक्ति होने पर भी बलपूर्वक वश में नहीं लाये जा सकते। यहाँ गम्भीरवेदी शब्द पारिभाषिक है, जिसका लक्षण है कि जो हाथी अंकुश द्वारा चमड़ी काट देने पर, रक्त बहा देने पर तथा मांस काट देने पर भी अपने होश में नहीं आता, वह गम्भीरवेदी कहलाता है।

हाथी माघ को प्रिय था। वे इस महाजन्तु को, वर्णन तथा उपमान आदि के प्रसङ्ग में अधिकाधिक चर्चा का विषय बनाते हैं। यथा–

'विगतसस्यजिघत्समघट्टयत्-
कलमगोपवधूर्न मृगव्रजम्।
श्रुततदीरितकोमलगीतक
ध्वनिमिषेऽनिमिषेक्षणमग्रतः॥'[४]

अर्थात् आश्विन के महीने में धान की रखवाली करने वाली स्त्रियाँ अपने आगे खड़े उन हरिणों (जङ्गली जानवरों) को डराकर नहीं भगातीं, जो निर्मिमेष नयनों से धान को खाने की इच्छा त्यागकर उनके द्वारा कोमल स्वर में गाये जाने वाले गीतों की मनोहरध्वनि को सुन रहे थे। भाव यह कि जहाँ धान की रक्षा के लिए डराकर मृगों को भगाना चाहिए था, वहाँ कोमल गीत से ही कार्य सुकर हो गया।

महाकवि माघ निम्नलिखित श्लोक में यह दर्शाया है कि जिस प्रकार से समाज में प्रबलव्यक्ति से निर्बलव्यक्ति डरता है, ठीक उसी प्रकार हाथी और ऊँट की दशा है–

'आरक्षमग्नमवमत्य सृणिं शिताग्र-
मेकः पलायत जवेन कृतार्तनादः।
अन्यः पुनर्मुहुरुदप्लवतास्तभार-
मन्योन्यतः पथि बताबिभितामिमोष्ट्रौ॥'[५]

अर्थात् मार्ग में चलते हुए हाथी और ऊँट एक दूसरे से डर रहे थे, यह बड़े विस्मय की बात थी। (कैसे डर रहे थे?) एक हाथी कुम्भस्थल के नीचे तक धँसे हुए अंकुश को कुछ न समझकर अत्यन्त करुण क्रन्दन करते हुए जोर से भाग रहा था और उधर ऊँट अपने बोझ को गिराकर बार-बार उछलकूद कर रहा था। हाँलाकि इसमें उन्होंने पशुओं के स्वाभाविक चरित्र का वर्णन किया है।

प्रस्तुत श्लोक में कवि ने हाथी और घोड़ों की गति का अवलोकन कर बतला रहा है कि सभी प्राजी अपनी जाति के अनुरूप काम करते हुए प्रीति के भाजन होते हैं। यथा–

'आयस्तमैक्षत जनश्चटुलाग्रपादं
गच्छन्तमुच्चलितचामरचारुमश्वम्।
नागं पुनर्मृदु सलीलनिमीलिताक्षं
सर्वः प्रियः खलु भवत्यनुरूपचेष्टः॥'[६]

महाकवि माघ निम्नलिखित श्लोक में पशुओं के जातियों के स्वभाव का वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

'त्रस्तः समस्तजनहासकरः करेणो-
स्तावत्खरः प्रखरमुल्ललयाञ्चकार।
यावच्चलासनविलोलनितम्बबिम्ब-
विस्त्रस्तवस्त्रमवरोधवधूः पपात॥'[७]

अर्थात् हथिनी से डरा हुआ गदहा सभी लोगों को हँसाते हुए (जाति स्वभाव वश) तब-तक अत्यन्त उछल-कूद मचाता रहा, जब-तक उसके ऊपर की काठी के गिर जाने के कारण उस पर बैठी हुई अन्त:पुर अर्थात् रनिवास की दासी गिर गई और उसके नितम्बभाग से उसका वस्त्र हट गया।

महाकवि माघ प्रस्तुत श्लोक में हाथियों के नहाने का वर्णन करते हुए कहता है कि–

'आलोलपुष्करमुखोल्लसितैरभीक्ष्ण-
मुक्षाम्बभूवुरभितो वपुरम्बुवर्षैः।
खेदायतश्वसितवेगनिरस्तमुग्ध-
मूर्धन्यरत्ननिकरैरिव हास्तिकानि॥'[८]

अर्थात् हाथियों के झुण्ड (जल में घुसकर) मानों मार्ग में चलने के श्रम के कारण ली गई लम्बी उच्छासों के वेग से बाहर फेंकी हुई शिर में पैदा होने वाली मनोहर गजमुक्ताओं के समूहों की भाँति अपने चञ्चल सूँड़ के छिद्रों से ऊपर फेंकी गई जल की फुहारों से, अपने शरीर को निरन्तर सीञ्चने लगे।

प्रस्तुत पद्य में माघ ने उपमान के माध्यम से कितना सुन्दर वर्णन किया है–

'ये पक्षिणः प्रथममम्बुनिधिं गतास्ते
येऽपीन्द्रपाणितुलितायुधलूनपक्षाः।
ते जग्मुरद्रिपतयः सरसीर्विगाढु-
माक्षिप्तकेतुकुथसैन्यगजच्छलेन॥'[९]

अर्थात् जो पक्षधारी (पर्वत) थे, वे पहले ही (इन्द्र के भय से) समुद्र में चले गये थे और जो इन्द्र के हाथसे फेंके गये वज्र से छिन्न पक्ष वाले हो गये थे, वे ही (पक्षविहीन) पर्वतराज मानों ध्वजाओं एवं अम्बारिओं से रहित सेना के गजों के बहाने से महान सरोवरों में अवगाहन करने के लिए चले आये थे।

महाकवि माघ ने निम्नलिखित श्लोक में भी उपमान के माध्यम से कार्तिक रूपी हाथी के आगमन की सूचना मतवाले हाथी से किस प्रकार कर रहा है–

'कृतमदं निगदन्त इवाकुली-
कृतजगत्त्रयमूर्जमतङ्गजम्।
ववुरयुक्छदगुच्छसुगन्धयः
सततगास्ततगानगिरोऽलिभिः॥'[१०]

तात्पर्य यह कि जिस प्रकार मतवाले हाथी के आगमन पर लोग चिल्लाने लगते हैं–भागो-भागो, यह मतवाला हाथी इधर ही आ रहा है। मानो इसी प्रकार कार्तिकरूपी मतवाले हाथी के आगमन की सूचना शरद् की वायु भी दे रही थी। मतवाले हाथी के आगमन पर भी इसी प्रकार की वायु बहती है। कार्तिक मास अत्यन्त कामोत्तेजक होता है और चित्त को विकारी बनाने वाला है।

'विगतवारिधरावरणाः क्वचिद्-
ददृशुरुल्लसितासिलतासिताः।
क्वचिदिवेन्द्रगजाजिनकञ्चुकाः
शरदि नीरदिनीर्यदवो दिशः॥'[११]

अर्थात् यदुवंशियों ने शरदऋतु में कहीं पर मेघ के आवरण से रहित अर्थात् मेघरहित (अतएव) स्फुरित हुई लतातुल्य तलवार वाली तथा कहीं पर मेघयुक्त (अतएव) ऐरावत के (शुभ्र) चर्मरूपी वस्त्र (चोली) वाली दिशाओं को देखा।

'पतिते पतङ्गमृगराजि निजप्रति-
बिम्बरोषित इवाम्बुनिधौ।
अथ नागयूथमलिनानि जगत्-
परितस्तमांसि परितस्तरिरे॥'[१२]

अर्थात् सूर्य रूपी सिंह मानो पश्चिम समुद्र के जल में जब अपने प्रतिबिम्ब को देखकर क्रोध से कूद पड़ा, तब हाथियों के समान काले अन्धकार ने समस्त जगत् को आच्छादित कर लिया।

'कदलीप्रकाण्डरुचिरोरुतरौ
जघनस्थलीपरिसरे महति।
रशनाकलापकगुणेन वधूर्म-
करध्वजद्विरदमाकलयत्॥'[१३]

अर्थात् रमणियों ने अपने कदली के समास सुन्दर जंघारूपी वृक्षों से सुशोभित विस्तृत जघनप्रदेशरूपी स्थलों में करधनियों के रज्जु से कामदेवरूपी हाथी को बाँध दिया।

'क्षितितटशयनान्तादुत्थितं दानपङ्क-
प्लुतबहुलशरीरं शाययत्येष भूयः।
मृदुचलदपरान्तोदीरितान्दूनिनादं
गजपतिमधिरोहः पक्षकव्यत्ययेन॥'[१४]

अर्थात् भूतल रूपी शैय्या से उठा हुआ जो महाकाय गजपति जल तथा कीचड़ से लथपथ हो रहा था और धीरे-धीरे चलते हुए जिसके पिछले पैरों में बँधी जञ्जीर शब्द कर रही थी, उसे हाथीवान् दूसरी करवट में सुला रहा था।

'परिणतमदिराभं भास्करेणांशुवाणै-
स्तिमिरकरिघटायाः सर्वदिक्षु क्षतायाः।
रुधिरमिव वहन्त्यो भान्ति बालातपेनः
च्छुरितमुभयरोधोवारितं वारि नद्यः॥'[१५]

अर्थात् नदियाँ प्रातःकाल की धूप से मिश्रित होने के कारण पुरानी मदिरा के समान लालवर्ण के अपने दोनों तटों के बीच में अवरुद्ध अपने जल को मानों सभी दिशाओं में सूर्य द्वारा किरणरूपी वाणों से आहत अन्धकाररूपी हाथियों के रक्त की भाँति बहाती हुई शोभा दे रही है।

'उत्क्षिप्तगात्रः स्म विडम्बयन्नभः
समुत्पतिष्यन्तमगेन्द्रमुच्चकैः।
आकुञ्चितप्रोह निरूपितक्रमं
करेणुरारोहयते निषादिनम्॥'[१६]

अर्थात् शरीर के आगे के हिस्से को ऊपर उठाया हुआ तथा भविष्य में आकाश की ओर उठते हुए पर्वतराज का अनुकरण करता हुआ और ऊँचा (विशालकाय) हाथी अपने (हाथी के) संकुचित किये हुए पिछले पैर के निचले सन्धि स्थान पर पैर को रखे हुए महावत को चढ़ा रहा था।

'नानाविधाविष्कृतसामजस्वरः
सहस्रवर्त्मा चपलैर्दुरध्ययः।
गान्धर्वभूयिष्ठतया समानतां
स सामवेदस्य दधौ बलोदधिः॥'[१७]

अर्थात् उस समय भगवान् श्रीकृष्ण की सेना का वह विशाल समुद्र सामवेद की समानता धारण कर रहा था। वह सैन्यसमुद्र विविध प्रकार के हाथियों के स्वर से सम्बन्धित था, सहस्रों मार्गों से चल रहा था। अश्वों की अधिकता के कारण चञ्चल लोगों के लिए भी दुर्गम था। इसी प्रकार सामवेद भी अनेक प्रकार के रथन्तर साम स्वरों से युक्त है, सहस्र शाखाओं वाला है तथा गान्धर्वगान की अधिकता के कारण चञ्चलमति के लोगों के लिए दुर्गम है।

महाकवि माघ निम्नलिखित श्लोक में 'हाथियों को एक साथ इसलिए

नहीं खड़ा किया गया था कि कहीं वे आपस में लड़ न पड़ें।' का वर्णन किया है–

'रथवाजिपत्तिकरिणीसमाकुलं
तदनीकयोः समगत द्वयं मिथः।
दधिरे पृथक्करिण एव दूरतो
महतां हि सर्वमथवा जनातिगम्।।'[१८]

'प्रत्यन्यनागं चलितस्त्वरावता
निरस्य कुण्ठं दधतान्यमङ्कुशम्।
मूर्धानमूर्ध्वायतदन्तमण्डलं
धुवन्नरोधि द्विरदो निषादिना।।'[१९]

अर्थात् दूसरे प्रतिद्वन्दी हाथी की ओर दौड़ने पर दन्तमण्डलों समेत मुख को ऊपर फैलाये हुए गजराज को पीलवान् ने शीघ्रता के साथ पहले कुण्ठित अङ्कुश को निकालकर जब अन्य तीक्ष्ण अङ्कुश से मारा, तब वह रुक गया और अपने शिर को हिलाने लगा।

'मन्द्रैर्गजानां रथमण्डलस्वनै-
र्निजुह्नावे तादृशमेव बृंहितम्।
तारैर्बभूवे परभागलाभतः
परिस्फुटैस्तेषु तुरङ्गहेषितैः।।'[२०]

अर्थात् रथसमूह की गम्भीर ध्वनियों के साथ वैसा ही गम्भीर हाथियों का वृंहित (गरजना, एक रूप होने के कारण) छिप गया अर्थात् अलग नहीं सुनाई पड़ा, किन्तु उच्च घोड़ों का हिनहिनाना तीक्ष्ण होने के कारण उन (रथगजादि की ध्वनियों) में स्पष्ट हो गया अर्थात् रथध्वनि के समान गम्भीरता होने से हाथियों का गरजना तो अलग स्पष्ट सुनाई नहीं पड़ता था, किन्तु उच्च स्वर होने से घोड़ों का हिनहिनाना स्पष्ट सुनाई पड़ता था।

अन्वेतुकामोऽवमताङ्कुशग्र-
हस्तिरोगतं साङ्कुशमुद्वहञ्शिरः।
स्थूलोच्चयेनागमदन्तिकागतां
गजोऽग्रयाताग्रकरः करेणुकाम्।।'[२१]

अर्थात् समीप आने वाली हथिनी के पीछे-पीछे चलने का इच्छुक कोई

हाथी पीलवान की कोई परवाह न कर अङ्कुश के लगने से अपने शिर को तिरछा किये हुए अपनी सूँड़ को आगे फैलाकर बहुत धीरे-धीरे चल रहा था।

'वन्येमदानानिलगन्धदुर्धराः
क्षणं तरुच्छेदविनोदितक्रुधः।
व्यालद्विपा यन्तृभिरुन्मतिष्णवः
कथंचिदारादपथेन निन्यिरे॥'[२२]

अर्थात् जङ्गली हाथियों के मदजल से सुगन्धित वायु को सूँघकर क्रोधान्ध एवं कठिनाई से वश में करने योग्य सेना के हाथी थोड़ी देर तक वृक्षों को तोड़ताड़कर अपना क्रोध दूर करने लगे। इस प्रकार अत्यन्त मदोन्मत्त उन दुष्ट हाथियों को महावत लोग बड़ी कठिनाई के साथ दूर-दूर से बिना मार्ग की भूमि से ले चलने लगे।

'भग्नद्रुमाश्चक्रुरितस्ततो दिशः
समुल्लसत्केतनकाननाकुलाः।
पिष्टाद्रिपृष्ठास्तरसा च दन्तिन-
श्चलन्निजाङ्गाचलदुर्गमा भुवः॥'[२३]

अर्थात् हाथियों ने मार्ग में चारों ओर के वृक्षों को तोड़ डाला और चमकती हुई सेना की पताका रूपी वन पंक्तियों से सभी दिशाओं को व्याप्त कर दिया, अपने बल से पर्वत के शिखरों के पृष्ठभाग को पीस डाला तथा चलते हुए अपने शरीर रूपी पर्वतों से सारी भूमि को एकदम दुर्गम बना दिया।

इस महाजन्तु के विषय में शिशुपालवध के कुछ और अन्य उद्धरण भी द्रष्टव्य हैं–

१२/५०,५४,५५,५८,५९,६०,६१,६२,६४,६५,७२,७७,१३/५,६ इत्यादि।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि महाकवि माघ हाथियों के पूरे स्वभावों का विस्तृत वर्णन किया है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि माघ एक महावत भी थे। जिसके कारण इन्होंने इस महाकाय जन्तु का साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया है।

अश्वशास्त्र

महाकवि माघ अश्वविद्या से भलीभाँति परिचित थे। अश्वों के लक्षणों से लेकर उनकी गति एवं चाबुक के लक्षण शिशुपालवध में देखने को मिलते हैं।

घोड़ों की स्वाभाविक दिनचर्या एवं उनकी घुड़सवारी करने की विधि का उन्हें ज्ञान था। घोड़ों की सरपट नामक गति को सिखाने के लिए नौ प्रकार की वीथियों तथा घोड़े के खाने के समय एवं सोने के समय से भी वे परिचित थे। अश्वों के भेदों तथा गुण-दोषों की भी उन्हें प्रामाणिक जानकारी थी। निम्नलिखित श्लोकों में अश्वों के सम्बन्ध में जो जानकारी प्राप्त होती है वह उनके अश्वशास्त्र में निष्णात् होने की पुष्टि करती है।

महाकवि माघ निम्नलिखित श्लोक में घोड़े की गति एवं चाबुक के लक्षणों की शास्त्रीय बातों की चर्चा करते हुए कहते हैं, कि–

'तेजोनिरोधसमतावहितेन यन्त्रा
सम्यक्कशात्रयविचारवता नियुक्तः।
आरट्टजश्चटुलनिष्ठुरपातमुच्चै
श्चित्रं चकार पदमर्घपुलायितेन॥'[२४]

अर्थात् तीव्रवेग को रोकने वाली लगाम को थामने में सावधान एवं उत्तम, मध्यम और अधम–इन तीन प्रकार की चाबुकों के प्रयोगों को जानने वाले घुड़सवारों से भलीभाँति हाँके गये ऊँचे, आरट्ट अर्थात् अरब देश में उत्पन्न घोड़े अपने विचित्रपादविक्षेप द्वारा कभी अत्यन्त चञ्चल और कभी कठोरभाव से मण्डलाकार गति विशेष से चल रहे थे। इसमें घोड़े की गति एवं चाबुक के लक्षणों की शास्त्रीय बातों की चर्चा की गई है।

तात्पर्य यह है कि घोड़े को तीन प्रकार की चाबुकें लगाई जाती हैं। कभी कठोर, कभी साधारण और कभी बहुत साधारण। उनके अनुसार घोड़ों की गति भी कभी अत्यन्त वेगवती, कभी मध्यम और कभी अतिसाधारण होती है। घोड़े के वेग को रोकने वाली लगाम होती है। भगवान् श्रीकृष्ण की सेना के घुड़सवार अश्वशास्त्र की इन सभी बातों के विशेषज्ञ थे। वे विचित्र ढङ्ग से कभी चञ्चल और कभी गम्भीर पादक्षेप करते थे।

महाकवि माघ ने प्रस्तुत श्लोक में नये घोड़े को पाँचों प्रकार की चाल सिखाने के लिए किस प्रकार से अभ्यास कराया जाता है? उसका उल्लेख किया है। यथा–

'अव्याकुलं प्रकृतमुत्तरधेयकर्म-
धाराः प्रसाधयितुमव्यतिकीर्णरूपाः।
सिद्धं मुखे नवसु वीथिसु कश्चिदश्वं
वल्गाविभागकुशलो गमयाम्बभूव॥'[२५]

अर्थात् लगाम के (चौदह प्रकार के) विभाग करने में निपुण अर्थात् अश्व की षड्विध प्रेरणाओं को जानने वाला कोई घुड़सवार, नहीं घबड़ाने वाले सुसज्जित तथा छः दिशाओं में मुख को मोड़ने में अभ्यस्त घोड़े को युद्धोत्तर कर्त्तव्य के लिए पृथक्-पृथक् (स्पष्ट रूप में) धाराओं अश्वों की पाँच प्रकार की चाल) को सिखाने के लिए नौ प्रकार की वीथियों में चलाने (घुमाने) लगा।

लगाम के चौदह प्रकार–(मल्लिनाथ की श्लोक नं० ६० की टीका से उद्धृत)

'उत्क्षिप्ता शिथिला तथोत्तरवती मन्दा च वैहायसी।
विक्षिप्तैककरार्धकंधरसमाकीर्णा विभक्ता तथा॥
अत्युत्क्षिप्ततलोद्धृते खलु तथा व्यागूढगोकर्णिके।
वाहानां कथिताश्चतुर्दशविधा वल्गाप्रभेदा अमी॥'

भोज के अनुसार छः प्रकार की प्रेरणाएँ–

'वाहनं प्रतिवाहानां षड्विधं प्ररेणं विदुः।
रागावल्गाकशापार्ष्णिप्रतोदरवभेदतः॥' (मल्लिनाथ की टीका से)

छः दिशाओं में मुख मोड़ने में अभ्यस्त घोड़े का लक्षण मल्लिनाथ ने अपनी टीका में–

'सृक्काधरोष्ठसितफेनलवाभिराम
फूत्कारवायुपदमुन्नतकन्धराग्रम्।
नीत्वोपकुञ्चितमुखं नवलोहसाम्य–
मश्वं चतुष्कसमये मुखसिद्धमाहुः॥' (रेवतोत्तरे)

अश्वों की पाँच प्रकार की चाल मल्लिनाथ ने अपनी टीका में–

'अश्वानां तु गतिर्धारा विभिन्ना सा च पञ्चधाः।
आस्कन्दितं धौरितकं रेचितं वल्गितं प्लुतम्॥ (बैजन्ती)

'गतिः पुला चतुष्का च तद्वन्मध्यजवा परा।
पूर्णवेगा तथा चान्या पञ्च धाराः प्रकीर्तिता॥
एकैका त्रिविधा धारा हयशिक्षाविधौ मता।
लघ्वी मध्या तथा दीर्घा ज्ञात्वैता योजयेत् क्रमात्॥' (अश्वशास्त्र)

नौ प्रकार की वीथियाँ–(भोज के अनुसार)

'वीथ्यस्तिस्रोऽथ धाराणां लघ्वीमध्योत्तमाः क्रमात्।
तासां स्याद्धनुषां मानमशीतिर्नवतिः शतम्॥

श्रेष्ठमध्योत्तमानां तु वाजिनां वीथिकाः स्मृताः।
नवानां कथिता वीथ्यो दुष्टानां क्रमणक्रमे॥

अन्येषामपि सर्वत्र गतिदार्ढ्यार्थमीरिताः॥
समोन्नता सा विषमाम्बुकीर्णा शुद्धानताग्रातृणवीरुदाढ्या॥

स्थाणुप्रकीर्णोपलसम्प्रकीर्णा पाश्र्वोन्नताख्या नवधेति वीथ्यः॥

सर्ववीथिषु यो बाजी दृढशिक्षासमन्वितः।
तेन राजा रणे नित्यं मृगयायां मुदं व्रजेत्॥'

अन्ये तु उरसाल्यादयो गतिविशेषा वीथय इत्याहुः।

'उरसाली वरश्वाली पृथुलो मध्यनामकः।
आलीढः शोभनैरङ्गैः प्रत्यालीढस्तथापरः॥

उपधेनव उक्तं च पादचाली च सर्वगः।
निर्दिष्टा वीथयस्त्वेताः इति॥' (मल्लिनाथ की टीका)

महाकवि माघ निम्नलिखित श्लोक में घोड़ों के लक्षण बतलाते हैं–

'आवर्तिनः शुभफलप्रदशुक्तियुक्ताः
सम्पन्नदेवमणयो भृतरन्ध्रभागाः।
अश्वाःप्यधुर्वसुमतीमतिरोचमाना–
स्तूर्णंपयोधय इवोर्मिभिरापतन्तः॥'[२६]

अर्थात् आवर्त (छाती आदि दशस्थानों में सुलक्षण रूप से स्थित 'ध्रुव' संज्ञक, बालों के घुमाव पक्षा०–भौर अर्थात् पानी के घुमाव) वाले, (राज्यादि) श्रेष्ठ फल देने वाले शुक्तियों (हृदय में तीन स्थान पर ऊपर की ओर मुड़े हुए बालों के घुमाव, पक्षा०–मोती देने वाली सीपों) से युक्त, देवमणि (गर्दन में स्थित बालों के घुमाव, पक्षा०–कौस्तुभमणि) वाले, भरे हुए अर्थात् मांसल पार्श्वभाग वाले (पक्षा०–निम्न प्रदेशों को पूर्ण करने वाले), अत्यन्त रुचते (शोभते) हुए तीव्रवेग से (पक्षा०–तरङ्गों से) आते हुए घोड़े समुद्रों के समान पृथ्वी को शीघ्र आच्छादित (पक्षा०–आप्लावित) कर लिए। यहाँ प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ की टिप्पणी द्रष्टव्य है–

'द्वावुरस्यौ शिरस्यौ द्वौ द्वौ द्वौ रन्ध्रोपरन्ध्रयोः।
एको भाले ह्यपाने च दशावर्ता ध्रुवाः स्मृताः॥'

'आवर्तसाम्यादावर्तो रोमसंस्थानमङ्गिनाम्' इति। शुभफलानि राज्यलाभा–

दीनि प्रददतीति शुभफलप्रदाः। 'प्रे दाज्ञः' (३/२/६) इति कः। ताभिः शुक्तिभिः संस्थानैरावर्तविशेषैर्युक्ताः। तदुक्तम् 'वक्षः स्थाः शक्तयस्तिस्त्र उर्ध्वरोमा जयावहा' इति। अन्यत्र शुभफलानि मुक्ताफलानि तत्प्रदाः शुक्तयो मुक्तास्फोटाः ताभिर्युक्ताः। मुक्तास्फोटे हयावर्ते शुक्तिः शङ्खकपालयोः इति यादवः। सम्पन्नाः समग्रा देवमणयो निगालावर्ताः, कौस्तुभादिदिव्यमणयश्च येषां ते 'आवर्तो रोमजो देवमणिस्त्वेष निगालजः। निगालस्तु गलोद्देशे सकृत' इति वैजयन्ती। 'कष्ठजो रोचमानश्च स्वामिसौभाग्यवर्धनः' इति वैजयन्ती।' पङ्क्तीकृतानामश्वानां नमनोन्नमनाकृतिः। अतिवेगसमायुक्ता गतिरूर्मिरुदाहृता॥' इति वैजयन्ती।

महाकवि माघ निम्नलिखित श्लोक के द्वारा घुड़सवारी की प्रवीणता का उल्लेख किये हैं–

> 'दन्तालिकाधरणनिश्चलपाणियुग्म-
> मर्धोदितो हरिरिवोदयशैलमूर्ध्नः।
> स्तोकेन नाक्रमत वल्लभपालमुच्चैः
> श्रीवृक्षकी पुरुषकोन्नमिताग्रकायः॥'[२७]

अर्थात् पिछले दोनों पैरों को धरती पर टेककर अगले दोनों पैरों से अग्रभाग को ऊपर उठाये हुए, उदयाचल के शिखर पर विराजमान अर्द्ध उदित सूर्यनारायण की भाँति स्थित श्रीवृक्ष नामक विशेष भँवरी वाला अश्व, लगाम (के दोनों छोरों) को निश्चलता के साथ दोनों हाथों से पकड़े हुए कोचवान को तनिक भी गिराने में समर्थ नहीं हो सका अर्थात् सावधानी के साथ पकड़े हुए लगाम की रस्सी वाले श्रेष्ठ घुड़सवार को पटक (आक्रान्त) नहीं सका। इस पद्य के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि माघ एक कुशल (सफल) घुड़सवार रहे होंगे।

महाकवि माघ के निम्नलिखित पद्य में घोड़े की थकावट जमीन पर लोटने के बाद दूर हो जाती है। जैसा कि स्पष्ट है–

> 'गत्यूनमार्गगतयोऽपि गतोरुमार्गाः
> स्वैरं समाचकृषिरे भुवि वेल्लनाय।
> दर्पोदयोल्लसितफेनजलानुसार-
> संलक्ष्यपल्ययनवर्ध्रपदास्तुरङ्गाः॥'[२८]

अर्थात् अपनी तीव्रगति से मृगों की गति को तुच्छ करने वाले, बहुत लम्बे मार्ग को तय किये हुए तथा तेज आविर्भाव होने से अर्थात् तेज चलने से निकले

हुए फेन जल के फैलने से स्पष्ट दिखलाई पड़ रहे हैं। जीन की रस्सी बाँधने के चिह्न जिनके, ऐसे घोड़ों को भूमि पर लोटाने के लिए (सईस-अश्वभृत्य लोग, या घुड़सवार लोग) धीरे-धीरे खीञ्चते हुए ले आए।

महाकवि माघ ने निम्नलिखित श्लोक में घोड़ों के स्वभाव के विषय में कहा है कि लोटने के पूर्व पृथ्वी को सूँघना घोड़े का स्वभाव होता है। यथा–

'आजिघ्रति प्रणतमूर्धनि वाह्लिजेऽश्वे
तस्याङ्गसङ्गमसुखानुभवोत्सुकायाः।
नासाविरोकपवनोल्लसितं तनीयो
रोमाञ्चतामिव जगाम रजः पृथिव्याः॥'[२९]

बाह्लि अर्थात् वर्तमान बलख देश के उत्पन्न घोड़ों के शिर को नीचे झुकाकर (अथवा प्रणामपूर्वक) गन्ध ग्रहण करते समय (चुम्बन करते समय) नासिका के छिद्रों से निकले हुए पवन द्वारा ऊपर उठी हुई पृथ्वी की सूक्ष्म धूल, इस प्रकार दिखाई पड़ रही थी मानों उन घोड़ों के लोटने (आलिङ्गन करने) से उनके अङ्ग-स्पर्श से उत्पन्न सुख के अनुभव के लिए उत्सुक धरती के रोमाञ्च हों।

भाव यह है कि पुरुष के मुख झुकाकर चुम्बन करने पर उसके अङ्गों के आलिङ्गन से उत्पन्न होने वाले सुख के लिए उत्कण्ठित नायिका को जिस प्रकार रोमाञ्च हो जाता है, उसी प्रकार मस्तक झुकाकर घोड़े के पृथ्वी को सूँघने पर जो बहुत सूक्ष्म धूल उसके नाक की हवा से उड़ी, वही मानों नायक रूप घोड़े के अङ्गों के समागम से होने वाले सुख के लिए उत्कण्ठित नायिकारूपिणी भूमि को रोमाञ्च हो गया। लोटने के पूर्व पृथ्वी को सूँघना घोड़े का स्वभाव होता है।

निम्नलिखित श्लोक में भी घोड़े के स्वभाव का वर्णन है। लोटने के बाद शरीर को कँपाना घोड़े का स्वभाव होता है, यह उसका स्वाभाविक धर्म है–

'हेम्नः स्थलीषु परितः परिवृत्त्य वाजी
धुन्वन् वपुः प्रविततायतकेशपङ्क्तिः।
ज्वालाकणारुणरुचा निकरेण रेणोः
शेषेण तेजस इवोल्लसता रराज॥'[३०]

अर्थात् सुवर्णमयी (अकृतिम) भूमि पर चारों ओर लोटकर (धूल निकालने के लिए) शरीर को कँपाता हुआ, अतएव विस्तृत अयाल वाला अश्व, अग्नि की

कणों के समान कान्ति वाली लाल रङ्ग वाली धूल के समूहों से (उस समय) इस प्रकार सुशोभित हो रहा था मानों अत्यन्त प्रबल होने के कारण उसके भीतरी तेज के अतिरेक ही बाहर निकल रहे हों। घोड़े के स्नान कराने का वर्णन भी माघ करते हैं–

'रेजे जनैः स्नपनसान्द्रतरार्द्रमूर्ति-
र्देवैरिवानिमिषदृष्टिभिरीक्ष्यमाणः।
श्रीसन्निधानरमणीयतरोऽश्व उच्चै-
रुच्चैश्रवा जलनिधेरिव जातमात्रः॥'[३१]

अर्थात् सद्यः स्नान के कारण अतिशय गीले शरीर वाला, विस्मय के कारण देवताओं के समान निनिर्मेष दृष्टि से देखा जाता हुआ, अति शोभा से युक्त होने के कारण अत्यन्त रमणीय (पक्ष में, लक्ष्मी के सन्निहित होने के कारण मनोहर) एक ऊँचा अश्व, समुद्र से सद्यः उत्पन्न उच्चैश्रवा की भाँति शोभा पा रहा था।

महाकवि माघ निम्नलिखित श्लोक में घास खाते हुए घोड़े के कण्ठ में बँधी घण्टियों और चुर-चुर शब्द सुनने वाले के चित्त में किस प्रकार आनन्द उत्पन्न हो रहा था? उसका वर्णन किया है–

'अश्रावि भूमिपतिभिः क्षणवीतनिद्रै–
रश्नन् पुरो हरितकं मुदमादधानः।
ग्रीवाग्रलोलकलकिङ्किणिकानिनाद–
मिश्रं दधद्दशन चर्चुरशब्दमश्वः॥'[३२]

अर्थात् निवासस्थान के आगे ही हरी-हरी घास को खाते हुए, अतएव कण्ठ में बँधी हुई चञ्चल घंटियों के मनोहर एवं अव्यक्त शब्द से मिश्रित दाँतों के चुर-चुर शब्द करने वाले और इसी कारण (सुनने वालों के चित्त में) आनन्द उत्पन्न करने वाले अश्वों (के शब्दों) को क्षण भर पूर्व ही निद्रा त्यागकर उठने वाले राजाओं ने सुना।

महाकवि माघ निम्नलिखित श्लोक में घोड़े की स्वाभाविक प्रकृति का कितना अनोखा चित्रण किया है? सम्पूर्ण चित्रण आँखों के सामने छाया की भाँति प्रतिविम्बित नजर आने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि जो कुछ देखा और सुना उसे श्लोक रूप में पर्णितकर सामाजिकों के समक्ष रख दिया। यथा–

'उत्खाय दर्पचलितेन सहैव रज्ज्वा
कीलं प्रयत्नपरमानवदुर्ग्रहेण।
आकुल्यकारि कटकस्तुरगेण तूर्ण-
मश्वेति विद्रुतमनुद्रवताश्वमन्यम्।।'[३३]

अर्थात् (बल के) गर्व से चञ्चल एक अश्व ने उछलकर रस्सी के साथ ही अपने खूँटे को उपार लिया और वेगपूर्वक दौड़ते हुए एक दूसरे अश्व को 'यह घोड़ी है'–ऐसा भ्रम करके उसके पीछे भागते हुए अनेक प्रयत्न करने वाले मनुष्यों से भी नहीं पकड़ा गया और इस प्रकार पूरे शिविर को उसने व्याकुल बना दिया।

प्रस्तुत श्लोक में भी घोड़ों की स्वाभाविकता का वर्णन किया गया है। यथा–

'मुक्तास्तृणानि परितः कटकं चरन्त-
स्त्रुट्यद्वितानतनिकाव्यतिषङ्गभाजः।
सस्त्रुः सरोषपरिचारकवार्यमाणा
दामाञ्चलस्खलितलोलपदं तुरङ्गाः।।'[३४]

अर्थात् (विहार के लिए बन्धन से) मुक्त किये गये, शिविर के चारों ओर घास चरते हुए कुछ अश्व टूटी हुई तम्बू की रस्सियों से फँस गये थे। उन्हें रोष के साथ परिचारक लोग रोक रहे थे और वे तम्बू की रस्सी को बाँधने के लिए गाड़े गये खूँटे में अपने चञ्चल पैरों के फँस जाने से गिरते-पड़ते फिर से भागने की चेष्टा कर रहे थे।

महाकवि माघ निम्नलिखित श्लोक में घोड़े के उठने (जागने के समय और उत्तम घोड़ों के लक्षण के विषय में बतलाया है। यथा–

'परिशिथिलितकर्णग्रीवमामीलिताक्षः
क्षणमयमनुभूय स्वप्नमूर्ध्वज्ञुरेव।
रिरसयिषति भूयः शष्पमग्रे विकीर्णं
पटुतरचपलौष्ठः प्रस्फुरत्प्रोथमश्व।।'[३५]

अर्थात् यह अश्व अपने कानों और कन्धे को ढीलाकर दोनों घुटनों को ऊँचा उठा-अर्थात् खड़े-खड़े ही दोनों आँखे बन्दकर क्षणमात्र के लिए तो गया था किन्तु फिर ग्रास लेने में समर्थ अपने दोनों ओठों को चलाकर नथुने को फड़काता हुआ आगे पड़ी हुई घास को फिर खाने की इच्छा कर रहा है।

तात्पर्य यह है कि घोंड़े बड़े सबेरे जग जाते हैं। उत्तम घोड़ों का यही लक्षण है कि वे कभी धरती पर नहीं बैठते, खड़े-खड़े ही सो जाते हैं और उनका सोना कोई देख पाता है, कोई नहीं देख पाता। यथा–

'दुर्दान्तमुत्कृत्य निरस्तसादिनं
सहासहाकारमलोकयज्जनः।
पर्याणतः स्रस्तमुरोविलम्बिन-
स्तुरङ्गमं प्रदुतमेकया दिशा॥'[३६]

कवि ने प्रस्तुत श्लोक में एक उदण्ड घोड़े का स्वाभाविक चित्रण किया है। उनके मतानुसार-छाती पर ढीली होने के कारण लटकती हुई जीनपोश से सवार खिसक जाने के कारण, एक दुर्विनीत घोड़ा जब भड़ककर अपनी पीठ पर से सवार को नीचे गिराकर एक दिशा की ओर तेजी से भागा तो लोग हा, हा, हा, हा करके हँसते हुए उसे देखने लगे।

अधोलिखित श्लोक में घोड़े पर चढ़ने के पूर्व अश्वारोही किस प्रकार से घोड़े को प्यार जताते हैं? इसका वर्णन किया है–

'स्वैरं कृतास्फालनलालितान्पुरः
स्फुरत्तनून्दर्शितलाघवक्रियाः।
वङ्क्षवलग्नैकसवल्गपाणय-
स्तुरङ्गमानारुरुहुस्तुरङ्गिणः॥'[३७]

अर्थात् अश्वारोहियों ने सर्वप्रथम पहले धीरे से प्यार के साथ अश्वों की गर्दनों पर अपने हाथ फेर दिये और तब अश्वों ने भी पूरे शरीर को हिलाकर अपनी त्वरा प्रकट की। तदनन्तर हाथ में लगाम लेकर और उसे काठी पर रखकर शीघ्रता एवं चतुरता के साथ वे अश्वारोही अश्वों की पीठ पर चढ़ गये।

महाकवि माघ निम्नलिखित श्लोक में घोड़ों के द्रुतगति द्वारा लोगों को किस प्रकार से विस्मय में डाल देते हैं? इसका वर्णन इस प्रकार करते हैं–

'यान्तोऽस्पृशन्तश्चरणैरिवावनिं
जवात्प्रकीर्णैरभितः प्रकीर्णकैः।
अद्यापि सेनातुरगाः सविस्मयै-
रलूनपक्षा इव मेनिरे जनैः॥'[३८]

अर्थात् वेग से भूतल को स्पर्श किये बिना ही अत्यन्त द्रुतगति में दौड़ते हुए सेना के तुरङ्गों को उनके दोनों ओर फैले हुए कण्ठ के आभूषण एवं चामरों

के कारण आज भी लोग विस्मयान्वित होकर पक्ष वाले घोड़ों की तरह मान रहे थे। यह प्रसिद्ध है कि अश्व पहले पक्षधारी होते थे, बाद में किसी कारण से अप्रसन्न होकर देवताओं ने उनके पंख काट दिये थे।

महाकवि माघ के निम्नलिखित पद्य से अश्वारोहियों की निपुणता व्यक्त हो रही है। यथा–

'निम्नानि दुःखादवतीर्य सादिभिः
सयत्नमाकृष्टकशाः शनैः शनैः।
उत्तेरुरुत्तालखुरारवं द्रुताः
श्लथीकृतप्रग्रहमर्वतां व्रजाः॥'[३९]

अर्थात् अश्वारोहियों ने उतार के स्थानों पर यत्नपूर्वक लगामों को खीञ्चकर जकड़कर रखा था। अतः घोड़े बड़ी कठिनाई से धीरे-धीरे उस ढालू जमीन पर उतर रहे थे, किन्तु मैदान में पहुँचने पर सवारों द्वारा लगाम के शिथिल कर देने पर वे शीघ्रतापूर्वक अपनी खुरों से गम्भीर टप-टप शब्द करते हुए दौड़ने लगे। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि माघ एक कुशल अश्वारोही रहे होगें।

महाकवि माघ केवल अश्वों के ही नहीं, मनुष्यों के सहायक अन्य पशुओं के बारे में भी सूक्ष्म जानकारी रखते थे। निम्नलिखित पद्य में बैलों के लक्षण और स्वभाव की भी चर्चा की है–

'उत्तीर्णभारलघुनाप्यलघूलपौघ-
सौहित्यनिःसहतरेण तरोरधस्तात्।
रोमन्थमन्थरचलद्गुरुसास्नमासां
चक्रे निमीलदलसेक्षणमौक्षकेण॥'[४०]

अर्थात् पीठ पर से भार को उतार देने के कारण हल्के किन्तु बड़ी-बड़ी घासों को चरने से जिनका पेट भर गया था और जो भारी शरीर वाले अर्थात् आलस्ययुक्त हो गये थे, ऐसे बैलों के समूह वृक्ष के नीचे धीरे-धीरे जुगाली करते हुए बैठे थे और उससे उनका विस्तृत गलकम्बल धीरे-धीरे हिल रहा था और दोनों आँखें आलस्य से भरकर अधमुँदी हो रही थीं।

महाकवि माघ ने निम्नलिखित श्लोक में वप्रक्रीड़ा का वर्णन किया है। यथा–

'मृत्पिण्डशेखरितकोटिभिरर्धचन्द्रं
शृङ्गैः शिखाग्रगतलक्ष्ममलं हसद्भिः।
उच्छृङ्गितान्यवृषभाः सरितां नदन्तो
रोधांसि धीरमवचस्करिरे महोक्षाः॥'[४१]

अर्थात् बड़े बड़े साँड़, गीली, भूमि को ओंड़ने के कारण जिनके अगले छोरों में गीली मिट्टी लगी हुई थी और जो इस प्रकार दोनों छोरों पर मृगचिह्न से सुशोभित अर्द्धचन्द्रमा का उपहास कर रहीं थी और दूसरे साँड़ों की सीगों को उखाड़ दिया था—ऐसी सीङ्गों से नदी के तट को बड़े जोर-जोर से गरजते हुए उखाड़ने लगे।

तात्पर्य यह है कि बलवान् बैल या साँड़ मस्ती के कारण अपने प्रतिद्वन्द्वी को देखकर धरती ओंड़ने लगते हैं और जोर-जोर से हँकड़ने लगते हैं। उनकी इस क्रीड़ा को 'वप्रक्रीड़ा' कहते हैं। गीली मिट्टी जब सीङ्गों के दोनों छोरों पर लग गयी थी, तो उस समय वह अर्द्धचन्द्रमा का उपहास कर रही थी।

'मेदस्विनः सरभसोपगतानभीकान्
भङ्क्त्वा पराननडुहो मुहुराहवेन।
ऊर्जस्वलेन सुरभीरनुनिःसपत्नं
जग्मे जयोद्धुरविशालविषाणमुक्ष्णा॥'[४२]

अर्थात् अनेक मोटे-तगड़े कामातुर साँड़ वेगपूर्वक गौओं के पीछे-पीछे दौड़ रहे थे। एक अतिबलवान साँड़ वेगपूर्वक उन्हें बारम्बार कुस्ती में पछाड़कर अपनी विजयिनी विशाल सीङ्गों को ऊँचा उठाकर अकेले ही उन गौओं के पीछे-पीछे चलने लगा।

महाकवि माघ निम्नलिखित श्लोकों में ऊँट के स्वरूप और उसके खाने के विषय में निर्दिष्ट किया है यथा—

'बिभ्राणमायतिमती वृथा शिरोधिं
प्रत्यग्रतामतिरसामधिकं दधन्ति।
लोलोष्ठमौष्ट्रकमुदग्रमुख तरूणा-
मभ्रंलिहानि लिलिहे नवपल्लवानि॥'[४३]

अर्थात् लम्बी गरदन वाले ऊँटों के समूह अपना मुँह ऊपर उठाकर बादलों को स्पर्श करने वाले, वृक्षों के अत्यन्त रसयुक्त स्वादिष्ट और नये-नये कोमल पत्तों को अपने चञ्चल ओठों को डुलाते हुए खाने लगे। उस समय उनकी लम्बी गरदन धारण करना सार्थक हो गया। यदि उनकी लम्बी गरदन न होती तो ऊँचे-ऊँचे वृक्षों के नये कोमल पत्तों को वे भला क्यों पा सकते थे?

'सार्ध कथञ्चिदुचितैः पिचुमर्दपत्रै-
रास्यान्तरालगतमाम्रदलं म्रदीयः।
दासेरकः सपदि संवलितं निषादै-
र्विप्रं पुरा पतगराडिव निर्जगार॥'[४४]

अर्थात् खाने में अभ्यस्त नीम के पत्तों के साथ धोखे में आम का जो एक कोमल पत्ता (किसी) ऊँट के मुँह में चला गया था, उसको उसने चट-पट उसी प्रकार बाहर उगल दिया, जिस प्रकार गरुड़ ने पूर्वकाल में म्लेच्छों का भक्षण करते समय, उनके साथ धोखे से एक ब्राह्मण को निगलकर चटपट उसे उगल दिया था। पुराणों की एक कथा के अनुसार पूर्वकाल में गरुड़ ने म्लेच्छों से अप्रसन्न होकर उन्हें जब निगलना शुरू किया तो अकस्मात् उनका गला जलने लगा। जब उन्होंने उगला तो देखा कि वह म्लेच्छ नहीं ब्राह्मण था।

'उत्थातुमिच्छन्विधृतः पुरो बलान्नि-
धीयमाने भरभाजि यन्त्रके।
अर्धोज्झितोद्गारविझर्झरस्वरः
स्वनाम निन्ये रवणः स्फुटार्थताम्॥'[४५]

अर्थात् अधिक रोने वाला रवण अर्थात् ऊँट भारी बोझ से युक्त काठी के पीठ पर रखे जाने के समय बलपूर्वक उठकर जब चलने लगा, तब ऊँटहारे ने उसकी नकेल से उसके मुख को दृढ़ता पूर्वक खीञ्च लिया। ऐसा करने पर ऊँट-मुख में आधी चबाई हुई नीम आदि की पत्तियों के रस को बाहर बहाने के साथ-साथ जोर-जोर से बलबलाने लगा और इस प्रकार वह अपने 'रवण' नाम को चरितार्थ करने लगा।

महाकवि माघ ने निम्नलिखित श्लोकों में गायों के दुहने और उसके बच्चे के बालसुलभस्वभाव का ऐसा चित्रण किया है, जैसे कोई फोटोग्राफर फोटो खीञ्चकर उसकी छाया को सम्मुख रख दिया हो। यथा-

'प्रीत्या नियुक्ताँल्लिहती स्तनंधया-
न्निगृह्य पारीमुभयेन जानुनोः।
वर्धिष्णुधाराध्वनि रोहिणीः पय-
श्चिरं निदध्यौ दुहतः स गोदुहः॥'[४६]

अर्थात् अपने ही बाँए पैर में बँधे हुए स्तनपान करने वाले छोटे-छोटे बछड़ों को प्रेम के साथ जीभ से चाटती हुई गौओं को तथा अपने दोनों घुटनों के मध्य

भाग में दोहनी रखकर घरघर की मधुरध्वनि में दूध को बढ़ाने वाली धारा के साथ गौओं को दुहते हुए गोपालों को भगवान् श्रीकृष्ण बड़ी देर तक देखते रहे।

'अभ्याजतोऽभ्यागततूर्णतर्णका-
न्निर्याणहस्तस्य पुरो दुधुक्षतः।
वर्गाद्गवां हुंकृतिचारु निर्यती-
मरिर्मधोरैक्षत गोमतल्लिकाम्॥'[४७]

अर्थात् पैर बाँधने की रस्सी लेकर दुहने के लिए सम्मुख आये हुए गोपाल को देखकर जब स्तनपान की जल्दी मचाता हुआ छोटा बछड़ा भी सामने आ गया तो उधर से गौओं के बीच में से मनोहर हुँकार करती हुई गौ भी बाहर निकल पड़ी। उस प्रशंसनीय एवं सुशोभित गौ को भगवान् श्रीकृष्ण थोड़ी देर तक निहारते रहे।

इस प्रकार महाकवि माघ अपने वर्ण्यविषय से सम्पृक्त अश्वादि के निरूपण में स्वभावोक्ति अलङ्कार और चाक्षुष विम्बविधान के माध्यम से सहृदयहृदय को आह्लादित तो करते ही हैं, पशुविषयक अपने सूक्ष्मावलोकन को भी उसमें अनुस्यूत कर देते हैं।

सङ्गीतशास्त्र

महाकवि माघ सङ्गीत एवं अन्यान्य उपयोगी ललितकलाओं की सूक्ष्म बातों की चर्चा अनेक जगह की है। गायन, वाद्य, स्वर, ताल, लय आदि के सम्बन्ध में कवि की अधिकारपूर्ण उपमाएँ एवं उक्तियाँ सिद्ध करती हैं कि सङ्गीतशास्त्र पर उनका साहित्यशास्त्र के समान ही असाधारण अधिकार था। इसी प्रकार नृत्यकला तथा नाट्यकला पर भी उन्होंने अधिकार प्राप्त किया था। कवि की सङ्गीत की कुशलता निम्नलिखित श्लोकों में प्रकट होती है–

'रणद्भिराघट्टनया नभस्वतः
पृथग्विभिन्नश्रुतिमण्डलैः स्वरैः।
स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्च्छना-
मवेक्षमाणं महतीं मुहुर्मुहुः॥'[४८]

अर्थात् नारदजी अपनी उस महती नामक वीणा को बार-बार देखते हुए जा रहे थे, जिसमें से वायु के आघात से पृथक्-पृथक् निकलने वाले स्वरों से तथा उनके अनुरणन अर्थात् गुञ्जार से निकलने वाली श्रुतियों के समूहों एवं सा, रे,

ग, म, प, ध, नी आदि सातों स्वरों के तीनों ग्राम तथा उनकी विशेष प्रकार की इक्कीसों मूर्च्छनाएँ अपने आप प्रकट हो रही थीं।

भाव यह कि नारदजी की वीणा का नाम महती था। ऊपर आकाश से वेग से उतरने के कारण वीणा के छिद्रों में वायु के झोङ्कों के लगने से विचित्र स्वर निकल रहा था। स्वर सात हैं–षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद। उनका प्रचलित साङ्केतित रूप–सा, रे,ग,म,प,ध,नी है। यहाँ पर स्वरों के ग्राम का अर्थ है–स्वरों का समूह। सङ्गीतशास्त्र में कहा गया है–**'यथा कुटुम्बिनः सर्वेऽप्येकीभूता भवन्ति हि। तथा स्वराणां सन्दोहो ग्राम इत्यभिधीयते।'** ये ग्राम तीन हैं। मूर्च्छनाओं की संख्या इक्कीस होती है। स्वरों के उतार-चढ़ाव तथा आरोह-अवरोह को मूर्च्छना कहते हैं। एक-एक ग्राम की सात-सात मूर्च्छनाएँ होती है। इस प्रकार कुल मिलाकर मूर्च्छनाओं की संख्या इक्कीस होती है। **'सप्तस्वरास्त्रयो ग्रामाः मूर्च्छनाश्चैकविंशतिः।'**

'श्रुतिसमधिकमुच्चैः पञ्चमं पीडयन्तः
सततमृषभहीनं भिन्नकीकृत्य षड्जम्।
प्रणिजगदुरकाकुश्रावकस्निग्धकण्ठाः
परिणतिमिति रात्रेर्मागधा माधवाय।।'[८९]

अर्थात् श्रुतियों का पाठ करने वाले मागधगण अनेक श्रुतियों से युक्त षड्ज स्वर को छोड़कर तथा पञ्चम स्वर और ऋषभ स्वर को त्यागकर उच्च स्वर में गाते हुए रात्रि के बीतने की सूचना भगवान् श्रीकृष्ण को देने लगे। उस समय उनका वह मधुर स्वर दूर-दूर तक सुनाई पड़ता था और उसमें कोई भी विकार नहीं था। उनके उस गान के साथ वीणा आदि वाद्य भी बज रहे थे। आचार्य भरतमुनि के मतानुसार प्रभातकाल के गीत की जैसी विशेषताएँ होनी चाहिए, कवि ने उन सब की ओर सङ्केत किया है।

तात्पर्य यह है कि महानुभावों को प्रातःकाल जगाने के लिए बन्दीजन उनके शिविर के समीप स्तुतिपाठ अथवा प्रभात के आगमन का वर्णन करते थे। इस श्लोक में कवि ने अपने विशिष्ट सङ्गीतज्ञान का परिचय दिया है। कवित्व की दृष्टि से इसका सौन्दर्य कुछ अधिक नहीं है। श्रुति कहते हैं, स्वरों के प्रारम्भिक अवयव को। उसके सम्बन्ध में निम्नलिखित पङ्क्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

'प्रथमश्रवणाच्छब्दः श्रूयते ह्रस्वमात्रिकः।
सा श्रुतिः संपरिज्ञेया स्वरावयवलक्षणा।।'

षड्ज, पञ्चम और मध्यम चार-चार श्रुतियाँ होती हैं, जैसा कि कहा गया है–

'चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपञ्चमाः।
द्वे द्वे निषादगान्धारौ त्रींस्त्रीनृषभधैवतौ॥'

मयूर की वाणी षड्ज तथा कोकिल का कूँजना पञ्चम स्वर में होता है एवं ऋषभ स्वर में साँड़ हॅकड़ता है। सङ्गीतशास्त्र के नियमों के अनुसार प्रातःकाल के समय इन तीनों स्वरों को निषिद्ध माना जाता है। पञ्चम के सम्बन्ध में तो भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में यहाँ तक कहा है–

'प्रभाते सुतरां निन्द्य ऋषभः पञ्चमोऽपि च।
जनयेत्प्रधनं ह्युक्षा पञ्चत्वं पञ्चमोऽपि च॥
पञ्चमस्य विशेषोऽयं कथितः पूर्वसूरिभिः।
प्रगे प्रगीतो जनयेद्दशनस्य विपर्ययम्॥

अर्थात् पञ्चम तथा ऋषभ स्वर प्रातःकाल में वर्जित हैं, पञ्चम स्वर के गान से मृत्यु भी हो सकती है। कुछ विद्वानों का मत है कि प्रातःकाल में पञ्चम के गान से दाँत टेढ़े हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि वन्दीजनों ने ऋषभ्, पञ्चम तथा षड्ज स्वर को छोड़कर मधुर आलाप में प्रातःकाल का इस प्रकार वर्णन किया है।

महाकवि माघ का निम्नलिखित श्लोक भी सङ्गीतशास्त्र की दृष्टि से महनीय है। क्योंकि इसमें बाँसुरी के उच्च स्वर में बजाने का वर्णन किया गया है। यहाँ पर प्रज्ञा और उत्साह के आधिक्य के कारण बताने का तात्पर्य उनकी विशेषताओं को व्यक्त करना है। इन पङ्क्तियों में उनके सङ्गीतज्ञ होने की पुष्टि हो जाती है। यथा–

'अनल्पत्वात्प्रधानत्वाद्वंशस्येवेतरे स्वराः।
विजिगीषोर्नृपतयः प्रयान्ति परिवारताम्॥'[५०]

अर्थात् प्रज्ञा और उत्साह के आधिक्य होने से (बाँसुरी पक्ष में अत्यन्त उच्च होने से) तथा प्रधान होने से दूसरे राजा लोग, विजयाभिलाषी राजा के साथ बाँसुरी के स्वर में दूसरे स्वरों की भाँति, परिवार की भाँति व्यवहार करते हैं।

'कुशेशयैरत्र जलाशयोषिता
मुदा रमन्ते कलभा विकस्वरैः।
प्रगीयते सिद्धगणैश्च योषिता-
मुदारमन्ते कलभाविकस्वरैः॥'[५१]

अर्थात् इस रैवतक गिरि के जलाशयों में प्रविष्ट हुए तीस वर्ष की अवस्था वाले हाथियों के समूह विकसित कमलों के साथ क्रीड़ा कर रहे हैं और मनोहर एवं कामोद्दीपक स्वर से सिद्ध के समूह अपनी रमणियों के साथ मस्ती से गा रहे हैं। कवि के मतानुसार आवाज अर्थात् किसी गान के स्वर में हृदयाह्लादक वस्तु होती है, जो किसी को भी अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। उसी स्वर के द्वारा कामोदत्तता आने के कारण रमणियों के साथ गाना स्वाभाविक है।

'विहगाः कदम्बसुरभाविहगाः
कलयन्त्यनुक्षणमनेकलयम्।
भ्रमयन्नुपैति मुहुरभ्रमयं
पवनश्च धूतनवनीपवनः॥'[५२]

अर्थात् कदम्ब के पुष्पों से सुगन्धित इस रैवतक गिरि पर पक्षीगण अनेक प्रकार के स्वरों में कूँजते हैं और नूतन कदम्ब के वन को कँपाने वाला यह वायु वारम्बार मेघों को कँपाता हुआ विचरण करता है। भाव यह कि उस रैवतक पर्वत पर मयूर, कोकिल आदि सभी प्रकार के पक्षी रहे होंगे, जिस प्रकार मयूर की वाणी षड्ज तथा कोकिल का कूँजना पञ्चम स्वर में होता है, उसी प्रकार उस पर्वत में और अन्य प्रकार के पक्षी रहे होंगे, जिनकी वाणी से ऋषभ, गान्धार, धैवत और निषाद स्वर निकल रहा होगा। इस प्रकार कई प्रकार की आवाजों के द्वारा कई प्रकार के स्वर एक साथ हो रहे थे, जिससे एक विशेष प्रकार का स्वर निकल रहा था।

'या बिभर्ति कलवल्लकीगुण-
स्वानमानमतिकालिमाऽलया।
नात्र कान्तमुपगीतया तया
स्वानमा नमति काऽलिमालया॥'[५३]

अर्थात् इस रैवतक गिरि पर अतिशय कृष्णवर्ण की घूमती हुई जो भ्रमर-पङ्क्ति है, वह वीणा के तारों के सुमधुर शब्दों की समानता प्राप्त करती है। समीप में गान करती हुई उस भ्रमर पङ्क्ति से सुखपूर्वक आकर्षित करने योग्य कौन कामिनी अपने प्रियतम के प्रति विनम्र नहीं हो जाती? अर्थात् सभी हो जाती हैं।

जिस प्रकार से वीणा के तारों से पृथक्-पृथक् निकलने वाले स्वरों से तथा उनके अनुरणन अर्थात् गुञ्जार से निकलने वाली श्रुतियों के समूहों एवं सा,रे,ग,म,प,ध,नि आदि सातों स्वरों के तीनों ग्राम तथा उनकी विशेष प्रकार की

मूर्च्छनाएँ अपने आप उसी प्रकार प्रकट हो रही थीं, जिस प्रकार भौरों की पङ्क्ति से पृथक्-पृथक् निकलने वाले स्वरों तथा उनके गुञ्जार से निकलने वाले सा, रे,ग,म,प,ध,नि आदि स्वरों के तीनों ग्राम तथा उनकी विशेष प्रकार की मूर्च्छनाएँ। तात्पर्य यह कि भ्रमर पङ्क्ति के स्वर वीणा के तारों के स्वरों की समानता धारण की रखी थी और उसके भ्रमर पङ्क्ति के सुखपूर्वक आकर्षित करने योग्य स्वरों को सुनकर कौन कामी अपने पत्नी के प्रति समर्पित नहीं हो जायेगा? अर्थात् सभी।

'त्वक्साररन्ध्रपरिपूरणलब्धगीति-
रस्मिन्नसौ मृदितपक्ष्मलरल्लकाङ्गः।
कस्तूरिकामृगविमर्दसुगन्धिरेति
रागीव सक्तिमधिकां विषयेषु वायुः॥'[५४]

अर्थात् इस रैवतक पर्वत पर बाँसों के छिद्रों की स्वयं पूर्ति कर उनके बजने से गायन-सुख का अनुभव करने वाली, मुलायम बालों वाले रल्लक मृगों के अङ्गों को स्पर्श करने वाली तथा कस्तूरी-मृग के सङ्घर्षण से सुगन्धित वायु कामी पुरुषों की भाँति इसके प्रदेशों के विषयों में अधिक आसक्ति प्राप्त करती हैं।

तात्पर्य यह है कि शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु इस पर्वत में हमेशा बहती रहती है। जिस प्रकार विषयी पुरुष शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध आदि विषयों में आसक्ति रखता है, उसी प्रकार वंशीवादन, रल्लक मृगों के अङ्गों के मृदु, कोमल, स्पर्श एवं कस्तूरी की सुगन्धि की आसक्ति वायु को भी है।

महाकवि माघ निम्नलिखित श्लोक में परिवादिनी नामक वीणा के विषय में चर्चा की है। इससे सिद्ध होता है कि वे वीणा के प्रकारों को भी जानते थे। यथा—

'मधुकरैरपवादकरैरिव
स्मृतिभुवः पथिका हरिणा इव।
कलतया वचसः परिवादिनी-
स्वरजिता रजिता वशमाययुः॥'[५५]

अर्थात् मृगों को धोखा में डालने के लिए घण्टा आदि कुत्सित वाद्यों को बजाने वाले बहेलियों के समान मधुकरों ने, परिवादिनी नामक वीणा विशेष के स्वर को पराजित करने वाली अपने गुञ्जार की मधुरता से हरिणों के समान

पथिकों के चित्त को हर लिया और उन्हें कामदेव के वश में कर दिया। कहने का भाव यह कि जिस प्रकार बहेलियों के मोहक वाद्य से मुग्ध मृग उनके गड्ढों में जाकर गिर पड़ते हैं, उसी प्रकार भ्रमरों के गुञ्जार की मधुरता से मुग्ध पथिक काम के वश में हो गये। इन पद्यों से सङ्गीत की विशेषताएँ प्रकट हो रही हैं।

'मधुरया मधुवोधितमाधवी-
मधुसमृद्धिसमेधितमेधया।
मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मद-
ध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे॥'[५६]

अर्थात् मधुर स्वर से गुञ्जार करने वाली भ्रमरियों की प्रतिभा वसन्तऋतु के आगमन से प्रफुल्लित माधवी लता के मकरन्द (पान) के कारण बहुत बढ़ गयी और वे बार-बार मन को उन्मत्त करने वाली ध्वनि से अस्पष्ट गान करने लगी। प्रस्तुत पद्य में 'लालीध्वनि' के विषय में बताया गया है। वस्तुतः कवि कि इन पङ्क्तियों से ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे ये पङ्क्तियाँ स्वयं गुञ्जार कर रही हैं। ये पङ्क्तियाँ किसी को भी अपनी तरफ आकृष्ट कर सकती हैं। सङ्गीतात्मकशब्द चयन के कारण अनायास ही इन पङ्क्तियों को पढ़कर पाठक गुनगुनाने लगते हैं, जिससे एक विशेष प्रकार का स्वर गूँजने लगता है और अपनी ओर आकृष्टकर लेता है। इन सबसे भी उनके सङ्गीतज्ञ होने की पुष्टि हो जाती है।

महाकवि माघ के निम्नलिखित श्लोक में सङ्गीत की विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है-

'विगतसस्यजिघत्समघट्टयत्-
कलमगोपवधूर्न मृगव्रजम्।
श्रुततदीरितकोमलगीतक-
ध्वनिमेषेऽनिमिषेक्षणमग्रतः॥'[५७]

अर्थात् आश्विन के महीने में धान की रखवाली करनेवाली स्त्रियाँ अपने आगे खड़े हुए उन हरिणों को (डराकर) नहीं भगातीं, जो निर्निमेष नयनों से धान को खाने की इच्छा त्यागकर उनके द्वारा कोमल स्वर से गाये जाने वाले गीतों की मनोहर ध्वनि को सुन रहे थे।

महाकवि माघ निम्नलिखित श्लोक में किसी रमणी के स्वयं गाने की निपुणता बतला रहे हैं, जिसके स्वर वीणावादक द्वारा बजायी गई वीणा के स्वर समूह में मिश्रित होकर समानता को प्राप्त कर रही है। यथा-

'आशु लङ्घितवतीष्टकराग्रे
नीविमर्धमुकुलीकृतदृष्ट्या।
रक्तवैणिकहताधरतंत्री-
मण्डलक्वणितचारु चुकूजे॥'[५८]

अर्थात् पति के हाथों के अग्रभाग अर्थात् अङ्गुलियों के शीघ्रता के साथ नीवीवन्धन को पारकर जाने पर (जंघा के मूल भाग में पहुँच जाने पर आनन्दातिरेक से) आँखों को अधमुँदी करके कोई रमणी स्वयं गाने में निपुण वीणावादक द्वारा बजाई गई वीणा के स्वर समूह की भाँति सुन्दर स्वर में अपने कण्ठ से कोई अव्यक्त ध्वनि करने लगी। यह अव्यक्त ध्वनि रतिकाल में होती है।

महाकवि माघ प्रस्तुत पद्य में एक अन्य वाद्य के प्रकार का वर्णन किस प्रकार से कर रहे हैं? यथा–

'रतिरभसविलासाभ्यासतान्तं न याव-
न्नयनयुगममीलत्तावदेवाहतोऽसौ।
रजनिविरतिशंसी कामिनीनां भविष्य-
द्विरहविहितनिद्राभङ्गमुच्चैर्मृदङ्गः॥'[५९]

अर्थात् सुरतक्रीड़ा की उत्सुकता से बारम्बार के विलास में लीन होने के कारण खिन्न कामियों के दोनों नेत्र अभी तक बंद भी नहीं हो पाये थे कि तभी रजनी के बीतने की सूचना देने वाला मृदङ्ग कामियों की निद्रा को भावी विरह की चिन्ता से भङ्ग करता हुआ उच्चस्वर में बज उठा।

निम्नलिखित श्लोक में महाकवि माघ करतालों की ध्वनि को वीणा के साथ बजते वेणु के स्वर की एकता के समान बता रहे हैं–

'गतमनुगतवीणैरेकतां वेणुनादैः
कलमविकलतालं गायकैर्बोधहेतोः।
असकृदनवगीतं गीतमाकर्णयन्तः
सुखमुकुलितनेत्रा यान्ति निद्रां नरेन्द्राः॥'[६०]

अर्थात् वीणा के स्वर के साथ बजते हुए वेणु के स्वर में एकता को प्राप्त करने वाले, सुन्दर एवं मधुर करताल की ध्वनि से युक्त, सोये हुए राजाओं को जगाने के लिए वैतालिकों द्वारा अनेक बार गाये गये अश्रुतपूर्व अथवा अनिन्द्य

गीतों को सुनते हुए राजा लोग आँखें मूँदकर सो रहे थे। प्रस्तुत श्लोक में वेणु और करताल नामक दो प्रकार के वाद्य विशेष बताये गए हैं।

महाकवि माघ के निम्नलिखित श्लोक से भी उनकी सङ्गीत विशेषज्ञता सिद्ध होती है। यथा–

'नानाविधाविष्कृतसामजस्वरः
सहस्रवर्त्मा चपलैर्दुरध्ययः।
गान्धर्वभूयिष्ठतया समानतां
स सामवेदस्य दधौ बलोदधिः॥'[६१]

अर्थात् उस समय भगवान् श्रीकृष्ण की सेना का वह विशाल समुद्र सामवेद की समानता धारण कर रहा था। वह सैन्य-समुद्र विविध प्रकार के हाथियों के स्वर से समन्वित था, सहस्रों मार्गों से चल रहा था, अश्वों की अधिकता के कारण चञ्चल लोगों के लिए भी दुर्गम था। इसी प्रकार सामवेद भी अनेक प्रकार के रथन्तर सामस्वरों से युक्त है, सहस्र शाखाओं वाला है तथा गान्धर्व गान की अधिकता के कारण चञ्चलमति के लोगों के लिए दुर्गम है।

महाकवि माघ के सङ्गीतज्ञ होने की पुष्टि निम्नलिखित श्लोक से भी हो जाती है। इसमें गाना गाने के पहले आलाप-प्रलाप की शुद्धता के विषय में चर्चा की है। यथा–

'पुरःप्रयुक्तैर्युद्धं तच्चलितैर्लब्धशुद्धिभिः।
आलापैरिव गान्धर्वमदीप्यत पदातिभिः॥'[६२]

अर्थात् (गजदल, हयदल आदि सेना के) पहले लगाये गये मण्डलाकार होकर चलते हुए (कातरता आदि) दोषों से रहित पैदल सैनिकों से वह युद्ध उस प्रकार शोभने लगा, जिस प्रकार गाना आरम्भ करने के पहले प्रयुक्त किये गये, बराबर दुहराये गये और स्वरों की आवृत्ति से निर्दोष आलापों से गाना शोभता है।

इस प्रकार से महाकवि माघ के उपर्युक्त उद्धरण उनके सङ्गीतज्ञ होने की पुष्टि करते हैं। जिसमें सङ्गीत के सूक्ष्मातिसूक्ष्म विषयों की चर्चा की गई है। वाद्यों के प्रकारों को भी बताया गया है। महाकवि माघ के प्रस्तुत उद्धरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रकृति की सभी वस्तुओं से सङ्गीत का स्वर निकलता है। जिसके विषय में कवि के अनुभव का पता लगता है। सङ्गीत के गुण दोषों से भी परिचित थे। ऐसा प्रतीत होता है कि महाकवि माघ भरतमुनि के नाट्यशास्त्र का भी अध्ययन किये थे। कवि के सङ्गीतज्ञ होने की निपुणता उनके पद्यों के द्वारा ही हो जाती है, जिसमें लयात्मकता का सञ्चार प्रवाहित होता है।

आयुर्वेदशास्त्र

आयुर्वेदशास्त्र का सम्बन्ध मनुष्य के स्वास्थ्य से है। आधुनिक अङ्ग्रेजी चिकित्सापद्धति के विकास के पूर्व भारत में आयुर्वेदिक विधि से उपचार होता था। महाकवि माघ द्वारा प्रयुक्त उपमानों अथवा श्लेषात्मक पद्यों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे आयुर्वेद की चिकित्सापद्धति को सम्यक् रूप से जानते थे। इस सन्दर्भ में कुछ महत्त्वपूर्ण पद्य द्रष्टव्य हैं–

महाकवि माघ निम्नलिखित पद्य में बढ़ते हुए रोग और शत्रु को एक समान बताया है। हालाँकि इस पद्य में राजनीति की चर्चा की गई है, लेकिन उपमान के माध्यम से रोग की भी चर्चा की है। उनके कहने का भाव यह है कि जिस प्रकार रोग बिना उपचार के व्यक्ति के ऊपर अपना प्रभाव स्थापित कर लेता है; ठीक उसी प्रकार शत्रु। यथा–

'उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यः पथ्यमिच्छता।
समौ हि शिष्टैराम्नातौ वत्स्यन्तावामयः स च॥'[६३]

अर्थात् अपना कल्याण चाहने वाले पुरुष को बढ़ते हुए शत्रु की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि (नीति के) पण्डितों ने बढ़ने वाले रोग और शत्रु को समान बतलाया है।

महाकवि माघ निम्नलिखित श्लोक में तरुणज्वर के उपशमन के लिए पसीना होना आवश्यक बताया है। जिस प्रकार जल से स्नान करा देने पर ज्वर बिगड़ जाता है, उसी प्रकार दण्डनीय शत्रु के साथ संधि की बात करना; उसे बिगाड़ देना है, जैसा कि स्पष्ट है–

'चतुर्थोपायसाध्ये तु रिपौ सान्त्वमपक्रिया।
स्वेद्यमामज्वरं प्राज्ञः कोऽम्भसा परिषिञ्चति॥'[६४]

अर्थात् चतुर्थ उपाय अर्थात् दण्ड से साध्य होने वाले शत्रु के साथ सामनीति का व्यवहार करना अपना ही अपकार करना है। कौन बुद्धिमान् पसीना से (अर्थात् ऐसे उष्ण उपचार द्वारा जिससे रोगी को पसीना हो) साध्य होने वाले अपरिपक्व (तरुण) ज्वर को जल से सींञ्चता है? अर्थात् कोई नहीं।

महाकवि माघ निम्नलिखित श्लोक में राजनीति के माध्यम से औषधि प्रयोग को जानने वाले की निपुणता के बारे में बतलाते हैं–

'तन्त्रावापविदा योगैर्मण्डलान्यधितिष्ठता।
सुनिग्रहा नरेन्द्रेण फणीन्द्रा इव शत्रवः॥'[६५]

अर्थात् तंत्र और आवाप को जानने वाले (राजा के पक्ष में, तंत्र अर्थात् अपने राष्ट्र और आवाप अर्थात् दूसरे राष्ट्र की बातों को जानने वाले, विषवैद्य के पक्ष में तंत्र का अर्थात् मंत्रशास्त्र और आवाप अर्थात् औषधि प्रयोग को जानने वाले) एवं योग (राजा पक्ष में, साम, दामादि उपाय, विषवैद्य पक्ष में देवता का ध्यान) द्वारा मण्डल को (राजा पक्ष में अपने और परकीय राष्ट्र के घेरे को, विषवैद्य पक्ष में महेन्द्रादि देवताओं के मन्दिरों को) अतिक्रान्त करने वाले नरेन्द्र (राजा और विषवैद्य) शत्रु को सर्पो की भाँति सुखपूर्वक अपने वश में कर लेते हैं।

महाकवि माघ ने निम्नलिखित पद्य में षड्रससंयुक्तरसायन के प्रभाव का वर्णन राजनीतिक उपमान के माध्यम से बताया है–

षाड्गुण्यमुपयुञ्जीत शक्त्यपेक्षो रसायनम्।
भवन्त्यस्यैवमङ्गानि स्थास्नूनि बलवन्ति च।।'[६६]

अर्थात् अपनी शक्ति के अनुसार अथवा प्रभाव, उत्साह और मंत्र इन तीनों शक्तियों तथा बल के अनुसार सन्धि-विग्रह आदि छहों गुणों रूपी रसायन (पृथ्वी को प्राप्त कराने वाले उपाय, पक्षान्तर में षड्रससंयुक्तरसायन) का सेवन (विजयाभिलाषी राजा को) करना चाहिए, इसके सेवन से उसके (राज्य के) अङ्ग (स्वामी, जनपद, अमात्य, कोश, दुर्ग, सेना और मित्र, पक्षान्तर में शरीर के अङ्ग) स्थिर और बलवान होते हैं।

महाकवि माघ निम्नलिखित श्लोक में शक्ति के विपरीत व्यायाम करना क्षय रोग का कारण मानते हैं–

'स्थाने शमवतां शक्त्या
व्यायामे बृद्धिरङ्गिनाम्।
अयथाबलमारम्भो
निदानं क्षयसम्पदः।।'[६७]

अर्थात् अपनी शक्ति के अनुसार क्षमाशील (शान्त) अङ्गी (सप्ताङ्ग वाला राजा तथा शरीरधारी मनुष्य) का व्यायाम (संधि-विग्रह आदि छहों गुणों के प्रयोग, पक्षान्तर में दण्ड-बैठक आदि कसरत) करने पर (उसके राज्य और शरीर की) तो वृद्धि होती है। (किन्तु इसके विपरीत) अपनी शक्ति का अतिक्रमण करके किया गया व्यायाम क्षय (अत्यन्त हाँनि, पक्षान्तर में क्षय रोग) का कारण बन जाता है।

महाकवि माघ निम्नलिखित श्लोक में यक्ष्मा रोग के लक्षण को उपमान देकर राजनीतिक कुशलता को बतला रहे हैं–

'मा वेदि यदसावेको जेतव्यश्चेदिराडिति।
राजयक्ष्मेव रोगाणां समूहः स महीभृताम्।।'[६८]

अर्थात् वह चेदिराज (शिशुपाल) अकेला है, अतः सरलता से जीता जा सकता है, ऐसा मत समझें क्योंकि यह रोगों के समूह राजयक्ष्मा की भाँति राजाओं का समूह है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार ज्वर, खाँसी, रक्त, पित्तादि के प्रकोप इन अनेक रोगों के समूह हैं, वह अकेला नहीं है, उसका जीतना बहुत सरल नहीं है।

महाकवि माघ दिव्य औषधियों के गुणों के विषय में प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि–

'आसादितस्य तमसा नियतेर्नियोगा-
दाकाङ्क्षतः पुनरपक्रमणेन कालम्।
पत्युस्त्विषामिह महौषधयः कलत्र-
स्थान परैरनभिभूतममूर्वहन्ति।।'[६९]

अर्थात् इस रैवतक गिरि पर स्थित ये महान् औषधियाँ, विधाता के शासन में नियंत्रित होकर अन्धकार से (पक्ष में, विपत्ति से) आच्छन्न, अथवा अस्तङ्गत और पुनः उदयाचल पर पहुँचकर (अपनी उन्नति प्राप्तकर) समागम के समय की आकांक्षा करने वाले ज्योतिष्पति सूर्य के, दूसरों से न आक्रान्त होने वाले (दूसरे पुरुष द्वारा तिरस्कृत न होने वाले) स्त्रियों के तेज को अर्थात् कान्ति को धारण किए रहती है।

तात्पर्य यह है कि विधाता के कठोर शासन में अनुबद्ध सूर्य जब रात्रि के समय अन्धकार से आच्छन्न होकर पुनः उदयाचल के समय की प्रतीक्षा करता है, उस समय रैवतक पर्वत की दिव्य-गुणशाली औषधियाँ सूर्य की इस दीप्ति की रक्षा करती हैं, जिसे अन्धकार पराजित नहीं कर सकता, अर्थात् निविड अन्धकार में भी दिव्य औषधियों के प्रकाश से यह गिरि प्रकाशमान रहता है। स्त्रियों की रक्षा स्त्रियों के बीच में ही होती है। जिस प्रकार से किसी विपत्तिग्रस्त सज्जन पुरुष की स्त्री को कोई उदार पुरुष आपत्तिकाल में सुरक्षार्थ धरोहर के समान अपने घर की स्त्रियों के बीच में रखकर फिर अच्छा समय आ जाने पर उसे वापस कर देता है, उसी प्रकार रैवतक गिरि की औषधियाँ भी रात के

समय सूर्य की कान्ति को अपने बीच सुरक्षित रखकर सबेरे पुनः उसे अर्पित कर देती हैं।

महाकवि माघ के निम्नलिखित श्लोक से आयुर्वेद विशेषज्ञ की पुष्टि हो जाती है–

'अमृतद्रवैर्विदधदब्जदृशामप-
मार्गमोषधिपतिः स्म करैः।
परितो विसर्पि परितापि भृशं
वपुषाऽवतारयति मानविषम्॥'[७०]

अर्थात् चन्द्रमारूपी औषधिपति अर्थात् वैद्य (चन्द्रमा का नाम भी औषधिपति है) ने अमृत से सिञ्चित किरणरूपी अपने हाथों से, कमलनयनी रमणियों के अङ्गों को सिञ्चितकर (शरीर में) सर्वत्र व्याप्त उनके अत्यन्त सन्तापकारी मानरूपी विष को शरीर से दूर कर दिया।

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार कोई प्रवीण मंत्रज्ञाता अथवा वैद्य किसी विषाक्त व्यक्ति के शरीर से किसी रस विशेष से अपने हाथों को भिगोकर शरीर भर में व्याप्त दाहक विष को उतार देता है, उसी प्रकार सुन्दरियों के मानरूपी विष को चन्द्रमा ने भी अपनी किरणों से उतार दिया अर्थात् चन्द्रोदय के बाद मानिनियों का मान स्वतः दूर हो गया।

महाकवि माघ के आयुर्वेदज्ञ (निपुण वैद्य) होने की पुष्टि प्रस्तुत श्लोक से भी हो जाती है। इस प्रसङ्ग में यह बताया गया है कि निपुण वैद्य लोग ज्वरादि में पहले उपवास कराते हैं। यथा–

'स्रस्ताङ्गसन्धौ विगताशपाटवे
रुजां निकामं विकलीकृते रथे।
आप्तेन तक्ष्णा भिषजेव तत्क्षणं
प्रचक्रमे लङ्घनपूर्वकः क्रमः॥'[७१]

अर्थात् रथ के चक्कों के जोड़ों के खुल जाने से (पक्ष में, हाथ पैर की सन्धियों के शून्य हो जाने से) धुरों के नष्ट हो जाने पर (नेत्र-ज्योति क्षीण हो जाने पर) जब कोई स्यन्दन (शरीर) टूट जाने के कारण (रोग से) बिल्कुल वेकाम हो गया, तब निपुण बढ़ई ने वैद्य की भाँति उसी क्षण दौड़कर (उपवास कराकर) उसको ठीक-ठाक करने का उपक्रम किया।

महाकवि माघ के निम्नलिखित श्लोक से निपुण वैद्य होने की जानकारी मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे नाड़ी के भी अच्छे ज्ञाता थे, जिसके कारण

वे किसी भी रोग को तुरन्त समझ जाते थे और तदनुसार महान् औषधि के द्वारा उस रोग को समाप्त कर देते थे। यथा–

'इति नरपतिरस्त्रं यद्यदाविश्चकार
प्रकुपित इव रोगः क्षिप्रकारी विकारम्।
भिषगिव गुरुदोषच्छेदिनोपक्रमेण
क्रमविदथ मुरारिः प्रत्यहंस्तत्तदाशु॥'[७२]

अर्थात् इस प्रकार शीघ्र प्रयोग करने वाले (शीघ्र विकार उत्पन्न करने वाले) शिशुपाल ने अत्यन्त कुपित होकर जिन-जिन अस्त्रों का प्रयोग किया, रोग की भाँति उन-उन अस्त्रों को युद्ध के क्रम एवं परिपाटी के जानने वाले वैद्य भगवान् श्रीकृष्ण ने उनके प्रचण्ड तेज को शान्त करने वाले अपने अस्त्रों का प्रयोगकर (प्रबल दोष को नष्ट करने वाली महान् औषधि का प्रयोगकर) शीघ्र ही शान्त कर दिया।

उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि अधिकांश रोगों की पहचान और उनके उपचार की प्रक्रिया से माघ अवगत थे।

कामशास्त्र

महाकवि माघ ने अपने महाकाव्य शिशुपालवध में कामशास्त्र के सिद्धान्तों का भी विवेचन किया है; जिससे उनके कामशास्त्रीयज्ञान का अनुमान किया जा सकता है। उदाहरणार्थ कुछ महत्त्वपूर्ण अंश अवलोकनीय हैं–

'कलासमग्रेण गृहानमुञ्चता
मनस्विनीरुत्कयितुं पटीयसा।
विलासिनस्तस्य वितन्वता रतिं
न नर्मसाचिव्यमकारि नेन्दुना॥'[७३]

अर्थात् अपनी सोलह कलाओं के साथ रावण के भवन को कभी न छोड़ने वाले तथा मानिनी कामिनियों को (कामकेलि के प्रति) उत्कण्ठित करने में परम पटु चन्द्रमा इस परम विलासी रावण के रति विषयक अनुराग को बढ़ाता हुआ उसका कामकेलि संबंधी मंत्रित्व नहीं करता था–ऐसा नहीं, किन्तु करता ही था।

तात्पर्य यह कि उसके अन्तःपुर में सदा चन्द्रमा का निवास रहता था। चाँदनी रातें रहती थीं, जिससे माननियों को भी कामोत्कंठा हुआ करती थी। चन्द्रमा की किरणें कामोद्दीपक होती हैं, यह कामशास्त्रसम्मत तथ्य है।

'अन्यदा भूषणं पुंसः क्षमा लज्जेव योषितः।
पराक्रमः परिभवे वैयात्यं सुरतेष्विव॥'[१७४]

अर्थात् दूसरे अवसरों पर स्त्रियों की लज्जा के समान पुरुषों का आभूषण उनकी क्षमा है, किन्तु अपमान या पराजय के अवसर पर, सम्भोग काल में स्त्रियों की धृष्टता या निर्लज्जता की भाँति उनका पराक्रम (ही) उनका आभूषण होता है। हालाँकि यहाँ पर राजनीति के विषय में चर्चाएँ की गई हैं, लेकिन उपमान के माध्यम से कामशास्त्रीय स्थिति का भी वर्णन किया गया है। आलिङ्गन और चुम्बन में दन्तच्छद और नखच्छद होना संभावित रहता है, इसका वर्णन अधोलिखित पद्य में हुआ है–

प्राणच्छिदां दैत्यपतेर्नखाना-
मुपेयुषां भूषणतां क्षतेन।
प्रकाशकार्कश्यगुणौ दधानः
स्तनौ तरुण्यः परिवव्रुरेनम्॥'[१७५]

अर्थात् भूषण का स्थान प्राप्त करने वाले, दैत्यपति हिरण्यकशिपु के प्राणों को हरने वाले (भगवान् के) नखों, के क्षत (घाव) से अपनी कठोरता को प्रकट करने वाले स्तनों वाली तरुणियाँ भगवान् श्रीकृष्ण को (चारों ओर से) घेरे हुए थीं। इसी प्रकार काम से सम्बद्ध अनेक पद्य प्राप्त होते हैं यथा–

'आकर्षतेवोर्ध्वमतिक्रशीयान-
त्युन्नतत्वात्कुचमण्डलेन।
ननाम मध्योऽतिगुरुत्वभाजा
नितान्तमाक्रान्त इवाङ्गनानाम्॥'[१७६]

अर्थात् अत्यन्त स्थूल उन्नत होने के कारण (मध्य भाग को) ऊपर की ओर खींचते हुए से स्तनमण्डलों के भार से उन तरुणियों का अतिकृश कटिप्रदेश अत्यन्त भारपीड़ित की तरह मानो नीचे की ओर दबा जा रहा था।

'यां यां प्रियः प्रैक्षत कातराक्षी
सा सा ह्रिया नम्रमुखी बभूव।
निःशङ्कमन्याः सममाहितेर्ष्या-
स्तत्रान्तरे जघ्नुरमुं कटाक्षैः॥'[१७७]

अर्थात् (अङ्गनाओं के) प्रिय भगवान् श्रीकृष्ण जिन–जिन की ओर देखते थे, वे-वे लज्जा से चकितनेत्रा होकर नीचे मुँह कर लेती थीं, और दूसरी

(जिनकी ओर भगवान् नहीं देखते थे, वे) उसी समय (श्रीकृष्ण के देखने के समय) ईर्ष्यायुक्त निर्लज्जभाव से एक साथ ही कटाक्ष से उन्हें घायल कर रही थीं।

'रतौ ह्रिया यत्र निशाम्य दीपाञ्जा
लागताभ्योऽधिगृहं गृहिण्यः।
बिभ्युर्बिडालेक्षणभीषणाभ्यो
वैदूर्यकुड्येषु शशिद्युतिभ्यः॥'[७८]

अर्थात् उस द्वारकापुरी के महलों में कुलाङ्गनाएँ रतिकाल में दीपों को बुझाकर झरोखों के मार्ग से आने वाली, वैदूर्यमणिरचित दीवारों पर विल्ली की आँखों के समान भयङ्कर दिखाई पड़ने वाली चन्द्रमा की किरणों से डर जाती थीं।

'रम्या इति प्राप्तवतीः पताका
रागं विविक्ता इति वर्धयन्तीः।
यस्यामसेवन्त नमद्वलीकाः
समं वधूभिर्वलभीर्युवानः॥'[७९]

अर्थात् उस द्वारकापुरी में युवकजन, रम्य होने के कारण पताका प्राप्त करने वाली अर्थात् ध्वजायुक्त (पक्ष में, रमणीयता के कारण प्रसिद्ध) विविक्त अर्थात् निर्जन होने के कारण राग को बढ़ाने वाली (पक्ष में, विविक्त अर्थात् विमल) नमद्वलीक् अर्थात् नीचे की ओर झुकी हुई छप्परों वाली (पक्ष में, नमद्वलीक् अर्थात् मध्यभाग में त्रिवलियों से सुशोभित) बलभी अर्थात् एकान्तस्थ कुटियों का सेवन अपनी बहुओं के साथ करते थे।

'सुगन्धितामप्रतियत्नपूर्वां
बिभ्रन्ति यत्र प्रमदाय पुंसाम्।
मधूनि वक्त्राणि च कामिनीना-
मामोदकर्मव्यतीहारमीयुः॥'[८०]

अर्थात् उस द्वारिकापुरी में स्वाभाविक सुगन्धि धारण करने वाली मदिरा तथा कामिनियों के मुख रसिक युवकों के आनन्द के लिए एक-दूसरे को सुगन्भित करते थे।

भाव यह कि युवक लोग मदिरा और कामिनियों के अधरों का रसपानकर एक ही स्वाभाविक सुगन्धि से दूसरे को सुगन्धित बना रहे थे। तात्पर्य यह है कि यहाँ के निवासी उन्मुक्त भोग-विलास करने वाले थे।

'रतान्तरे यत्र गृहान्तरेषु
वितर्दिनिर्यूहविटङ्कनीडः।
रुतानि शृण्वन्वयसां गणोऽन्ते-
वासित्वमापस्फुटमङ्गनानाम्।।'[८१]

अर्थात् उस द्वारकापुरी के भवनों के भीतर बनी हुई विहार वेदिकाओं के बाहर निकले हुए काष्ठ के अग्रभाग में रहने वाले तोता, मैना आदि पक्षियों ने, रमणियों के सुरतकालिक शब्दों को सुन-सुन स्पष्ट ही उनकी शिष्यता प्राप्तकर ली थी। भाव यह कि उन पक्षियों ने रमणियों के रति के समय के सीत्कार आदि शब्दों को बोलना सीख लिया था।

'इतस्ततोऽस्मिन् विलसन्ति मेरोः
समानवप्रे मणिसानुरागाः।
स्त्रियश्च पत्यौ सुरसुन्दरीभिः
समा नवप्रेमणि सानुरागाः।।'[८२]

अर्थात् सुमेरु पर्वत के समान चोटियों वाले इस रैवतक गिरि पर इधर-उधर रत्नयुक्त तट की किरणें फैल रही हैं तथा अभिनव प्रेमयुक्त पति में अनुरक्त चित्त वाली अप्सराओं के समान सुन्दरी रमणियाँ इधर-उधर क्रीड़ा कर रही हैं। तात्पर्य यह कि परस्पर अनुराग भरे दम्पत्ति तथा उनके बिहार के अनुरूप मनोरम स्थलों का इस पर्वत में प्राचुर्य है।

'अयमतिजरठाः प्रकामगुर्वी-
रलघुविलम्बिपयोधरोपरुद्धाः।
सततमसुमतामगम्यरूपाः
परिणतदिक्करिकास्तटीर्बिभर्ति।।।'[८३]

अर्थात् यह रैवतक गिरि अत्यन्त कठिन (कुमारीपक्ष में, अतिवृद्धा) बहुत ऊँची (पक्ष में, बहुत मोटी) बड़े विशाल मेघों से घिरी हुई (पक्ष में बड़े-बड़े लम्बे स्तनों से युक्त) सर्वदा (अति उन्नत होने के कारण) जीवधारियों से अगम्य (वृद्धा होने के कारण पुरुषों से अगम्य तथा तिरछे दाँत के प्रहार करने वाले दिग्गजों से युक्त तटियों को (जिसके अङ्गों पर दाँतों एवं नखों के क्षत के घिट्टे पड़ गये हैं, ऐसी वृद्धा कुमारियों को) धारण करता है।

'वर्जयन्त्या जनैः सङ्गमेकान्तत-
स्तर्कयन्त्या सुखं सङ्गमे कान्ततः।
योषयैष स्मरासन्नतापाङ्ग्या
सेव्यतेऽनेकया सन्नतापाङ्ग्या॥'[८४]

अर्थात् यह रैवतक पर्वत, एकान्त में प्रियतम के समागम में सुख की कल्पना से लोगों के साथ को छोड़ने वाली, कामदेव के ताप से सन्तप्त अङ्गों वाली अतएव नम्र अपाङ्गों वाली अनेक रमणियों से सेवित है। कहने का अभिप्राय यह कि इच्छानुरूप विहार करने के स्थलों से यह पर्वत भरा हुआ है।

'या न ययौ प्रियमन्यवधूभ्यः
सारतरागमना यतमानम्।
तेन सहेह विभर्ति रहः स्त्री
सा रतरागमनायतमानम्॥'[८५]

अर्थात् इस रैवतक गिरि पर दूसरी स्त्रियों की अपेक्षा समागम करने में श्रेष्ठ जो रमणी प्रार्थना करने पर भी अपने प्रियतम के साथ नहीं जाती थी, वही (रमणी) एकान्त में अपने उसी प्रेमी के साथ थोड़ी देर तक मान करने के बाद स्वयमेव रमण की अभिलाषिणी बन जाती है। तात्पर्य यह है कि रैवतक अत्यन्त मान करने वाली रमणियों को भी उदीप्तकर देने वाला है।

'या बिभर्ति कलवल्लकीगुण-
स्वानमानमतिकालिमाऽलया।
नात्र कान्तमुपगीतया तया
स्वानमा नमति काऽलिमालया॥'[८६]

अर्थात् इस रैवतक गिरि पर अतिशय कृष्णवर्ण की घूमती हुई जो भ्रमर-पङ्क्ति है, वह वीणा के तारों के सुमधुर शब्दों की समानता प्राप्त करती है। समीप में गान करती हुई उस भ्रमर पङ्क्ति से सुखपूर्वक आकर्षित करने योग्य कौन कामिनी अपने प्रियतम के प्रति नहीं विनम्र हो जाती? (प्रत्युत सभी हो जाती हैं)।

तात्पर्य यह है कि यह रैवतक इतना कामोद्दीपक है कि सभी सुन्दरियाँ अपना मान छोड़कर प्रियतम को शीघ्र ही प्रणाम करती हैं।

'दधद्भिरभितस्तटौ विकचवारिजाम्बूनदै-

विनोदितदिनक्लमाः कृतरुचश्च जाम्बूनदैः।

निषेव्य मधु माधवाः सरसमत्र कादम्बरं

हरन्ति रतये रहः प्रियतमाङ्गकादम्बरम्॥'[८७]

अर्थात् इस रैवतक पर्वत पर विकसित कमलों से युक्त जल वाले दो तटों को धारण करने वाली नदियों से जिनके दिन का परिश्रम दूर कर दिया गया है एवं सुवर्ण के आभूषणों से जिनकी शोभा बहुत बढ़ गई है, ऐसे यादवगण स्वादुयुक्त इक्षु के मद्य को पीकर रति के लिए एकान्त में अपनी प्रियतमाओं के अङ्गों से वस्त्र का अपहरण कर रहे हैं। भाव यह है कि यादवगण इस पर्वत पर निशङ्क विहार कर रहे हैं।

'दर्पणनिर्मलासु पतिते घनतिमिरमुषि

ज्योतिषि रौप्यभित्तिषु पुरः प्रतिफलति मुहुः।

व्रीडमसम्मुखोऽपि रमणैरपहृतवसनाः

काञ्चनकन्दरासु तरुणीरिह नयति रविः॥'[८८]

अर्थात् इस रैवतक पर्वत में सूर्य, दर्पण की भाँति निर्मल अग्रवर्ती रजतमयी भित्तियों पर गिरती हुई, घने अन्धकार को दूर करने वाली अपनी किरणों के सुवर्णमयी कन्दराओं में बारम्बार प्रतिफलित होने के कारण, अपने प्रियतमों द्वारा निर्वस्त्र की गई तरुणियों को, सम्मुखस्थ न होते हुए भी अर्थात् परोक्ष में रहकर लज्जित करता है।

तात्पर्य यह कि रमणियाँ सुवर्णमयी कन्दराओं में क्रीड़ा के लिए प्रियतमों के साथ जब प्रवेश करती थीं, तो प्रियतम अन्धकार समझकर उनका वस्त्र छीनकर उन्हें नग्न कर देते थे, किन्तु कन्दरा के सम्मुख रजतमयी भित्ति पर सूर्य की किरणें जब पड़ती थीं, तब उनका प्रतिविम्ब कन्दराओं में भी प्रतिफलित होकर प्रकाश कर देता था और इस प्रकार आकस्मिक रूप से प्रकाश हो जाने पर वे रमणियाँ लज्जित हो जाती थीं।

'त्रासाकुलः परिपतन् परितो निकेतान्

पुंभिर्न कैश्चिदपि धन्विभिरन्वबन्धि।

तस्थौ तथापि न मृगः क्वचिदङ्गनाना-

माकर्णपूर्णनयनेषु हतेक्षणश्रीः॥'[८९]

अर्थात् (भीड़-भाड़ को देखकर) डरे हुए, अतएव आवासस्थल से निकलकर चारों ओर भागते हुए हिरणों का किसी धनुषधारी पुरुष ने यद्यपि पीछा

नहीं किया, तथापि ऐसा मालूम पड़ता था मानों रमणियों के कान तक फैलै हुए नयनरूपी वाणों से नेत्रों की शोभा के हर लिए जाने के कारण वे (हिरण) कहीं भी स्थिर न रह सके।

भाव यह है कि वीरों के वाणों का भय यद्यपि हिरणों को नहीं हुआ, किन्तु रमणियों के नेत्ररूपी वाण से वे ऐसे घायल हुए कि ठहर नही सके।

'स्मरहुताशनमुर्मुरचूर्णतां
दधुरिवाम्रवणस्य रजः कणाः।
निपतिताः परितः पथिकव्रजा-
नुपरि ते परितेपुरतो भृशम्॥'[१०]

अर्थात् आम के वनों का रजःकण मानों कामरू अग्नि के तुषानल (भूसी की आग, जो बहुत तेज होती है) के मुरमुराते हुए चूर्ण के समान, पथिकों के ऊपर पड़कर उनको अधिक से अधिक संताप पहुँचाने लगे।

'रतिपतिप्रहितेव कृतक्रुधः
प्रियतमेषु वधूरनुनायिका।
बकुलपुष्परसासवपेशल-
ध्वनिरगान्निरगान्मधुपावलिः॥'[११]

अर्थात् अपने प्रियतमों के ऊपर क्रुद्ध (मानिनी) स्त्रियों को उनके पति के पास भेजने वाली मानों कामदेव से प्रेरित की भाँति वकुल अर्थात् मौलिश्री के पुष्परसरूपी आसव के पान से अधिक मधुर स्वर वाली भ्रमरों की पङ्क्तियाँ वृक्षों से बाहर निकल पड़ी।

तात्पर्य यह कि वृक्षों के बाहर निकलने वाले भ्रमरों की मधुर ध्वनि सुनकर मानिनी स्त्रियाँ अपना मान त्यागकर स्वयं पति के पास जाने को उद्यत होने लगीं। कवि उसी की उत्प्रेक्षा करता है मानों उस भ्रमर पङ्क्ति को स्वयं कामदेव ने प्रेरित किया हो।

'प्रियसखीसदृशं प्रतिबोधिताः
किमपि काम्यगिरा परपुष्टया।
।प्रयतमाय वपुर्गुरुमत्सर-
च्छिदुरयाऽदुरयाचितमङ्गनाः॥'[१२]

अर्थात् भारी द्वेष (गम्भीर मान) को काट फेंकने वाली, मनोहर वाणी बोलने वाली प्रिय सखी के समान कोयलों द्वारा, कुछ रहस्यपूर्ण बातों से

प्रतिबोधित कामिनियाँ प्रियतम की प्रार्थना के बिना ही उन्हें अपना अङ्ग समर्पित करने लगी।

भाव यह है कि कोयल की कूक सुनते ही मानिनी स्त्रियों का मान दूर हो गया और वे स्वतः अपने प्रियतमों को अपना अङ्ग समर्पित करने लगीं। कवि इसकी उत्प्रेक्षा करता है कि मानों प्रिय सखी के समान कोयले उन्हें मधुर स्वर में कुछ रहस्य की बातें बता जाती हैं कि उन्हें अपना मान तोड़ना ही पड़ता है।

'मधुकरैरपवादकरैरिव
स्मृतिभुवः पथिका हरिणा इव।
कलतया वचसः परिवादिनी-
स्वरजिता रजिता वशमाययुः॥'[९३]

अर्थात् मृगों को धोखा में डालने के लिए घण्टा आदि कुत्सितवाद्यों को बजाने वाले बहेलियों के समान मधुकरों ने परिवादिनी नामक वीणा विशेष के स्वर को पराजित करने वाली अपने गुञ्जार की मधुरता से हरिणों के समान, पथिकों के चित्त को हर लिया और उन्हें कामदेव के वश में कर दिया।

तात्पर्य यह कि जिस प्रकार बहेलियों के मोहक वाद्य से मुग्ध मृग उनके गड्ढों में जाकर गिर पड़ते हैं, उसी प्रकार भ्रमरों के गुञ्जार की मधुरता से मुग्ध पथिक काम के वश में हो गये।

'मधुरया मधुबोधितमाधवी-
मधुसमृद्धिसमेधितमेधया।
मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मद-
ध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे॥'[९४]

अर्थात् मधुर स्वर में गुञ्जार करने वाली भ्रमरियों की प्रतिभा वसन्तऋतु के आगमन से प्रफुल्लित माधवी लता के मकरन्द (पान) के कारण बहुत बढ़ गयी और वे बार-बार मन को उन्मत्त करने वाली ध्वनि से अस्पष्ट गान करने लगीं। कहने का मतलब यह कि भ्रमरों का गुञ्जार सुनकर कामियों में रसोद्रेक होता ही है।

'गजकदम्बकमेचकमुच्चकै-
र्नभसि वीक्ष्य नवाम्बुदमम्बरे।
अभिससार न वल्लभमङ्गना-
न चकमे च कमेकरसं रहः॥'[९५]

अर्थात् श्रावण के महीने में आकाश में हाथियों के समूहों के समान काले रङ्ग के ऊँचे और नवीन बादलों को देखकर कौन ऐसी रमणी थी, जो अपने अनन्य प्रेमी प्रियतम को एकान्त में नहीं चाहने लगी तथा उसके पास अभिसार नहीं करने लगी? श्रावण के काले बादल कामिनियों का उद्दीप्त करते ही हैं।

'जातप्रीतिर्या मधुरेणानुवनान्तं
कामे कान्ते सारसिका काकुरुतेन।
तत्सम्पर्कं प्राप्य पुरा मोहनलीलां
कामेकान्ते सा रसिका का कुरुते न॥'[९६]

अर्थात् उद्यानों में सारसी के सुमधुर किन्तु विकृत स्वर को सुनकर कामदेव के समान मनोहर प्रियतम के प्रति सभी रमणियाँ अनुरागयुक्त हो जाती हैं। भला कौन ऐसी रमणी है; जो एकान्त में अपने प्रियतम के सानिध्य को प्राप्तकर पहले ही (प्रियतम की प्रेरणा से पूर्व ही) सब प्रकार की संभोग लीलाओं को नहीं करती हैं? अर्थात् सभी रमणियाँ सब प्रकार के कामशास्त्र प्रसिद्ध संभोग करने लगती हैं।

'कान्ताजनेन रहसि प्रसभं गृहीत
केशे रते स्मरसहासवतोषितेन।
प्रेम्णा मनस्सु रजनीष्वपि हैमनीषु
के शेरते स्म रसहासवतोषितेम॥'[९७]

अर्थात् काम को उत्तेजित करने वाली मदिरा के पान से सन्तुष्ट, हृदय में प्रीति एवं मुख में हँसी से सुशोभित एवं प्रेम के कारण प्रियतम के चित्त में निवास करने वाली रमणियों के साथ, एकान्त में बलपूर्वक चोटी पकड़कर संभोग करते हुए कौन ऐसा युवापुरुष होगा, जो हेमन्तऋतु की (लम्बी) रातों में भी (क्षणभर के लिए) सोया होगा? अर्थात् ऐसा कोई युवापुरुष न होगा।

'अविरलपुलकः सह व्रजन्त्याः
प्रतिपदमेकतरः स्तनस्तरुण्याः।
घटितविघटितः प्रियस्य
वक्षस्तटभुवि कन्दुकविभ्रमं वभार॥'[९८]

अर्थात् अपने प्रियतम के साथ-साथ चलती हुई तरुणी का (प्रियतम से) निरन्तर बार-बार लगने और अलग होने से अतिशय रोमाञ्चयुक्त एक स्तन प्रियतम के वक्षस्थलरूपी धरती पर कन्दुक की शोभा धारण कर रहा था।

'जघनमेलघूपीवरोरु कृच्छ्रा-
दुरुनिबिरीसनितम्बभारखेदि।
दयिततमशिरोधरावलम्बिस्व-
भुजलताविभवेन काचिदूहे।।'[९९]

अर्थात् कोई नायिका अपने भारी सघन नितम्बभाग के भार से निपीडित अत्यन्त मोटे जघनस्थल को प्रियतम के कंठ में दोनों लतारूपी भुजाओं को डालकर, उन्हीं के बल से बड़ी कठिनाई से वहन कर रही थी।

'घूर्णयन् मदिरास्वादमदपाटलितद्युती।
रेवती वदनोच्छिष्टपरिपूतपुटे दृशौ ।'[१००]

अर्थात् मदिरा के पान करने के कारण उत्पन्न मादकता से थोड़ी-थोड़ी रक्तवर्ण की कान्ति से युक्त एवं रेवती के मुख से जूठी होने के कारण पवित्र दोनों पलकों वाली आँखों को इधर-उधर घुमाते हुए (बलराम जी बोले)।

भाव यह कि रेवती ने रति के समय बलराम की आँखों को जो बार-बार चूमा था, उससे उनकी पलकें पवित्र हो गई थीं। जूँठी होने से सभी वस्तुएँ अपवित्र हो जाती हैं किन्तु **'रतिकाले मुखं स्त्रीणां शुद्धमाखेटके शुनाम्'** अर्थात् रति के समय स्त्रियों का तथा शिकार में कुत्तों का मुख पवित्र रहता है, इस उक्ति से यहाँ जूठी होने पर भी बलराम की आँखें पवित्र थीं।

उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि माघ कामकला के रहस्यों से परिचित थे।

सन्दर्भ

१. शिशु॰ ५/३६
२. शिशु॰ ५/४८
३. शिशु॰ ५/४९
४. शिशु०. ६/४९
५. शिशु०. ५/५
६. शिशु०. ५/६
७. शिशु०. ५/७
८. शिशु०. ५/३०
९. शिशु॰ ५/३१
१०. शिशु०, ६/५०

अन्य शास्त्रों के सन्दर्भ

११. शिशु०, ६/५१
१२. शिशु०, ९/१८
१३. शिशु०, ९/४५
१४. शिशु०, ११/७
१५. शिशु०, ११/४९
१६. शिशु०, १२/५
१७. शिशु०, १२/११
१८. शिशु०, १३/१७
१९. शिशु०, १२/१२
२०. शिशु०, १२/१५
२१. शिशु०, १२/१६
२२. शिशु०, १२/२८
२३. शिशु०, १२/४९
२४. शिशु०, ५/१०
२५. शिशु०, ५/६०
२६. शिशु०, ५/४
२७. शिशु०, ५/५६
२८. शिशु०, ५/५३
२९. शिशु०, ५/५४
३०. शिशु०, ५/५५
३१. शिशु०, ५/५७
३२. शिशु०, ५/५८
३३. शिशु०, ५/५९
३४. शिशु०, ५/६१
३५. शिशु०, ११/११
३६. शिशु०, १२/२२
३७. शिशु०, १२/६
३८. शिशु०, १२/१७
३९. शिशु०, १२/३१
४०. शिशु०, ५/६२
४१. शिशु०, ५/६३

४२. शिशु०, ५/६४
४३. शिशु०, ५/६५
४४. शिशु०, ५/६६
४५. शिशु०, १२/९
४६. शिशु०, १२/४०
४७. शिशु०, १२/४१
४८. शिशु०, १/१०
४९. शिशु०, ११/१
५०. शिशु०, २/९०
५१. शिशु०, ४/३३
५२. शिशु०, ४/३६
५३. शिशु०, ४/५७
५४. शिशु०, ४/६१
५५. शिशु०, ६/९
५६. शिशु०, ६/२०
५७. शिशु०, ६/४९
५८. शिशु०, १०/६४
५९. शिशु०, ११/२
६०. शिशु०, ११/१०
६१. शिशु०, १२/११
६२. शिशु०, १९/४७
६३. शिशु०, २/१०
६४. शिशु०, २/५४
६५. शिशु०, २/८८
६६. शिशु०, २/९३
६७. शिशु०, २/९४
६८. शिशु०, २/९६
६९. शिशु०, ४/३४
७०. शिशु०, ९/३६
७१. शिशु०, १२/२५
७२. शिशु०, २०/७६

अन्य शास्त्रों के सन्दर्भ

७३. शिशु०, १/५९
७४. शिशु०, २/४४
७५. शिशु०, ३/१४
७६. शिशु०, ३/१५
७७. शिशु०, ३/१६
७८. शिशु०, ३/४५
७९. शिशु०, ३/५३
८०. शिशु०, ३/५४
८१. शिशु०, ३/५५
८२. शिशु०, ४/२७
८३. शिशु०, ४/२९
८४. शिशु०, ४/४२
८५. शिशु०, ४/४५
८६. शिशु०, ४/५७
८७. शिशु०, ४/६६
८८. शिशु०, ४/६७
८९. शिशु०, ५/२६
९०. शिशु०, ६/६
९१. शिशु०, ६/७
९२. शिशु०, ६/८
९३. शिशु०, ६/९
९४. शिशु०, ६/२०
९५. शिशु०, ६/२६
९६. शिशु०, ६/७६
९७. शिशु०, ६/७७
९८. शिशु०, ७/१५
९९. शिशु०, ७/२०
१००. शिशु०, २/१६

सप्तम अध्याय

माघ के मूल्याङ्कन में प्रचलित उक्तियों की समीक्षा तथा उदात्त-सन्देश

महाकवि माघ के काव्य का रसास्वादन करने वाले कुछ सहृदय पाठकों एवं समालोचकों ने उनके काव्य के सारगर्भित तथ्यों एवं उनकी विद्वता को देखकर उनके विषय में अनेक सूक्तियाँ बना डाली हैं। माघ के महाकाव्य शिशुपालवध में अनेक ऐसी उक्तियाँ हैं; जिनके माध्यम से वे समाज तथा देश की जनता को अवगत कराना चाहते हैं, ऐसा अनुमानतः कहा जा सकता है। यदि उनकी उक्तियों को कार्य रूप में वर्णित किया जाये, तो वह जीवन के प्रति सुखदायी होगा; साथ ही व्यावहारिक पक्ष की दृष्टिकोण से व्यवहार में आने वाली अनेक शिक्षाओं को भी अवगत कराते हैं। सामाजिक शिष्टाचार को तो वे इस रूप में दिखाते हैं कि उससे **'अतिथि देवोभव'** की भावना लोगों के हृदय में भर देना चाहते हैं। इस प्रकार उनकी उक्तियों से बहुत कुछ सीखा जा सकता है।

उक्तियाँ

१-'माघे सन्ति त्रयो गुणाः'

महाकवि कालिदास मानवमन की सूक्ष्म वृत्तियों के सफल चित्रकार हैं। उनके काव्य में हृदय की गम्भीरता का अभिव्यक्तिकरण हुआ है। उन्होंने प्रतिभा के वरदहस्त को प्राप्त करके अपने काव्य की शैली का स्वयं ही निर्माण किया है। अपनी सरस काव्यधारा में तीव्रता तथा उत्कर्ष लाने के लिए महाकवि कालिदास ने अलङ्कारों का भी प्रयोग किया है। **'उपमा कालिदासस्य'** की भणिति वस्तुतः सत्य है-यह महाकवि की सफलता का द्योतन करती है।

महाकवि भारवि का काव्य अपने 'अर्थगौरव' के लिए विवेचकों में प्रसिद्ध है- **'भारवेरर्थगौरवम्'**। कहने का आशय यह है कि अल्प शब्दों में विपुल अर्थो

का सन्निवेश कर देना, उनके अर्थगौरव का परिचायक है। इस प्रकार से भारवि ने बड़े अर्थ को थोड़े से शब्दों के द्वारा प्रकटकर वास्तव में अपनी अनुपम काव्यचातुरी दिखाई है।

इसी प्रकार महाकवि श्रीहर्ष या दण्डी का काव्य अपने 'पदलालित्य' के लिए कवियों एवं आलोचकों में प्रसिद्ध है– **'नैषधे (दण्डिनः) पदलालित्यम्'** का तात्पर्य–पदों का ललितविन्यास। इस प्रकार महाकवि श्रीहर्ष अथवा दण्डी ने अपने काव्य में पदों का ललितविन्यास करने में अपनी दक्षता प्रदर्शित की है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि महाकवि कालिदास की उपमाएँ, महाकवि भारवि का अर्थगौरव एवं महाकवि श्रीहर्ष अथवा दण्डी का पदलालित्य– **'ये सब सुसज्जित निकेतन के उस गमले के गुल्म है, जिनमें केवल एक ही सुमन अपनी पुष्प धूलि से सम्पूर्ण गृहाङ्गण को सौरभान्वित करके अनिल के साथ थपेड़े खाता हुआ निखिल विश्व को सुगन्धित करता है किन्तु महाकवि माघ का 'शिशुपालवध' वह विशाल अलङ्कृत उद्यान है, जिसमें उपमावल्लरी, अर्थगरिमास्तम्ब एवं पदलालित्य सहकार की कलिकाएँ एवं मञ्जरियाँ अपने आलोकसामान्यपुष्परस एवं सुरभि से सहृदय मधुपों को आप्यायित एवं सुरभित करती है।'**[१]

इस प्रकार महाकवि माघ का वैदुष्य एकाङ्गी न होकर सर्वाङ्गीण है। उसमें कालिदास के तुल्य सुन्दर उपमा प्रयोग ही नहीं, अपितु भारवि के समान अर्थगौरव एवं श्रीहर्ष तथा दण्डी के तुल्य पदलालित्य भी है। वस्तुतः महाकवि माघ का दृष्टिकोण यह रहा है कि उनकी कविता में उस समय तक प्रचलित सभी गुण आ जायें, जिससे किसी भी दृष्टि से देखने पर उनका काव्य एकाङ्गी या न्यून प्रतीत न हो। शायद इसीलिए उन्होंने एक ओर अलङ्कारों का सुन्दर प्रयोग किया है, तो दूसरी ओर भावसौष्ठव का। एक ओर उपमा का सौन्दर्य है तो दूसरी ओर अर्थान्तरन्यास की छटा। एक ओर भाषासौष्ठव है तो दूसरी ओर भावगाम्भीर्य। इसी समन्वयात्मकता से मुग्ध होकर **'माघे सन्ति त्रयोगुणाः'** कहा गया है।

यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि **'माघे सन्ति त्रयो गुणाः'** का यह अर्थ कदापि नहीं है कि महाकवि माघ उपमा प्रयोग में कालिदास से, अर्थगौरव में भारवि से तथा पदलालित्य में श्रीहर्ष या दण्डी से बढ़कर है, अपितु इसका आशय यह है कि काव्य के जो विशिष्ट गुण कालिदास, भारवि, श्रीहर्ष एवं दण्डी में मिलते हैं; वे सभी गुण माघ के काव्य में एक साथ विद्यमान हैं।

महाकवि माघ की व्यञ्जनाप्रणाली और अनुपमकल्पनाचातुरी में कालिदास की सी उपमाओं, भारवि के से अर्थगाम्भीर तथा श्रीहर्ष एवं दण्डी के से पदलालित्य का अभाव नहीं है। माघ की शब्दयोजना तो इतनी सुगठित एवं ललित है कि कोई भी शब्द अपने स्थान से हटाया नहीं जा सकता है।

अब **'माघे सन्ति त्रयो गुणाः'**–इस उक्ति की चरितार्थता महाकवि माघ के कुछ उद्धरणों से स्पष्ट हो जाएगी। इनकी उपमाएँ अतिशयमनोरम एवं भावपेशल हैं। सहृदयहृदय के आनन्दसन्दोह का उद्वहन करने वाली कुछ उपमाएँ प्रस्तुत हैं।

उपमा की सुन्दर-योजना

नवीन चमत्कारी उपमा का विन्यास महाकवि माघ की विशिष्टता का परिचायक है। माघ के पात्रों में खूब सजीवता देखने को मिलती है। आकाश से उतरने वाले काले-काले मेघों के सामने कर्पूरपाण्डुर महर्षि नारद के रूपचित्रण में कवि जितना सफल है, उतना ही उनके सन्देश कथन में भी। भगवान् श्रीकृष्ण का रूप तथा उनका सहिष्णुचरित्र बड़ा ही सुन्दर है। नित्यपरिचित वस्तुओं में भी नवीनता का सञ्चार करती है। वह प्रकृति के हृदययोग को समझता है तथा सुमधुर शब्दों में उसे अभिव्यक्त करता है। प्रातःकालीनदिवाकर का बालकरूप में चित्रण कवि के सरस हृदय का परिचायक है। यथा–

'उदयशिखरिशृङ्गप्राङ्गणेष्वेष रिङ्गन्
सकमलमुखहासं विक्षितः पद्मिनीभिः।
विततमृदुकराग्रः शब्दयन्त्या वयोभिः
परिपतति दिवोऽङ्के हेलया बालसूर्यः॥'[२]

अर्थात् यह उदयकालिक बालसूर्य उदयाचल के विस्तृत शिखरों के आँगन में घूमता हुआ, पद्मिनियों द्वारा कमलरूपी मुख के हास्य के साथ देखा जाता हुआ, मानों पक्षियों के कलरव में बुलाती हुई अपनी माता (आकाश) की गोद में अपने कोमल करों के अग्रभाग को फैलाता हुआ लीलापूर्वक हँसते-हँसते चला जा रहा है।

तात्पर्य यह है कि प्रभात का सूर्य धीरे-धीरे आकाश में ऊपर चढ़ रहा है। बालक भी जब इसी प्रकार आँगन में खेलता है; तो बहुत सी सुन्दरियाँ उसे देखती हैं, और उसकी माँ 'आ जाओ बेटा', इधर आओ' ऐसा कहकर अपनी गोद में उसे बुलाती हैं और वह सुन्दर बालक अपने कोमल हाथों को आगे बढ़ाता हुआ हँसते-खेलते अपनी माता की गोद में आ विराजता है।

महाकवि माघ का प्राची का रङ्गीनदृश्य चिरस्मरणीय है; जैसा कि द्रष्टव्य है–

'विततपृथुवरत्रातुल्यरूपैर्मयूखैः
कलश इव गरीयान्दिग्भिराकृष्यमाणः।
कृतचपलविहङ्गालापकोलाहलाभि-
र्जलनिधिजलमध्यादेष उत्तार्यतेऽर्कः॥'[13]

अर्थात् चारों ओर फैली हुई मोटी रस्सियों के समान, किरणों के द्वारा खीञ्चा जाता हुआ बड़े भारी कलश के समान यह सूर्य दिशारूपी नारियों के द्वारा समुद्र के जल से निकाला जा रहा है। जिस प्रकार से कलश रस्सी की सहायता से बाहर निकाला जाता है, उसी प्रकार पूर्व समुद्र में डूबे हुए सूर्य को दिशाएँ किरणरूपी रस्सियों से खीञ्चकर निकाल रही हैं। जिस प्रकार जल में डूबे हुए घड़े को जल से निकालने में बड़ा कोलाहल मचता है, उसी प्रकार प्रातःकाल की चुहचुहाती चिड़ियाँ शोर मचा रही हैं। प्रातःकाल के समय पक्षियों का मनोहर कोलाहल कर्णपुट को सुख देता है। चारों ओर किरणें फैलाने वाले बालसूर्य का यह सुन्दर वर्णन है।

रैवतक से बहने वाली नदियों के वर्णन में कवि अपने प्रेमी हृदय का परिचय देता है। यथा–

अपशङ्कमङ्कपरिवर्तनोचिता-
श्चलिताः पुरः पतिमुपैतुमात्मजा।
अनुरोदितीव करुणेन पत्रिणां
विरुतेन वत्सलतयैष निम्नगाः॥'[14]

अर्थात् निःशङ्क होकर गोद में लोट-लोटकर खेलने में अभ्यस्त और अब अपने पति (समुद्र) से मिलने के लिए आगे की ओर चलती हुई अपनी पुत्री नदियों के लिए यह रैवतक मानों वात्सल्यवश पक्षियों के करुणस्वर में पीछे से रो रहा है।

महाकवि माघ के काव्य में अनेक उपमाएँ ऐसी हैं, जिसमें कालिदास जैसा औपमिक चमत्कार मिलता है। शास्त्रीय उपमान की दृष्टि से कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है–

'अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा॥'[15]

अर्थात् जिस प्रकार (महाभाष्य के) पस्पशाह्निक के ज्ञान के बिना व्याकरणशास्त्र की शोभा नहीं होती, उसी प्रकार राजनीति गुप्तचर के बिना सुशोभित नहीं होती।

कवि ने नारद की पर्वतराज हिमालय से कितनी सुन्दर उपमा प्रस्तुत की है–

'दधानमम्भोरुहकेसरद्युती-
जटाः शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम्।
विपाकपिङ्गास्तुहिनस्थलीरुहो
धराधरेन्द्रं व्रततीततीरिव॥'[६]

रैवतक पर्वत की श्रेष्ठ द्विज के साथ समानता करते हुए महाकवि ने उपमा में अद्भुतचमत्कार पैदा कर दिया है–

'विद्वद्भिरागमपरैर्विवृतं कथञ्चिच्छ्रु-
त्वापि दुर्ग्रहमनिश्चितधीभिरन्यैः।
श्रेयान्द्विजातिरिव हन्तुमघानि दक्षं
गूढार्थमेष निधिमन्त्रगणं बिभर्ति॥'[७]

जिस प्रकार बौद्धों के अनुसार पाँच स्कन्धों के अतिरिक्त आत्मा नाम की कोई वस्तु नहीं है, उसी प्रकार राजा के लिए सन्धि-विग्रहादि पाँच अङ्गों के अतिरिक्त कोई मन्त्र नहीं है–

'सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्धपञ्चकम्।
सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम्॥'[८]

निम्नलिखित श्लोक में मेघ के समान नीलवर्ण वाली मुक्तलता से सुशोभित श्रीकृष्ण के वक्षस्थल की समानता आकाशगङ्गा से देते हुए कवि ने अनुपमकौशल का प्रदर्शन किया है–

'उभौ यदि व्योम्नि पृथक्प्रवाहा-
वाकाशगङ्गापयसः पतेताम्।
तेनोपमीयेत तमालनीलमा-
मुक्तमुक्तालतमस्य वक्षः॥'[९]

इस प्रकार माघ की उपमाओं के पर्यालोचन से यह कहा जा सकता है कि कालिदास जैसी सुष्ठुता एवं मनोहरता माघकाव्य में भी है। इसलिए **'उपमा कालिदासस्य'** यह उक्ति अन्वर्थ दिखाई देती है।

अर्थगौरव की सुन्दर योजना

भारवि के समान माघ में भी अर्थगौरव के उत्पादन में विशेष क्षमता थी। वे भलीभाँति जानते थे कि कतिपय वर्णों के ही विन्यास से वाङ्मय में अनन्त विचित्रता उसी प्रकार उत्पन्न होती है, जिस प्रकार केवल सात स्वरों से ग्रथित होने वाला गायन अनन्तरूप से विचित्र बन जाता है–

वर्णैः कतिपयैरेव ग्रथितस्य स्वरैरिव।
अनन्ता वाङ्मयस्याहो गेयस्येव विचित्रता॥'[१०]

महाकवि माघ निम्नलिखित पद्य में वाणी के प्रतान को पटी के प्रसार के समकक्ष मानते हैं–

'वह्वपि स्वेच्छया कामं प्रकीर्णमभिधीयते।
अनुज्झितार्थसम्बन्धः प्रबन्धो दुरुदाहरः॥'[११]

अर्थगाम्भीर्य से माघकाव्य भरा पड़ा है। दार्शनिक तथ्यों में कितना सुन्दर अर्थगाम्भीर्य है–

'तस्य सांख्यपुरुषेण तुल्यतां
विभ्रतः स्वयमकुर्वतः क्रियाः।
कर्तृता तदुपलम्भतोऽभवद्-
वृत्तिभाजि करणे यथर्त्विजि॥'[१२]

अर्थात् स्वयं (हवनादि) कार्य नहीं करते (पक्षा०-पुण्यपापादि से उदासीन रहते) हुए (अतएव) सांख्यशास्त्रसम्मत आत्मा की समानता को धारण करते हुए उस युधिष्ठिर का, अन्तःकरण में (हवनादि) कार्यों को ऋत्विजों के (पक्षा०-पुण्यपापादि कर्मों को बुद्धि के) करते रहने पर उसकी प्राप्ति होने से कर्तृत्व हुआ।

सांख्यशास्त्र का यह मत है कि पुरुष (आत्मा) स्वयं पुण्यपापादि कर्म नहीं करता, अपितु बुद्धि करती है और उसकी प्राप्ति होने से आत्मा ही उन कार्यों को करने वाला माना जाता है, उसी प्रकार युधिष्ठिर यज्ञ में स्वयं हवनादि कार्य नहीं करते थे, ऋत्विक् लोग ही करते थे और उसका फल युधिष्ठिर को प्राप्त होने से युधिष्ठिर अपने को उन कर्मों को करने वाला मानते थे।

'संशयाय दधतोः सरूपतां
दूरभिन्नफलयोः क्रियां प्रति।
शब्दशासनविदः समासयो-
र्विग्रहं व्यवससुः स्वरेण ते॥'[१३]

अर्थात् व्याकरणशास्त्र के ज्ञाता वे (ऋत्विज्) लोग, सन्देह (उत्पन्न करने) के लिए समान रूप वाले अर्थात् समान रूप होने से सन्देहोत्पादक, (किन्तु) कार्य के प्रति भिन्न फल देने वाले दो समासों के विग्रह का स्वर के द्वारा निर्णय करते थे।

तात्पर्य यह है कि स्वर या वर्ण के शुद्ध उच्चारण नहीं होने पर दोषयुक्त-मन्त्र वास्तविक अर्थ को नहीं कहता है अर्थात् मन्त्रोक्त फल को नहीं देता है, अपितु वह मन्त्रात्मक वाग्वज्र यजमान का ही नाश कर देता है, जिस प्रकार स्वर के अपराध (दोष) से यज्ञ करने वाला इन्द्र का शत्रु ही मारा गया।

निम्नलिखित पद्य में राजा के स्वरूप का कितना सुन्दर एवं चमत्कारी चित्रण है-

'बुद्धिशस्त्रः प्रकृत्यङ्गो घनसंवृतिकञ्चुकः।
चारेक्षणो दूतमुखः पुरुषः कोऽपि पार्थिवः॥'[१४]

अर्थात् बुद्धिरूपी शस्त्रवाला प्रकृति (स्वामी, मन्त्री आदि सात) रूपी अङ्गों वाला, मंत्र अत्यन्तगोपनरूप कवच वाला, गुप्तचररूप नेत्रों वाला और दूत रूपी मुख वाला कोई भी पुरुष राजा होता है। (या कोई राजा भी पुरुष होता है)।

निम्नलिखित श्लोक में कितना सारगर्भितभाव है-

'प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ
विफलत्वमेति बहुसाधनता।
अवलम्बनाय दिनभर्तुर-
भून्न पतिष्यतः करसहस्रमपि॥'[१५]

अर्थात् चन्द्रमा भाग्य के प्रतिकूल होने पर अनेक साधन भी निरर्थक होते हैं। चन्द्रमा के प्रतिकूल दिशा में होने पर अस्त होते हुए सूर्य की हजारों किरणें भी रोकने में समर्थ नहीं होती हैं।

तात्पर्य यह है कि ज्योतिषशास्त्र में चन्द्रमा का भी प्रतिकूल (पृष्ठवर्ती) होना अनिष्टकारक कहा गया है-

'सम्मुखे ह्यर्थलाभाय दक्षिणे सुखसम्पदः।
पृष्ठतो मरणं चैव वामे चन्द्रं धनक्षयः।।'

निम्नलिखित श्लोक अर्थगौरव का कितना सुन्दर प्रतीक है–

'रुचिरधाम्नि भर्तरि भृशं
विमलाः परलोकमभ्युपगते विवशुः।
ज्वलनं त्विषः कथमिवेत-
रथा सुलभोऽन्यजन्मनि स एव पतिः।।'[१६]

अर्थात् जिस प्रकार सती स्त्री पति के दिवङ्गत होने पर अग्नि में प्रविष्ट होकर अगले जन्म में पुनः उसी पति को प्राप्त करती है, उसी प्रकार सूर्यास्त होने पर उसकी निर्मल कान्तियाँ अग्नि में प्रविष्ट होकर पुनः सूर्य को पतिरूप में प्राप्त करती है।

प्रकाण्ड शब्दविद् होने के कारण माघ के काव्य में सहज ही अर्थगौरव समाहित होता चला गया है। नारद के वर्णन का एक पद्य देखें–

'गतं तिरश्चीनमनूरुसारथेः
प्रसिद्धमूर्ध्वज्वलनं हविर्भुजः।
पतत्यधो धाम विसारि सर्वतः
किमेतदित्याकुलमीक्षितं जनैः।।'[१७]

यहाँ माघ सूर्य का अन्य पर्याय न रखकर यह भी बता देना चाहते हैं कि सूर्य का सारथी अरुण अनूरु (बिना जङ्घे वाला) है तथा उसकी गति तिरछी है। अग्नि का अन्य पर्याय छोड़कर 'हविर्भुक्' देते हैं, जो यज्ञों की आहुतियों को ग्रहण करता है।

यहाँ माघ-सूर्य और अग्नि दो परम तेजस्वियों का उल्लेख करते हैं, जिसमें एक की गति तिरछी और दूसरे की उर्ध्वगामिनी है, नारद की तेजस्विता है, तो इसी प्रकार, किन्तु अन्तर यह है कि यह सर्वव्यापी तेज ऊपर से नीचे उतर रहा है, इसलिए दर्शकों के आश्चर्य का हेतु बन गया है। माघ के अधिकांश पद्य इस प्रकार के अर्थगौरव से समन्वित हैं।

इस प्रकार के उदाहरणों से यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि माघ के काव्य में भारवि जैसा अर्थगौरव विद्यमान है।

पदलालित्य की सुन्दर-योजना

वास्तव में महाकवि माघ पदविन्यास के बादशाह थे। वे न केवल शब्दों तथा पदों के ललितविन्यास में ही निपुण थे, प्रत्युत नितनूतन श्रुतिमधुर शब्दावली के तो श्लाघनीय शिल्पी भी थे। नवीन शब्दों का उन्होंने इतना अधिक प्रयोग किया है कि उनके विषय की उक्ति **'नवसर्ग गते माघे नव शब्दो न विद्यते'** सार्थक दिखाई देती है। यह कथन अर्थवाद नहीं, अपितु तथ्यवाद है। पदमाधुर्य की निपुणता के आचार्य माघ की प्रशंसा किन शब्दों में की जाये? उनके शब्दों में इतनी सङ्गीतात्मकता, एकरसता है कि वीणा के तारों के झङ्कार की भाँति अर्थावबोध की प्रतीक्षा किये बिना ही श्रोताओं के हृदय को रसाप्लावित कर देती है। वसन्त की सुषमा का सङ्केत कितनी सुन्दरता से 'शाब्दी ध्वनि' द्वारा विद्योतित हो रहा है–

'मधुरया मधुबोधितमाधवी-
मधुसमृद्धिसमेधितमेधया।
मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मद-
ध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे॥'[१८]

इस प्रकार से श्लोक के सरस वर्णो के उच्चारण के समय मानों जीभ फिसलती हुई चली जाती है, बिना किसी परिश्रम के अनायास ही बिना अन्त तक पहुँचे, वह रुकने का नाम ही नहीं लेती। कर्णकुहरों में अमृतरस घोलने वाली मधुर पदावली ही पर्याप्त आनन्द देने वाली है। इन पद्यों का रसास्वादन सामान्य पाठक भी ले सकता है, किन्तु माघ के पाण्डित्यमण्डित अर्थों को समझना उनकी समझ के परे की बात है। इसीलिए कवि की काव्यकला परखने के लिए हृदय के साथ मस्तिष्क की भी नितान्त आवश्यकता है। 'विचित्रमार्ग' के उद्भावक भारवि और माघ की शैली का प्रभाव भारतीय कवियों पर ही नहीं पड़ा, अपितु वृहत्तर भारत के भी कवि उससे उतने ही प्रभावित हैं, जितने कि भारतीय कवि।

पदलालित्य के विषय में असन्दिग्धरूप से कहा जा सकता है कि वे अपनी सानी नहीं रखते हैं। **'नैषधे पदलालित्यम्'** अथवा **'दण्डिनः पदलालित्यम्'** की प्रसिद्धि होते हुए भी महाकवि माघ किसी से कम नहीं है। उनकी कोमलकान्तपदावली हठात् पाठक का मन मोह लेती है। उनके पदलालित्य के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

'कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजषण्डं
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः॥'[१९]

इस पद्य में कितना लालित्य है। इसके श्रवणमात्र से ही पदलालित्य की अनुभूति होती है। इसी प्रकार माघ ने प्रकृति-चित्रण में यमक अलङ्कार के साथ बड़ी ही मनोरम शब्दयोजना का विधान किया है-

'नवपलाशपलाशवनं पुरः
स्फुटपरागपरागतपङ्कजम्।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्-
ससुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः॥'[२०]

पदलालित्य की दृष्टि से माघ के काव्य का परिगणन असम्भव है। उनके पदलालित्य के विषय में तो कहा जा सकता है कि कुछ ही ऐसे श्लोक होंगे; जिनमें पदलालित्य का अभाव होगा।

इस प्रकार से उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि महाकवि माघ के पदों में ललितपदों का सन्निवेश, उपमा की मधुरझङ्कृति एवं अर्थगौरव की भावमधुरिमा तीनों के एकत्र कलात्मक सामञ्जस्य की रमणीय झाँकी, जोकि अनेक प्रौढ़ोक्तियों, वक्रोक्तियों एवं कविसहजस्वभावोक्तियों से सुशोभित है। सहृदयहृदय की सहज सामग्री है। अतः **'माघे सन्ति त्रयो गुणाः'** यह उक्ति पूर्णतः चरितार्थ है। इसमें किसी प्रकार के विवाद या विचिकित्सा का अवसर नहीं है।

वस्तुतः **'उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्। दण्डिनः (नैषधे) पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयोगुणाः॥'** इस उक्ति का एक आशय यह भी निकाला जा सकता है कि कालिदास तो केवल उपमा में, भारवि केवल अर्थगौरव में, दण्डी या श्रीहर्ष केवल पदलालित्य में दक्ष है, परन्तु माघ में उक्त तीनों गुण हैं। वस्तुतः कालिदास, भारवि, दण्डी और श्रीहर्ष अन्य काव्यसौन्दर्यो के आधान में भी दक्ष हैं, इसलिए इसका तात्पर्य यह लगाना उचित होगा कि माघ उपमाओं में कालिदास के, अर्थगौरव में भारवि के और पदलालित्य में दण्डी या श्रीहर्ष के समकक्ष हैं। यद्यपि श्रीहर्ष उत्तरवर्ती हैं, अतः उनका प्रभाव माघ-के काव्य पर नहीं हो सकता, किन्तु कालक्रम का ध्यान न करके पञ्चमहाकाव्यों की तुलनात्मक समीक्षा की दृष्टि से **'नैषधे पदलालित्यम्'** इस पाठभेद को अनौचित्यपूर्ण नहीं कहा जा सकता। माघ में तीनों गुण कहकर उक्ति

के लेखक ने काव्य की सभी समीहित विशेषताएँ समाहित कर ली है। उपमा प्राय: सभी अर्थालङ्कारों का मूल है, अथगौरव कवि के शब्दार्थज्ञान एवं व्युत्पत्ति का सूचक है, लालित्य या ललितपदविन्यास काव्य की महनीय विशेषता है। इस प्रकार माघ अलङ्कार प्रयोग, प्रसङ्गानुकूलशब्दार्थसन्निवेश और श्रुतिमधुरशब्दों के प्रयोग में दक्ष हैं। इन्हीं विशेषताओं के कारण किसी सहृदय ने **'काव्येषु माघः'** कहकर काव्यकारों में उन्हें मूर्धाभिषिक्त किया है।

२– 'तावद्भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः।
उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः॥'

अर्थात् महाकवि भारवि की कान्ति तभी-तक शोभा पाती है, जब-तक माघ कवि का उदय नहीं होता, लेकिन नैषधकाव्य के प्रकाश में आ जाने पर कहाँ माघ और कहाँ भारवि?

विविधविधिविधायिनी संस्कृतकाव्यपरम्परा सनातन से ही सन्तों एवं सदाशयों के हृदय को रसवादिता एवं ज्ञान-आभा से आप्लावित करती रही है। इस काव्यपरम्परा में कालिदास और वाल्मीकि द्वारा आरम्भ नैसर्गिक कविता और काव्यकला के तत्त्वों का सुन्दर समन्वय मिलता है, किन्तु कालिदास के समय से ही कवियों का एक ऐसा वर्ग हो गया था, जो काव्य में शाब्दक्रीड़ा तथा पाण्डित्य को महत्त्व प्रदान करने लगा था। ऐसे ही कविपण्डितों की तृप्ति के लिए स्वयं कालिदास को रघुवंश महाकाव्य के नवम् सर्ग को सभी गुणों से युक्त रचना करनी पड़ी। यह प्रवृत्ति भारवि और माघ से होती हुई श्रीहर्ष तक चरमावस्था में पहुँच गयी।

काव्य में भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष को प्रधानता प्राप्त होने पर पाण्डित्यविहीनकविता का महत्त्व भी क्षीण होता गया और कोमलकान्तपदावली से परिपूर्ण कविता को पाण्डित्य से आक्रान्त कर दिया गया। भारवि कालिदास की अपेक्षा पाण्डित्य के प्रति अधिक अनुरक्त हैं। उनका महाकाव्य 'किरातार्जुनीयम्' उनकी बहुज्ञता और बहुश्रुतता का स्पष्ट परिचायक है। 'किरातार्जुनीयम्' का निम्नलिखित प्रारम्भिक श्लोक ही भारवि के राजनैतिक विचारों एवं सिद्धांतों पर अच्छा प्रकाश डालता है। यथा–

'श्रियः कुरूणामधिपस्य पालनीं
प्रजासु वृत्तिं यमयुङ्क्त वेदितुम्।
स वर्णिलिङ्गी विदितः समाययौ
युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः॥'[२१]

महाकवि भारवि का निम्नलिखित श्लोक द्रष्टव्य है–

'अपवर्जितविप्लवे शुचौ
हृदयग्राहिणि मङ्गलास्पदे।
विमला तव विस्तरे गिरां
मतिरादर्श इवाभिदृश्यते॥'[२२]

अर्थात् ऊपरी मैल से युक्त होने के कारण निर्मल, लौहशुद्धि से सुनिर्मित, मनोरम मङ्गलदायी दर्पण में स्वरूप की भाँति, तर्क एवं प्रमाणों से युक्त, सुन्दर शब्दों से समलङ्कृत, हृदयग्राही एवं मङ्गलकारी तुम्हारी बातों के विस्तार में तुम्हारी निर्मलबुद्धि दिखाई पड़ रही है।

इस प्रकार से युधिष्ठिर का भीम के प्रति उत्तर देना, अमराङ्गनाओं के प्रति क्रीड़ाविलास का सजीव तथा सरस चित्रण, नायिका-भेदों, काव्यरूढ़ियों, अलङ्कारों तथा विभिन्नवृत्तों का प्रयोग क्रमशः भारवि के नीतिज्ञान, कामशास्त्र के ज्ञान तथा पिङ्गल और अलङ्कारशास्त्र के ज्ञान का परिचायक है, किन्तु भारवि का विशेष पाण्डित्य राजनीतिशास्त्र के प्रति ही प्रतीत होता है। माघ में यह पाण्डित्य व्यापकरूप में दिखाई देता है। महाकवि माघ वेदवेदाङ्ग, व्याकरण, ज्योतिष, दर्शनशास्त्र, अलङ्कारशास्त्र, सङ्गीतशास्त्र, कामशास्त्र, आयुर्वेदशास्त्र, नाट्यशास्त्र और पशुशास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे। एकादश सर्ग में प्रभातवर्णन के प्रसङ्ग में महाकवि माघ ने सुन्दर चित्र प्रस्तुत किए हैं–

'प्रतिशरणमशीर्णज्योतिरग्न्याहितानां
विधिविहितविरिब्धैः सामिधेनीरधीत्य।
कृतगुरुदुरितौघध्वंसमध्वर्युवर्यै-
र्हुतमयमुपलीढे साधु साम्नाय्यमग्निः॥'[२३]

यहाँ पर 'विरिब्ध' का अर्थ है–एक श्रुति तथा उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ये चार स्वर। इस उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि माघ को वैदिक स्वर प्रक्रिया का भी पूर्ण ज्ञान था।

भारवि व्यावहारिक राजनीति के ज्ञाता हैं और उनका ज्ञान शास्त्रों के गम्भीर अध्ययन की अपेक्षा मुख्य रूप से अनुभव पर आधारित प्रतीत होता है, जबकि महाकवि माघ भारवि की अपेक्षा राजनीतिशास्त्र के सिद्धान्त पक्ष के विशेषज्ञ प्रतीत होते हैं। शिशुपालवध का द्वितीय सर्ग कवि के राजनीतिशास्त्र सम्बन्धित पाण्डित्य को पूर्णतया स्पष्ट करता है।

महाकवि माघ भारवि और भट्टि दोनों के परवर्ती हैं। भट्टि ने अपने काव्य को व्याकरण के दुर्वह भार से आक्रान्त करके ही सुकुमारता और सरसता को नष्ट कर दिया था। भट्टि के समान माघ भी व्याकरणशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे, किन्तु उनका महावैयाकरणत्व भट्टि के समान काव्य की सुकुमारता और सरसता को नष्ट नहीं किया है।

डॉ० भोलाशङ्कर व्यास के शब्दों में कालिदास मूलतः कवि हैं, भारवि राजनीति के व्यावहारिक ज्ञाता और भट्टि कोरे वैयाकरण----किन्तु माघ सर्वत्र पाण्डित्य लेकर उपस्थित होते हैं।

महाकवि माघ दर्शन के भी पण्डित थे। सांख्य,[२४] न्याय,[२५] और बौद्धदर्शन,[२६] के पारिभाषिक शब्दों एवं सिद्धान्तों का शिशुपालवध में प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त माघ ने आयुर्वेदशास्त्र सम्बन्धी पाण्डित्य का भी परिचय दिया है।[२७]

पाण्डित्य की दृष्टि से श्रीहर्ष, भारवि और माघ का अतिक्रमण करने में समर्थ हैं। उन्हें वेदवेदाङ्ग, सामुद्रिकशास्त्र, धर्म, अर्थ, तन्त्र, काम, सङ्गीत, ज्योतिष, गणित, धनुर्वेदादि विविध शास्त्रों का सम्यक् ज्ञान था। 'नैषधीयचरितम्' के टीकाकार विद्याधर ने श्रीहर्ष की बहुज्ञता का आकलन करते हुए कहा है–

'अष्टौ व्याकरणानि तर्कनिवहः साहित्यसारो नयो।
वेदार्थावगतिः पुराणपीठतिर्यस्याप्यशास्त्राण्यपि॥

नित्यं स्यु स्फुरितार्थदीपविहताज्ञानान्धकारण्यसौ।
व्याख्यातुं प्रभवत्यमुं सुविषमं सर्ग सुधीः कोविदः॥'

कल्पना का काव्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। कवि संक्षिप्त तथा नीरस प्राचीन आख्यान को प्रातिभ-कल्पना से विस्तृत तथा सरस बनाता है। भारवि अपनी सूक्ष्मनिरीक्षणशक्ति तथा प्रसङ्गोचित कल्पनाओं के द्वारा अपने चित्रणों को अत्यन्त सरस तथा स्वाभाविक बना देते हैं। सरोवर में स्नान करती हुई अप्सराओं के वर्णन में कवि ने अपनी कल्पनाओं को बहुलता से प्रयोग किया है–

'ह्रदाम्भसि व्यस्तवधूकराहते
रवं मृदङ्गध्वनिधीरमुज्झति।
मुहुः स्तनैस्तालसमं समाददे
मनोरमं नृत्यमिव प्रवेपितम्॥'[२८]

यह वर्णन जल में तैरती हुई सुन्दरी का मनोहर चित्र उपस्थित कर देता है।

महाकवि माघ में अभिव्यक्ति और कल्पना की समृद्धि भारवि से अधिक है। वनविहार, जलक्रीड़ा, मद्यपान, रतिक्रीड़ा आदि के चित्रण इसी प्रकार के हैं। इस प्रकार अनेक सुन्दर दृश्यों से माघ की उत्कृष्ट कल्पनाशक्ति का परिचय प्राप्त होता है। इन वर्णनों में कवि प्रायः मर्यादा का उल्लंघन कर जाता है, तथापि वह अपनी उर्वर कल्पना का प्रयोग करके उन्हें सरस एवं मनोहर बना देता है। स्वच्छ जलाशय के जल में स्नान करती हुई युवती के अधोवस्त्र को हटा दिया। नायक के दर्शन से युवती लजा गई। उस युवती के वस्त्रहीन अङ्गों को शीघ्र ही तरङ्गरूपी हाथ के द्वारा कमलपत्ररूपी वस्त्र से आच्छादितकर कमलिनी ने सखी का कार्य किया–

'पर्यच्छे सरसि हृतेऽशुके पयोभि-
लोलाक्षे सुरतगुरावपत्रपिष्णोः।
सुश्रोण्या दलवसनेन वीचिहस्त-
न्यस्तेन द्रुतमकृताब्जिनी सखीत्वम्।'[२९]

भारवि की नायिका का भी नीवीबन्ध जलक्रीड़ा से खुल जाता है। यहाँ नायिका के वस्त्र को करधनी सखी के सदृश सम्भाल लेती है–

'विहस्य पाणौ विधृते धृताम्भसि
प्रियेण बध्वा मदनार्द्रचेतसः।
सखीव काञ्ची पयसाधनीकृता
बभार वीतोच्चयबन्धमंशुकम्।।'[३०]

किन्तु माघ ने कमलिनी को नायिका की सखी बनाकर जहाँ सुन्दर कल्पना की है, वहीं साङ्गरूपक की भी सुन्दर योजना की है।

श्रीहर्ष के पास अप्रस्तुत विधान का अक्षय भंडार है। श्रीहर्ष की ये कल्पनाएँ उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, सन्देह, अपह्नुति जैसे अत्यधिक चमत्कारपूर्ण अलङ्कारों का आधार लेकर आती है। इनकी श्लेष रचना भी कल्पनाओं को अनूठापन प्रदान करने में सहायता करती है। कामपीड़िता दमयन्ती की विरहावस्था के वर्णन में कवि ने अपनी अनूठी कल्पना का परिचय दिया है–

'स्मरहुताशनदीपितया तया
बहुमहुः सरसं सरसीरुहम्।
श्रयितुमर्द्धपथे कृतमन्तरा-
श्वसितनिर्मितमर्मरमुज्झितम्।।'[३१]

इस प्रकार नायिका की विरहावस्था के वर्णन के लिए श्रीहर्ष के पूर्व शायद ही किसी कवि ने ऐसी कल्पना की होगी।

भारवि का काव्य 'किरातार्जुनीयम्' बीर रस प्रधान है, किन्तु अमराङ्गनाओं के सौन्दर्य तथा सरस कार्य-व्यापारों की योजना करके कवि ने शृङ्गार-रस की मादकता को भी स्थान दिया है। भारवि के चित्रण शृङ्गाररसोचित तरलता की अनुभूति तो कराते हैं, किन्तु साथ ही ऐन्द्रियता की ओर झुककर अपनी उदात्तता त्याग देते हैं। भारवि की काव्यशैली का अनुगमन करने वाले संस्कृत-साहित्य के परवर्ती कवियों में अमर्यादित तथा वासनामय शृङ्गारचित्रण की यह प्रवृत्ति हम उत्तरोत्तर बढ़ती हुई पाते हैं।

भारवि और माघ के महाकाव्य वीर-रस प्रधान होने के कारण इनके शृङ्गार चित्रणों में कथा की दृष्टि से अधिक तारतम्य प्रतीत नहीं होता है। इसके अतिरिक्त भारवि ने अपने काव्य में मुख्यत: संयोग-शृङ्गार को ही ग्रहण किया है। माघ ने भी संयोग-शृङ्गार का चित्रण किया है। विप्रलम्भ-शृङ्गार के जो सन्दर्भ मिलते हैं; वे संभोग-शृङ्गार के उद्दीपन की दृष्टि से ही चित्रित किये गये हैं।

श्रीहर्ष ने संयोग तथा वियोग के दोनों पक्षों शृङ्गार का चित्रण किया है। श्रीहर्ष का संयोग-शृङ्गार वर्णन भारवि और माघ की अपेक्षा अत्यधिक विलासमय है। अठ्ठारहवें और बीसवें सर्ग के नल-दमयन्ती के रतिकेलि के चित्र इसके प्रमुख प्रमाण हैं। श्रीहर्ष के शृङ्गार-वर्णन की एक विशिष्टता यह भी है कि ये प्रधान कथानक से सम्बद्ध हैं।

भारवि ने अपने काव्य में यमकमय और श्लेषमय चित्रणों के प्रति रुचि प्रदर्शित की है, किन्तु अर्थगौरव के लक्ष्य को विस्मृत नहीं किया है। श्लेष किसी न किसी अर्थालङ्कार का उपकारक बनकर प्रयुक्त हुआ है, अपने शुद्ध (अर्थश्लेष) रूप में नहीं। अर्थालङ्कारों का प्रयोग करते हुए भारवि चमत्कार-प्रदर्शन को अपना लक्ष्य नहीं बनाते हैं। महाकवि माघ भी शब्दालङ्कारों और अर्थालङ्कारों के प्रयोग में निपुण हैं। यमक के प्रयोग में तो कवि का महत्त्वपूर्ण स्थान है-

'नवपलाशपलाशवनं पुरः
स्फुटपरागपरागतपङ्कजम्।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्
ससुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः॥'[३२]

अर्थालङ्कारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, निदर्शना, अतिशयोक्ति, अर्थान्तरन्यास, समासोक्ति, काव्यलिङ्ग आदि अलङ्कारों का प्रयोग मनोमुग्धकारी है। माघ की उपमाएँ तो श्रेष्ठता की दृष्टि से कालिदास की उपमाओं से समानता रखती हैं।

माघ की उपमा के अतिरिक्त श्रीहर्ष प्राय: सभी अलङ्कारों के प्रयोग में माघ और भारवि का अतिक्रमण करते हैं। श्लेष के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण दृष्टान्त नैषध के तेरहवें सर्ग में प्राप्त होते हैं। जहाँ सरस्वती, नल के रूप में उपस्थित चारों देवताओं और नल-इन पाँचों का वर्णन एक पद्य में करती है। कल्पना के उत्कृष्ट कलाकार होने के कारण श्रीहर्ष ने अर्थालङ्कारों का भी सुन्दर प्रयोग किया है।

इस प्रकार पाण्डित्यप्रदर्शन, कल्पना, शृङ्गारचित्रण और अलङ्कारों की दृष्टि से श्रीहर्ष भारवि और माघ से उत्कृष्ट प्रतीत होते हैं। डॉ० भोलाशङ्कर व्यास ने ठीक ही कहा है कि 'माघोत्तरकाल के इन (कलापक्षप्रधान) महाकाव्यों में पाण्डित्यप्रदर्शन, कल्पना की उड़ान और शृङ्गार के विलासपूर्ण चित्रण के कारण जो काव्य अत्यधिक प्रसिद्ध हो सका, वह है–नैषधीयचरित'। सम्भवत:, इन्हीं आधारों पर श्रीहर्ष को भारवि और माघ से उत्कृष्ट समझकर श्रीहर्ष के किसी प्रशंसक ने कहा है–

'तावद्भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदय:।
उदिते नैषधे काव्ये क्व माघ: क्व च भारवि:॥'

किन्तु पाण्डित्यप्रदर्शन, कल्पना, शृङ्गार के विलासपूर्णचित्रण और अलङ्कारयोजना ही काव्य की श्रेष्ठता की कसौटी नहीं है। काव्य में कलापक्ष से अधिक भावपक्ष की प्रधानता होती है। श्रीहर्ष की कृति पण्डित-पाठक का मनोरञ्जन भले ही कर ले, किन्तु काव्यरस में डूबने के इच्छुक सहृदयपाठक का मन नहीं मोह सकती है। यही कारण है कि आधुनिककाव्यकसौटी पर श्रीहर्ष खरे नहीं उतरते हैं। ऐसी जनश्रुति है कि आचार्य मम्मट ने 'नैषध' की आलोचना करते हुए यहाँ तक कह दिया है कि 'काव्यप्रकाश' के सप्तम उल्लास को लिखने के पूर्व यदि यह ग्रन्थ मुझे प्राप्त हो गया होता, तो काव्यदोषों के अन्वेषण में मुझे इतना श्रम न करना पड़ता।' श्रीहर्ष अनेक भावों और चित्रों के लिए माघ के ऋणी हैं। 'नैषध' के प्रथम सर्ग का घोड़े का वर्णन माघ के सेनाप्रयाण वर्णन से प्रभावित है, किन्तु उसमें माघ जैसी उदात्तता नहीं है। श्रीहर्ष के सूर्योदय (सर्ग १९) तथा सूर्यास्त (सर्ग २२) के वर्णन भी माघ से प्रभावित प्रतीत होते हैं, किन्तु उनमें पाण्डित्यप्रदर्शन माघ से अधिक हैं। नैषध के २१वें सर्ग के दशावतार वर्णन भी माघ के १४वें सर्ग की भीष्म द्वारा की गई कृष्णस्तुति से मिलती-जुलती प्रतीत होती है। स्पष्ट है कि श्रीहर्ष माघ के कलापक्ष को तो ले सके, किन्तु भावपक्ष को ग्रहण नहीं कर सके और इस दृष्टि से विचार करने पर माघ ही उत्कृष्ट सिद्ध होते हैं।

अन्ततः, माघ की भारवि और श्रीहर्ष से तुलना करते हुए कहा जा सकता है कि भावपक्ष और कलापक्ष दोनों ही दृष्टियों से माघ भारवि से श्रेष्ठ हैं। भारवि की प्रमुख विशिष्टता-अर्थगौरव के भी माघ स्वामी हैं। कलापक्ष की दृष्टि से भले ही श्रीहर्ष माघ से श्रेष्ठ हों, किन्तु भावपक्ष की दृष्टि से विचार करते ही माघ के समकक्ष श्रीहर्ष की कान्ति क्षीण हो जाती है।

'तावद्भाभारवेर्भाति तथा उपमाकालिदासस्य' इन दोनों सूक्तियों में माघ का उल्लेख है, जो इस बात का प्रमाण है कि माघ अङ्गुलिगणनीय कवियों में अन्यतम हैं।

३–'नवसर्ग गते माघे नव शब्दो न विद्यते'

अर्थात् शिशुपालवध महाकाव्य का नवसर्ग समाप्त होने पर कोई ऐसा शब्द नहीं रह जाता, जिसका प्रयोग कविता के क्षेत्र में कहीं अन्यत्र हुआ हो। इस प्रकार महाकवि माघ–शिशुपालवध के प्रथम नव सर्गों में अपने अक्षय शब्दकोष का पूर्ण प्रदर्शन किया है। भाव यह कि नव सर्गों में ही संस्कृतकोष के सभी शब्द आ जाते हैं। व्यञ्जना से इस उक्ति का अभिप्राय यह है कि माघ की रचना में ऐसे शब्दों की संख्या बहुत अधिक हैं, जो अप्रयुक्त हैं और साधारण पाठकों को ज्ञात नहीं हैं। बन्धों और श्लेषार्थक या अनेकार्थक श्लोकों को छोड़ें। उनमें तो स्वभावतः अपरिचित अर्थ ढूँढ़ने ही पड़ेंगे। अन्यत्र भी ऐसे अपरिचित शब्द मिलेंगे, जिनके लिए कोषों की शरण में जाना ही पड़ेगा। यथा–

शब्द	अर्थ	सन्दर्भ
वलज	धान्यराशि	१४/७
प्रोह	हाथी का पैर	१२/५
रवण	ऊँट	१२/९
कूबरी	रथ	१२/२१
कपिश	मद्य	१२/३८
अय	दैव	१३/२३
दस्त्र	अश्विद्वय	१३/२३

महाकवि माघ कहीं-कहीं पाण्डित्यप्रदर्शन के चक्कर में पड़ गये हैं, जिससे वे स्थल दुरूह तथा नीरस हो गये हैं। पाण्डित्यप्रदर्शन के लिए ही कहीं-कहीं व्याकरण के कठिन रूपों का प्रयोग किया गया है। जैसे-निषेदिवान्, उपेयुषः, न्यधायिषाताम्, वैरायितारः, विभराम्बभूवे, पारेजलम् मध्येसमुद्रम् आदि।

कहीं-कहीं अप्रचलित शब्दों के प्रयोग से भी काव्य में दुरूहता आ गई है। कहीं-कहीं शब्दाडम्बर के जाल में फँस जाने के कारण भावपक्ष दब गया है। हालाँ कि माघ की शब्दयोजना प्रसङ्गानुकूल है। माघ ने व्याकरण की दृष्टि से समभिहार में लोट् तथा स्मरणार्थक धातुओं में लङ् के स्थान पर लृट् लकार का प्रयोग किया है।

व्याकरण के विशिष्ट प्रयोगों की दृष्टि से माघ का निम्नलिखित श्लोक द्रष्टव्य है, जिसमें लकारार्थ प्रक्रिया से सिद्ध होने वाली क्रियाओं का प्रयोग किया गया है। सिद्धान्तकौमुदी में भी इस श्लोक को उद्धृत किया गया है–

'पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दनं
मुषाण रत्नानि हरामराङ्गनाः।
विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली
य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः।।'[३३]

महाकवि माघ का व्याकरणशास्त्र पर पूरा आधिपत्य था। शिशुपालवध का उन्नीसवाँ सर्ग इसका पुष्ट प्रमाण है। इस सर्ग में एकाक्षर श्लोक (१९/११४), द्व्यक्षर श्लोक (१९/६६,८६,९४,१०४ आदि), एकाक्षरपाद श्लोक (१९/३), सर्वतोभद्र (१९/२७), चक्रबन्ध (१९/१२०), द्व्यर्थक श्लोक (१९/५८), त्र्यर्थक श्लोक (१९/११६) आदि विभिन्न प्रकार के चित्रालङ्कारों का व्यूह ही रच दिया गया है।

महाकवि माघ का निम्नलिखित श्लोक व्याकरण के चमत्कारिक प्रयोग की दृष्टि से अवलोकनीय है–

'उद्धतान्द्विषतस्तस्य निघ्नतो द्वितयं ययुः।
पानार्थे रुधिरं धातौ रक्षार्थे भुवनं शराः।।'[३४]

तात्पर्य यह कि 'पा' (पाने, रक्षणे) धातु का दोनों अर्थों में बड़े ही चमत्कारी ढङ्ग से एक साथ प्रयोग किया गया है।

महाकवि माघ ने सामान्यभूत लुङ्, यङ्, लुङ्यन्त क्रियापद के प्रति ध्यान दिया है। पर्यपूपुजत् (१/१४), अभिन्ववीविशत् (१/१५), अचूचुरत (१/१६) आदि लुङ् लकार के प्रयोग उसी भावना के प्रतीक हैं। ऐसे ही व्याकरण के प्रयोगों की दृष्टि से माघ का निम्नलिखित श्लोक ध्यातव्य है–

'सस्मार वारणपतिः परिमीलिताक्षमिच्छाविहारवनवासमहोत्सवानाम्।'[३५]

महाकवि माघ ने यत्र-तत्र व्याकरण की नीरस परिभाषाओं को भी सरस उपमान के रूप में प्रस्तुत किया है–

'परितः प्रमिताक्षरापि सर्वं
विषयं व्याप्तवती गता प्रतिष्ठाम्।
न खलु प्रतिहन्यते कुतश्चित्
परिभाषेव गरीयसी यदाज्ञा।।'[३६]

महाकवि माघ के निम्नलिखित पद्यों में भाषा में पाण्डित्य के साथ ही परिष्कार है, कोमलता के साथ माधुर्य है, ओज के साथ सशक्तता है और अर्थगाम्भीर्य के साथ स्फूर्ति भी है। कहीं प्रसाद गुण है, कही समास बहुलता, कहीं पद माधुरी और कहीं अभिव्यक्ति चातुरी।[३७] पदमाधुरी के साथ स्वरमाधुरी का एक सुन्दर उदाहरण द्रष्टव्य है–

'या न ययौ प्रियमन्यवधूभ्यः
सारतरागमना यतमानम्।
तेन सहेह विभर्ति रहः स्त्री
सा रतरागमनायतमानम्।।'[३८]

महाकवि माघ का निम्नलिखित श्लोक ध्वन्यनुकरणात्मक की दृष्टि से द्रष्टव्य है–

'वदनसौरभलोभपरिभ्रमद्-
भ्रमरसंभ्रमसंभृतशोभया।
चलितया विदधे कलमेखला-
कलकलोऽलकलोलदृशान्यथा।।'[३९]

निम्नलिखित पद्य में मधुकर गुञ्जन और कवि के गुञ्जन में कितना साम्य दिखाई पड़ता है–

'मधुरया मधुबोधितमाधवी-
मधुसमृद्धिसमेधितमेधया।
मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मद-
ध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे।।'[४०]

निम्नलिखित श्लोक माधुर्य, यमक और लयात्मकता के समन्वय की दृष्टि से द्रष्टव्य है–

'वर्जयन्त्या जनैः सङ्गमेकान्तत-
स्तर्कयन्त्या सुखं सगमे कान्ततः।
योषयैष स्मरासन्नतापाङ्ग्या
सेव्यतेऽनेकया सन्नतापाङ्ग्या॥'[४१]

निम्नलिखित पद्य में भाषा में लोच और माधुर्य का सम्मिश्रण भी द्रष्टव्य है–

'राजीवराजीवशलोलभृङ्गं
मुष्णन्तमुष्णं ततिभिस्तरूणाम्।
कान्तालकान्ता ललनाः सुराणां
रक्षोभिरक्षोभितमुद्वहन्तम्॥'[४२]

महाकवि माघ का पदलालित्य भी अत्यन्त सुन्दर है। उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दों को इधर-उधर नहीं खिसकाया जा सकता। पदों का सुन्दर, मनोहर, अपरिवर्तनीय सन्निवेश ही पदों की ललितयोजना है। इस दृष्टि से उनका निम्नलिखित श्लोक द्रष्टव्य है–

'नवपलाशपलाशवनं पुरः
स्फुटपरागपरागतपङ्कजम्।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्-
ससुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः॥'[४३]

पदमाधुर्य की निपुणता तो कोई माघ से ही आकर सीख सकता है। उनके पदों में श्रुतिमधुर शब्दों की सङ्गीतात्मक एकरसता, वीणा के तारों की झङ्कार की भाँति अर्थावबोध की प्रतीक्षा विना किए ही हृदय को रसाप्लुत बनाती है। इस दृष्टि में माघ का एक सुन्दर पद्य अवलोकनीय है–

'विकचकमलगन्धैरन्धयन् भृङ्गमालाः
सुरभितमकरन्दं मन्दमावाति वातः।
प्रमदमदनमाद्यद्यौवनोद्दामरामा-
रमणरभसखेदस्वेदविच्छेददक्षः॥'[४४]

उपर्युक्त पदों के अनवद्य लालित्य का अनुभव सहृदय पाठक सहज ही कर सकते हैं। अनुप्रास, यमक, श्लेष आदि की छटा छोड़ भी दी जाए, तो भी कर्णकुहरों में अमृतरस घोलने वाली मधुर शब्दावली ही पर्याप्त काव्यानन्द दे जाती है। श्लेष, यमक और अनुप्रास की रचना में सम्भवतः महाकवि माघ के

समान सफलता किसी अन्य संस्कृत कवि को नहीं मिली है। उसका कारण यह था कि वे एक प्रकाण्ड महावैयाकरण थे। शब्दों की निरुक्ति और व्युत्पत्ति की अपार क्षमता उनमें थी और जब जैसा प्रयोग उन्हें अच्छा लगा, वैसा ही अनायास उन्होनें प्रयोग किया। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे एक छन्द को उन्होंने काव्य गुणों के एक-एक ढाँचे में ढालकर निकाला हो। क्या रस, क्या अलङ्कार, क्या शब्दयोजना और क्या वर्णविषय की अन्विति? किसी भी वस्तु में कहीं से कोई त्रुटि परिलक्षित नहीं होती।

समासान्तपदविन्यास की ओर उनका झुकाव देखते ही बनता है। कहीं-कहीं अत्यधिक लम्बे समासों के प्रयोग से उनके काव्य का प्रसाद गुण समाप्त हो जाता है, फिर भी उनकी समस्तपदावली का प्रयोग देखने लायक है। यथा–

'निजसौरभभ्रमितभृङ्गपक्षतिव्यजनानिलक्षयतिधर्मवारिणा।'

महाकवि माघ के काव्य में समासों की बहुलता, विकटवर्णों की उदात्तता तथा गाढ़बन्धों की मनोहरता का बाहुल्येन प्रयोग दिखाई पड़ता है। युद्धादि वर्णन में कठोर एवं समासान्त पदावलियों का प्रयोग देखने को मिलता है।

डॉ० भोलाशङ्कर व्यास के अनुसार–'माघ के पदविन्यास में गौड़ी की निकटबन्धता होते हुए भी एक आकर्षण है। माघ के पश्चाद् भावी कई कवि उनकी वर्ण्यशैली एवं पदविन्यास से प्रभावित हुए हैं।' माघ का पदविन्यास इतना सुन्दर है कि हर शब्द अपनी जगह से हटाये नहीं जा सकते हैं।

इस प्रकार कविताकामिनी के सर्वविधि शृङ्गारों का उन्होंने हस्तगत किया था। ध्वनि को ही काव्य का सर्वस्व मानने वालों से लेकर अलङ्कार प्रेमी अथवा शब्दवैचित्र्य या विकटबन्धों-(अनुलोम, प्रतिलोम, एकाक्षर, सर्वतोभद्र, गोमूत्रिका आदि) में पाण्डित्यप्रदर्शन करने वालों तक को सन्तुष्ट करने की माघ ने अपने काव्य में पूरी सामग्री प्रस्तुत की है। क्या मजाल है कि अर्थ, भाव तथा वर्ण्य-विषय की अन्विति में कोई बाधा उपस्थित हुई हो? भावों की नूतनता, मनोज्ञता तथा रचनाचातुरी की अनुपम छटा उनके काव्य में सर्वत्र दिखाई पड़ती है।

इस प्रकार से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि महाकवि माघ की शब्दयोजना तथा पदयोजना में न केवल शब्दों तथा पदों के ललितविन्यास हैं, प्रत्युत नवीननूतन श्रुतिमधुर शब्दावली के तो मानों शिल्पी हैं। भट्टि की भाँति व्याकरण के सूत्रों का उदाहरण बनाने के लिए नहीं बैठे थे और न श्रीहर्ष की भाँति जटिल शब्दों को ढूँढ़-ढूँढ़कर पदों में पच्चीकारी करने का उन्हें व्यसन था;

किन्तु कहा यह जा सकता है कि कविता के क्षेत्र में माघ ने जितने नूतन शब्दों का प्रयोग किया है, शायद किसी भी कवि ने नहीं किया है। इसीलिए उनके महाकाव्य शिशुपालवध के सम्बन्ध में विद्वानों ने यह उक्ति कही है–

'नवसर्ग गते माघः नवशब्दो न विद्यते'

४–'मेघे माघे गतं वयः'

'मेघे' अर्थात् कालिदासकृत 'मेघदूत' और 'माघे' अर्थात् माघकृत 'शिशुपाल-वध' या 'माघकाव्य' के अध्ययन एवं परिशीलन में ही पूरी आयु समाप्त हो गई।

यह उक्ति किसी वृद्ध सहृदय की है, जिसे उसने उसके जीवन में सर्वाधिक अधीत ग्रन्थों के बारे में किये गये प्रश्न के उत्तर में कही है। यह उक्ति महाकवि कालिदास विरचित 'मेघदूत' तथा महाकवि माघ प्रणीत 'शिशुपालवध' के महत्त्व को रेखाङ्कित कर रही है। प्रशस्त टीकाकार मल्लिनाथ माघकाव्य के सन्दर्भ में अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए कहते हैं–

'ये शब्दार्थपरीक्षणप्रणयिनो ये वा गुणालंक्रिया-
शिक्षाकौतुकिनो विहर्तुमनसो ये च ध्वनेरध्वगाः।
क्षुभ्यद्भावतरङ्गिते रससुधापूरे मिमङ्क्षन्ति ये
तेषामेव कृते करोमि विवृतिं माघस्य सर्वङ्कषाम्॥'

'नेताऽस्मिन् यदुनन्दनः स भगवान्वीरप्रधानो रसः
शृङ्गारादिभिरङ्गवान् विजयते पूर्णा पुनर्वर्णना।
इन्द्रप्रस्थगमाद्युपायविषयश्चैद्यावसादः फलं
धन्यो माघकविर्वयं तु कृतिनस्तत्सूक्तिसंसेवनात्॥'

मल्लिनाथ महाकवि कालिदास के सन्दर्भ में भी इसी तरह अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए कहते हैं–

'वाणीं काणभुजीमजीगणदवाशासीच्च वैयासिकी-
मन्तस्तन्त्रमरंस्त पन्नगवीगुम्फेषु चाजागरीत्।
वाचामाचकलद्रहस्यमखिलं यश्चाक्षपादस्फुरां-
लोकेऽभूद्यदुपज्ञमेव विदुषां सौजन्यजन्यं यशः॥'
'मल्लिनाथकविः सोऽयं मन्दात्मानुजिघृक्षया।
व्याचष्टे कालीदासीयं काव्यत्रयमनाकुलम्॥'
कालिदासगिरां सारं कालिदासः सरस्वती।
चतुर्मुखोऽथवा साक्षाद्विदुर्नान्ये तुमादृशाः॥'

'तथापि दक्षिणावर्तनाथाद्यैः क्षुण्यवर्त्मसु।
चयं च कालिदासोक्तिष्ववकाशं लभेमहि॥'

'भारती कालिदासस्य दुर्व्याख्या विषमूर्च्छिता।
एषा सञ्जीवनी टीका तामद्योज्जीवयिष्यति॥'

मल्लिनाथ जैसे विद्वान् और सहृदय टीकाकार की माघ और कालिदास के सन्दर्भ में व्यक्त उक्त अवधारणाएँ इस तथ्य को रेखाङ्कित करती हैं कि दोनों ही कवि समीक्षकों और सहृदयों के कण्ठहार रहे हैं। माघ और कालिदास के बारे में एक साथ अनेक वक्तव्य प्राप्त होते हैं–यथा **'काव्येषु माघः कवि कालिदासः' 'उपमाकालिदास्य माघे सन्ति त्रयो गुणाः'**। इन कथनों से भी यह बात प्रमाणित होती है कि दोनों कवियों के काव्यों के रसास्वादन में भावक अभिरुचि रखते थे।

'मेघे माघे गतं वयः' को श्लिष्ट माना जाय तो इसका एक अर्थ यह भी निकलता है–मेघाच्छन्न माघ महीने की ठंड प्राण लेने वाली होती है।

इस सूक्ति से यह भी तथ्य व्यक्त होता है कि अत्यन्त सरस होने से जीवनभर इन रचनओं के पढ़ने में रुचि बनी रहती है अथवा पूरा जीवन लगा देने पर भी भावगाम्भीर्य के तल तक पहुँचना कठिन है।

५–'घण्टा-माघ'

जिस प्रकार रघुवंश महाकाव्य के षष्ट सर्ग में इन्दुमती के स्वयंवर के अवसर पर महाकवि कालिदास ने राजाधिराजों को छोड़कर आगे बढ़ती हुई इन्दुमती की उपमा **'सञ्चारिणी दीपशिखा'** से दी है।[४५] इस उपमा के कारण महाकवि कालिदास की कविताओं का रसपान करने वाले सहृदय पाठकों ने कालिदास को 'दीपशिखा' के विरुद से विभूषित किया है। इसी प्रकार शिशुपालवध महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग के रैवतक-पर्वत के वर्णन के एक पद्य के आधार पर महाकवि माघ को **'घण्टा-माघ'** की उपाधि से विभूषित किया गया है।

रैवतक पर्वत के एक ओर सूर्योदय और दूसरी ओर चन्द्रास्त को देखकर महाकाय हाथी के दोनों ओर लटकते हुए दो विशाल घण्टों की कल्पना महाकवि माघ ने इस प्रकार की है–

'उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जा-
वहिमरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम्।
वहति गिरिरयं विलम्विघण्टा-
द्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम्।।'[४६]

अर्थात् विस्तृत ऊर्ध्वगामीरज्जु के समान किरणों वाले सूर्य के उदित होने एवं चन्द्रमा के अस्त होने पर यह रैवतक गिरि विशेषरूप से नीचे लटकते हुए दोनों ओर दो घण्टों से वेष्टित गजराज की शोभा धारण करता है।

तात्पर्य यह है कि सूर्योदय के समय सूर्य की लम्बी रस्सी के समान किरणें विस्तृत होकर रैवतक के शिखर के एक ओर तथा उसी प्रकार अस्त होते चन्द्रमा की किरणें दूसरी ओर जब पड़ती हैं, तो यह रैवतक पर्वत उस गजराज की शोभा धारण करता है, जिसके दोनों ओर लम्बे रस्से में लटकते हुए सूर्य और चन्द्रमा रूप दो घण्टे लटक रहे हैं। इसीलिए इनके काव्य का रसपान करने वाले मधुपपण्डितों ने इन्हें निदर्शना के सुन्दर प्रयोग के कारण **'घण्टा-माघ'** की उपाधि से विभूषित किया है।

६–'मुरारिपदचिन्ताचेद्तदामाघेरतिं कुरु'

इस सूक्ति का सीधा अर्थ है कि यदि मुरारि के पद की चिन्ता हो तो माघ में आस्था रखो। यहाँ 'मुरारि', 'माघ' और 'पद' शब्दों में श्लेष है।

'मुरारि, का एक अर्थ विष्णु है—अर्थात् मुर नामक राक्षस के अरि।

'मुरारि' का दूसरा तात्पर्य—आठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध अथवा नवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में स्थित अनर्घराघव के लेखक से है।

'माघ' का एक अर्थ—शिशुपालवध के लेखक महाकवि माघ से है।

'माघ' का दूसरा अर्थ—मा+अघ। मा निषेधक अव्यय है तथा अघ का अर्थ है-पाप। मा ऽघे अर्थात् पाप में नहीं।

'पद' का एक अर्थ–शब्द (सुप्तिङन्तं पदम्)।

'पद' का दूसरा अर्थ है—चरण। इस प्रकार इसका एक अर्थ हुआ—यदि मुरारि कवि के अनर्घराघव नाटक के पदों से तुम चिन्तित हो, तो माघ कवि के शिशुपालवध का अध्ययन करो।

इसका दूसरा अर्थ है—यदि मुरारि (विष्णु अथवा कृष्ण) के चरणों की प्राप्ति अभीष्ट हैं, तो माघ के शिशुपालवध का आस्थापूर्वक अध्ययन करो।

वस्तुतः मुरारि की भाषा क्लिष्ट और पाण्डित्यपूर्ण है, जिससे सहृदय पाठक को व्यग्रता होती है। इसीलिए माघ के किसी प्रशंसक ने यह प्रेरणा दी है कि माघकाव्य का अध्ययन करो। उससे शब्द ज्ञान इतना बढ़ जायेगा कि मुरारि के कृति के अध्ययन में कोई बाधा नहीं होगी। **'नवसर्ग गते माघे नव शब्दो न विद्यते'** सूक्ति इस तथ्य की पुष्टि करती है।

माघ स्वयं कृष्ण के भक्त थे। शिशुपालवध के पढ़ने से आह्लाद तो प्राप्त होता ही है, कृष्ण के प्रति गहन आस्था भी उत्पन्न होती है। माघ स्वयं भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि इस काव्य में उन्होंने लक्ष्मीपति के सुन्दर चरित्र का कीर्तन किया है। यथा–**'लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारु।'**[४७]

महाकवि माघ के प्रथम पद्य से ही विष्णु के प्रति उनकी भक्ति व्यक्त होती है। यथा–

"श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगज्जगन्निवासो वसुदेवसद्मनि।"[४८]

माघ कृष्ण को विष्णु का अवतार मानते थे–

द्रष्टव्य–शिशु०, १/४७,१४/६८

माघ की कृष्ण के प्रति अकृत्रिम श्रद्धा थी–

द्रष्टव्य–शिशु०, १/२३,३१-४०,१३/२-११,१४/५९-८७

इससे स्पष्ट है कि यदि मुरारि (कृष्ण या विष्णु) के चरणों की प्राप्ति अभीष्ट है, तो माघकाव्य का आस्थापूर्वक अध्ययन करो।

७–'काव्येषु माघः'

महाकवि माघ संस्कृत काव्य रूपी आकाश में विद्यमान अपनी प्रभाकिरण को अन्य तेज के रूप में फैलाने वाले अनुपम नक्षत्र हैं। उनकी अपूर्व कान्ति सम्पूर्ण वाङ्मय में दृष्टिगोचर होती है। उनकी विविध शास्त्रों का अवगाहन करने वाली सूक्ष्मेक्षिका प्रतिभा सूक्ष्म से सूक्ष्म तथ्य को आत्मसात् करके काव्य में स्फुरित हो रही है। माघ ने केवल काव्यशास्त्र ही नहीं अपितु व्याकरणशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, कामशास्त्र, सङ्गीतशास्त्र, दर्शन, ज्योतिष, हस्तिविद्या, अश्वशास्त्र, पाकशास्त्र और पुराण आदि के सार को ग्रहण करने वाले मनीषी हैं। इस चमत्कृत करने वाले पाण्डित्य को देखकर आलोचकों ने इनकी कविता की प्रशंसा की है।

टीकाकार मल्लिनाथ ने–'ये शब्दार्थ परीक्षण ....।'

कहकर माघकाव्य पर अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया है। मल्लिनाथ जैसे मनीषी टीकाकार इस तथ्य को रेखाङ्कित करके यह सिद्ध कर दिया है कि उनकी माघकाव्य के प्रति अपार आस्था थी। मल्लिनाथ विद्वान् होने के साथ एक सहृदय और समीक्षक भी थे, जिसके कारण वे माघकाव्य के कण्ठहार भी रहे हैं। महाकवि माघ की कविता को आह्लादक मानने वाले एवं उनके काव्य में रुचि लेने वाले कुछ सहृदय पाठकों ने अपने सम्पूर्ण जीवन को उसी में लगा दिया यथा–**'मेघे माघे गतं वयः'**। माघकाव्य के विशाल शब्दकोष को देखकर किसी ने कहा है–**'नवसर्गगते माघे नव शब्दों न विद्यते'** अर्थात् शिशुपालवध के नव सर्गों की समाप्ति के बाद कोई भी नवीन शब्द शेष नहीं रह जाता है। उन नव सर्गों में उतने नवीन शब्दों का प्रयोग किया गया है, जितनी शब्दकोश की राशि है। मुरारि कवि के अनर्घराघव नाटक के पाण्डित्य को देखकर किसी ने कहा है कि यदि मुरारि कवि को जानने की इच्छा हो तो माघकाव्य में मन लगाइये–**'मुरारिपदचिन्ता चेत् तदा माघे रतिं कुरु'**। किसी सहृदय ने **'माघेनैव न माघेन कम्पः कस्य न जायते'** अर्थात् जिस प्रकार माघ मास का नाम सुनकर लोगों को कँपकपी आ जाती है, उसी प्रकार माघकाव्य का नाम सुनते ही विद्वानों को कँपकपी आ जाती है। काव्यतत्त्वज्ञों ने **'माघे सन्ति त्रयो गुणाः'** से महाकवि माघ को विभूषित किया है। उपमा प्रायः सभी अर्थालङ्कारों का मूल है, अर्थगौरव कवि के शब्दार्थज्ञान एवं व्युत्पत्ति का सूचक है, लालित्य या ललित पद विन्यासकाव्य की महनीय अन्यतम विशेषता है।

इस प्रकार माघ अलङ्कार प्रयोग, प्रसङ्गानुकूल शब्दार्थसन्निवेश तथा श्रुतिमधुरशब्दों के प्रयोग में दक्ष है। रघुवंश, कुमारसम्भव, किरातार्जुनीयम, शिशुपालवध एवं नैषधीयचरित इन पाँचों महाकाव्यों के अवलोकन से सभी की अलग-अलग विशेषताओं के होने पर भी जितना काव्यलक्षण समन्वित गुणालङ्कार भूयिष्ठ एवं व्याकरणप्रयोगप्राचुर्य शिशुपालवध महाकाव्य है–उतने अन्य नहीं। इन्हीं उपर्युक्त विशेषताओं के कारण किसी सहृदय पाठक ने अपना भाव इस प्रकार से व्यक्त किया है–

'पुष्पेषु जाती, नगरीषु काञ्ची
नारीषु रम्भा, पुरुषेषु विष्णु।
नदीषु गङ्गा, नृपतौ च रामः
काव्येषु माघः कवि कालिदासः॥'[४९]

अर्थात् जिस प्रकार फूलों में चम्पा, नगरों में काशी, नारियों में रम्भा, पुरुषों

में विष्णु, नदियों में गङ्गा और राजाओं में राम सर्वश्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार काव्यों में माघ और कवियों में कालिदास सर्वश्रेष्ठ हैं।

वस्तुतः 'काव्येषु माघः और 'कवि कालिदासः' कहने में कालिदास का विशेषण 'कवि' दिया गया है, किन्तु माघ के वैशिष्ट्य प्रतिपादन में 'काव्येषु' का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार कविता लेखन में कालिदास महनीय हैं, किन्तु काव्यलेखन अर्थात् महाकाव्य रचनाशिल्प अथवा प्रबन्धरचना के अपेक्षित आयामों को ध्यान में रखकर रचना करने में माघ की कोई बराबरी नहीं है। 'काव्येषु' कहने में प्रसिद्धि के कारण श्रव्यकाव्य और उसमें भी महाकाव्य का अर्थबोध होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि महाकाव्य रचना में सर्वश्रेष्ठ मानकर उद्धृत पद्य के लेखक ने **'काव्येषु माघः'** कहा है। माघ के काव्य की श्रेष्ठता अन्य अध्यायों में प्रतिपादित की गई है अतः यहाँ पिष्टपेषण की आवश्यकता नहीं है।

उदात्त-सन्देश

महाकाव्य के व्यापक रचनाफलक में कवि का उद्देश्य सहृदय को मात्र क्षणिक आनन्दानुभूति करा देना नहीं होता, अपितु वह कान्तासम्मित उपदेश की शैली में सहृदय के अन्दर राष्ट्र, समाज और परिवार के प्रति उसके मन में उदात्त मानवीय भावनाओं का सञ्चार भी करना चाहता है। भामह आदि आचार्यों ने कहा है–

'धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्यनिबन्धनम्॥

महाकाव्य की दृष्टि से माघ का शिशुपालवध एक महनीय काव्य है, जिसमें काव्योचित आह्लाद के साथ कवि ने अपने अनुभवों और उदात्त भारतीय सन्देशों को अनुस्यूत करने का प्रयास किया है। कथावस्तुविन्यास में पात्रों के चरित्रविकास में तो माघ ने उदात्तसन्देश दिया ही है, विशेष रूप से अर्थान्तर-न्यासात्मक सूक्तियों में संक्षेप में उस तथ्य की ओर वे पाठक का ध्यान आकृष्ट करते हैं। सूक्तियों की भाषा अत्यन्त सरल और ललित है, जिससे काव्यरसिक के स्मृतिपटल पर वे अनायास अङ्कित हो उठती है।

शिशुपालवध में भारतीय समाज की सर्वाधिक और सर्वाङ्गीण झाँकी विद्यमान है। राजनीति की उक्ति-प्रत्युक्ति, धर्म के सनातन तत्त्वों की मार्मिक

व्याख्या, दुरूह तत्त्वों का विश्लेषण, जीवन के प्रति आस्था की प्रेरणा, कार्य-अकार्य का विवेचन, रणनीति की व्यावहारिक समीक्षा, काव्य की सरस वानगी और साहित्यकारों के लिए विशाल सामग्री इत्यादि विषयों का सन्निवेश है। माघ ने शिशुपालवध में सूक्तियों के माध्यम से भारतीय समाज को सत्प्रवृत्तियों के लिए निर्दिष्ट किया है–

'गृहानुपैतुं प्रणयादभीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः॥'[५०]

सन्त लोग पुण्यात्माओं के घर ही पहुँचते हैं, पापियों के नहीं। अतः कठिनाई से मिलने वाले सन्तों की पूजा करनी ही चाहिए। शायद इसीलिए महानुभाव लोग श्रेष्ठ पुरुषों को अपनी सेवा द्वारा बार-बार वश में करने की अभिलाषा करते ही हैं। यथा–

'ग्रहीतुमार्यान्परिचर्यया मुहुर्महानुभावा हि नितान्तमर्थिनः॥'[५१]

माघ मानी पुरुषों का अभिमान ही एक मात्र धन बताते हैं, क्योंकि मानी लोग प्राणत्याग करना पसन्द करते हैं, किन्तु मानत्याग करना पसन्द नहीं करते, इसी कारण मानी रावण ने आपको (भगवान्) श्रीराम को अपना घातक जानकर भी सीताजी को आपके यहाँ वापस नहीं किया। यथा–

'सदाभिमानैकधना हि मानिनः।'[५२]

महाकवि माघ कहते हैं कि सती स्त्री की भाँति मनुष्य की अत्यन्त स्थिर प्रकृति दूसरे जन्म में भी उसे प्राप्त होती ही है, जैसा कि स्पष्ट है–

'सतीव योषित्प्रकृतिः सुनिश्चला पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि।'[५३]

जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री मन्, वचन और शरीर से पति को कभी अप्रसन्न नहीं करती हुई जन्मान्तर में भी पूर्वजन्म के पति का सान्निध्य प्राप्त करती है, ठीक उसी प्रकार सुनिश्चलस्वभाव भी जन्मान्तर में पुरुष को प्राप्त करता है।

माघ ने असज्जनों का विनाश करना सत्पुरुषों का कर्त्तव्य बताया है–

'शुभेतराचारविपक्त्रिमापदो निपातनीया हि सतामसाधवः।'[५४]

महाकवि माघ अपने काव्य में भगवान् श्रीकृष्ण को लोकरक्षक एवं सत्प्रतिपालक के रूप में प्रतिष्ठित किया है। **'नेताऽस्मिन् स भगवान्'** के अनुसार वे इसके प्रधान नायक हैं। वे दैवीचरित्र से युक्त होते हुए भी मानवीय विशेषताओं से युक्त हैं, परन्तु मानवीय दुर्वलताओं का उनमें सर्वथा अभाव दिखाई

देता है। वसुदेव के घर में रहने वाले कृष्ण का संसार को नियन्त्रित करना, दुष्टों का दमन तथा सज्जनों की सुरक्षा ही कार्य है–

'श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगज्जगन्निवासो वसुदेवसद्मनि।'[५५]

आकाशमार्ग से अवतरित देवर्षि नारद का कृष्ण के द्वारा किया गया स्वागतसत्कार प्रशंसनीय है। **'अतिथि देवो भव'** के अनुसार अतिथिसत्कार को स्पृहणीय मानते हैं। उनकी विनम्रता, शिष्टाचार और वाणीकौशल कितना उच्च कोटि का है–

'गतस्पृहोऽप्यागमनप्रयोजनं
वदेति वक्तुं व्यवसीयते यया।
तनोति नस्तामुदितात्मगौरवो
गुरुस्तवैवागम एष धृष्टताम्॥'[५६]

उनमें आदर्श और लोकपालन की भावना इतनी प्रबल है कि वे शिशुपाल के वध के लिए तुरन्त उद्यत हो जाते हैं। उन्हें अपने साथ किये गये अपराध का दुःख नहीं है, अपितु वह संसार को पीड़ित कर रहा है, इससे दुःखी हो जाते हैं–

'न दूये सात्वतीसूनुर्यन्मह्यमपराध्यति।
यत्तु दन्दह्यते लोकमदो दुःखाकरोति माम्॥'[५७]

भगवान् कृष्ण कोई भी कार्य अच्छी प्रकार सोच-विचार करके ही करते हैं। उनका विचार है कि किसी विषय का अच्छा ज्ञाता भी कर्त्तव्य कार्य के प्रति सन्देहयुक्त होता है–

'ज्ञातसारोऽपि खल्वेकः सन्दिग्धे कार्यवस्तुनि।'[५८]

भगवान् श्रीकृष्ण स्वभाव से मितभाषी हैं। इन्द्र का सन्देश सुनकर केवल 'ओम्' कहकर ही अपनी स्वीकृति देते हैं। शिशुपाल के कटुवचनों को सुनकर भी वे शान्त रहते हैं। कृष्ण एक वीर योद्धा भी हैं। वे श्रेणीवद्ध वीरों को अपने वाणों से वेधकर रामावतार जैसा अलौकिक कार्य कर दिखाते हैं और अन्त में शिशुपाल का सिर सुदर्शनचक्र से काट गिराते हैं। कवि को अनेक अलौकिकरूप का चित्रण अधिक अभीष्ट है। रैवतक पर्वत पर छः ऋतुओं का एक साथ उदय होना, उनके अलौकिक व्यक्तित्व का ही प्रभाव है। माघ के कृष्ण धैर्यशाली, विचारवान् मितभाषी, उत्कटयोद्धा, सत्प्रतिपालक, जगन्नियन्ता तथा अलौकिक व्यक्तित्व सम्पन्न हैं।

महाकवि माघ ने राजनीति के माध्यम से समाज को शिक्षाप्रदतथ्यों से भी अवगत कराया है–

'उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यः पथ्यमिच्छता।'[५९]

भाव यह कि जिस प्रकार आदमी रोग को छोटा समझकर उसका उपचार नहीं करता। वह छोटा सा रोग अन्ततः उस आदमी को दबा देता है, ठीक उसी प्रकाश शत्रु को कभी भी छोटा नहीं समझना चाहिए।

स्वाभिमानी पुरुष शत्रुओं का समूल नाश किये बिना उन्नति नहीं प्राप्त करते, इस विषय में उदय होने के पहले रात्रि के गाढ़ अन्धकार को नष्ट करने वाले सूर्य उदाहण हैं। यथा–

'समूलघातमघ्नन्तः परान्नोद्यन्ति मानिनः।'[६०]

शत्रु का समूलनाश किए विना प्रतिष्ठा की प्राप्ति दुर्लभ है–

'विपक्षमखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा।'[६१]

महाकवि माघ उपकारी शत्रु के साथ सन्धि कर लेना उचित बतात हैं, किन्तु अपकारी मित्र के साथ कभी नहीं, क्योंकि इस उपकार और अपकार को ही मित्र और शत्रु का लक्षण बताया है–

'उपकर्त्रारिणा सन्धिर्न मित्रेणापकारिणा।
उपकारापकारौ हि लक्ष्यं लक्षणमेतयोः॥'[६२]

महाकवि माघ स्त्रियों को शत्रुतारूपी वृक्ष का कारण बताते हैं–

'वद्धमूलस्य मूलं हि महद्वैरतरोः स्त्रियः॥'[६३]

इन स्त्रियों के कारण ही महान् ग्रन्थों की रचना हुई है, यथा-सीताजी के अपहरण करने के कारण रामायण की तथा द्रौपदी के अपमान के कारण महाभारत की। अतः रुक्मिणी के कारण शिशुपाल के साथ वैर होना कोई नया काम नहीं है।

पापियों की चर्चा भी करना अमङ्गल का कारण बताया है–

'कथापि खलु पापानामलमश्रेयसे यतः॥'[६४]

दण्ड के द्वारा वश में करने योग्य शत्रु के साथ सामनीति (शान्ति) का व्यवहार करना अपना ही अपकार करना है–

'चतुर्थोपायसाध्ये तु रिपौ सान्त्वमपक्रिया।'[६५]

महाकवि माघ कहते हैं कि स्वार्थ साधन कौन नहीं चाहता है? अर्थात् सभी चाहते हैं–

'सर्वः स्वार्थं समीहते।'[६६]

जिस प्रकार इन्द्र तथा सूर्य पाण्डव के यज्ञ की अपेक्षा न करके स्वर्ग पालनादि अपने-अपने कार्य-साधन में संलग्न हैं, उसी प्रकार हम लोग भी पाण्डव यज्ञ की अपेक्षा न करके शत्रुवधरूप कार्य में संलग्न हो जॉय।

महाकवि माघ के कथनानुसार–पत्र के द्वारा प्रयोजन ज्ञात हो जाने के बाद उसको मौखिक-सन्देश के रूप में कहना व्यर्थ है–

'निर्धारितेऽर्थे लेखेन खलूक्त्वा खलु वाचिकम्।'[६७]

उद्धवजी ने बलरामजी के लिए यह कहा है कि वे केवल शूरवीर हैं, मन्त्र के योग्य राजनीतिज्ञ विद्वान नहीं हैं। राजनीति से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। जो बात पत्र में लिखी जा चुकी है, पत्र पढ़ लेने के बाद भी उसी का मौखिक-सन्देश कहना व्यर्थ है।

कार्य-सिद्धि के उपायों में लगे रहने वाले भी असावधानी के कारण अपने कार्य का नाश कर देते हैं–

'उपायमास्थितस्यापि नश्यन्त्यर्थाः प्रमाद्यतः।'[६८]

अर्थात् उपाय से ही कार्य करते हुए भी प्रमादीपुरुष के कार्य नष्ट हो जाते (बिगड़ जाते) हैं। अतएव विजयार्थी को कभी भी प्रमाद नहीं करना चाहिए। सदा जागरूक रहना चाहिए, अन्यथा वह समीपस्थ एवं आपद्ग्रस्त शत्रु को भी नहीं जीत सकता।

अधोलिखित पद्य में माघ ने 'समयज्ञ राजा को केवल तेज (बल या दण्ड प्रयोग) या क्षमा (मृदुता) धारण करने का नियम नहीं है, क्योंकि रसभाव के ज्ञाता (शृङ्गारादि रस के विषय को जानने वाले) कवि के लिए ओजगुणयुक्त या प्रसादगुणयुक्त ही प्रबन्ध को रचना करने का नियम नहीं है,' ऐसा बताया है। यथा–

'तेजः क्षमा वा नैकान्तं कालज्ञस्य महीपतेः।
नैकमोजः प्रसादो वा रसभावविदः कवेः॥'[६९]

महाकवि माघ सर्वथा पहले क्षमा का प्रयोग करना उचित समझते हैं। उनकी दृष्टि में क्षमा से बढ़कर कोई बड़ा धर्म नहीं है। यथा–

'मृदुव्यवहितं तेजो भोक्तुमर्थान् प्रकल्पते।'[७०]

लेकिन शक्ति के अनुसार क्षमाशील (शान्त) अङ्गी (सप्ताङ्ग वाला राजा तथा शरीरधारी मनुष्य) का व्यायाम (सन्धि-विग्रह आदि छः गुणों के प्रयोग, पक्षा०–दण्ड-बैठक आदि कसरत) करने पर (उसके राज्य और शरीर की) तो वृद्धि होती है, (किन्तु इसके विपरीत) अपनी शक्ति का अतिक्रमण करके किया गया व्यायाम क्षय (अत्यन्त हानि, पक्षा०–में क्षयरोग) का कारण बन जाता है। यथा–

'अयथाबलमारम्भो निदानं क्षयसम्पदः।'[७१]

महाकवि माघ का मानना है कि शत्रु को धीरे-धीरे दण्ड से भी वश में किया जा सकता है, किन्तु मित्र के साथ वैमनस्य होने पर उसे सामनीति से भी वश में करना कठिन हो जाता है–

'छन्दानुवृत्तिदुःसाध्याः सुहृदो विमनीकृताः।'[७२]

महाकवि माघ सत्पुरुषों द्वारा किये गये हवन को अमृत मानते हैं–

'अमृतं नाम यत्सन्तो मन्त्रजिह्वेषु जुह्वति।'[७३]

सत्पुरुषों का लक्षण यह है कि उनके मुख से एक बार जो कुछ बाहर निकल जाता है, उसका वे सर्वदा पालन करते हैं–

'तीक्ष्णा नारुन्तुदा बुद्धिः कर्म शान्तं प्रतापवत्।'[७४]

अर्थात् सत्पुरुष की बुद्धि तीक्ष्ण तो होती है, किन्तु शस्त्रों की भाँति मर्मभेदिनी नहीं होती, उसका कार्य तेजोयुक्त होने से शत्रुओं को भयप्रद, किन्तु शान्त होता है।

'अनेकशः संस्तुतमप्यनल्पा नवं नवं प्रीतिरहो करोति।'[७५]

अत्यधिक प्रेम अनेक बार की परिचित वस्तु को भी नवीन-नवीन बना देता है।

'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।'[७६]

क्षण-क्षण में जो वस्तु को अपूर्व सुन्दरता अथवा नवीनता प्राप्त होती है, वही रमणीयता का स्वरूप है।

महाकवि माघ के कथनानुसार भविष्य की आशा पर वर्तमान की उपेक्षा की जाती है, यह संसार का नियम है–

'सर्वे हि नोपगतमप्यपचीयमानं वर्धिष्णुमाश्रयमनागतमभ्युपैति।'[७७]

अर्थात् सभी लोग क्षय होने वाले उपस्थित आश्रय को नहीं स्वीकार करते, प्रत्युत वृद्धि को प्राप्त करने वाले अनुपस्थित आश्रय को भी वे ग्रहण कर लेते हैं। तात्पर्य यह है कि दिन के पहले प्रहर में जहाँ सघन और सुविस्तृत छाया थी, वहाँ दोपहर में धूप आने की सम्भावना थी, अतः विस्तृत छाया के विद्यमान् होते हुए भी लोग वहाँ जा-जाकर बैठने लगे, जहाँ दोपहर में विस्तृत छाया आने वाली थी। महाकवि माघ गुणों की स्पर्धा रखने वाले के विषय में कहते हैं–

'स [illegible]णा सह गुणाभ्यधिकैर्दुरासम्।'[७८]

अर्थात् मत्सरी (दूसरे की समृद्धि में द्वेष करने वाला) अधिक गुणवालों के साथ बड़े ही कष्ट से बैठते हैं। भाव यह कि गुणवान्, गुणवान् के साथ ईर्ष्या रखता है।

समय से बढ़कर कुछ नहीं होता। समय का अपना चक्र चलता रहता है–

'समय एव करोति बलाबलं'[७९]

अर्थात् समय ही शरीरधारियों को बलवान् और निर्धन बनाता है।

महाकवि माघ शत्रुकृतपराभव अत्यन्त दुःसह्य बताते हैं–

'परिभवोऽरिभवो हि सुदुःसहः।'[८०]

अर्थात् शत्रुओं द्वारा किया गया तिरस्कार असह्य होता ही है। मनस्वी पुरुष शत्रु के अनादर से सिर मुण्डन करा ही देते हैं।

'अभिराद्धुमादृतानां भवति महत्सु न निष्फलः प्रयासः।'[८१]

अर्थात् महान् व्यक्तियों की आराधना में तत्पर रहने वालों का प्रयास कभी भी निष्फल नहीं होता है।

महाकवि माघ ने स्त्रियों के सम्बन्ध में बताया है–**स्फुटम भूषयति स्त्रियस्त्रपैव।**'[८२] अर्थात् लज्जा ही स्त्रियों की शोभा बढ़ाती है। **'भवति हि विक्लवता गुणोऽङ्गनानाम्।'**[८३] अर्थात् भीरुता स्त्रियों का गुण है। **'त्वरयति रन्तुमहो जनं मनोभूः।'**[८४] उतावलापन मनुष्य को देशकाल से अनभिज्ञ बना देता है। इसलिए कोई भी कार्य सोच-समझकर धैर्य के साथ करना चाहिए। **'किमिव न शक्तिहरं ससाध्वसानाम्।'**[८५] अर्थात् भयग्रस्त लोगों के लिए कौन-सी वस्तु शक्तिनाशक नहीं हो जाती है?

कामुक-व्यक्ति को उचित-अनुचित का विचार नहीं रह जाता–

'औचित्यं गणयति को विशेषकामः।'[८६]

अर्थात् कौन ऐसा कामुक व्यक्ति है, जो उचित और अनुचित का विचार करता है? अर्थात् कोई नहीं। **'उद्वृत्तः क इव सुखावहः परेषाम्।'**[८७] अर्थात् आचारभ्रष्ट लोग दूसरे को कब सुख दे सकते हैं? अर्थात् कभी नहीं। **'विपदि न दूषितातिभूमिः।'**[८८] अर्थात् विपत्ति के समय मर्यादाओं को तोड़ देना अनुचित नहीं होता। **'शोभायै विपदि सदाश्रिता भवन्ति।'**[८९] अर्थात् निरन्तर सेवा में निरत रहने वाले सेवक विपत्तिकाल में भी शोभा को बढ़ाते हैं।

'अस्तसमयेऽपि सतामुचितं खलूच्चतरमेव पदम्।'[९०]

विनाश के समय में भी सज्जनों का स्थान ऊँचा रहता है।

भारतीय कवियों ने विधि के विधान को सूक्तियों के द्वारा प्रतिपादित किया है। इस सम्बन्ध में माघ की सूक्ति इस प्रकार है–

'प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ
विफलत्वमेति बहुसाधनता।
अवलम्बनाय दिनभर्तुरभू-
न्न पतिष्यतः करसहस्त्रमपि।'[९१]

एक सूक्ति के द्वारा माघ ने सुसंहति (संघ) बनाने का सन्देश उन लोगों को दिया है, जो अकेले असमर्थ है, किन्तु बहुजन मिलकर पराक्रम दिखा सकते हैं। यथा–

'सुसंहतैर्दधदपि धाम नीयते
तिरस्कृतिं वहुभिरसंशयं परैः।
यतः क्षितेरवयवसम्पदोऽणव-
स्त्विषां निधेरपि वपुरावरीषत॥'[९२]

माघ धैर्य और माहात्म्य का संयोजन करते हैं। यथा–

'आरभन्तेऽल्पमेवाज्ञाः कामं व्यग्रा भवन्ति च।
महारम्भाः कृतधियस्तिष्ठन्ति च निराकुलाः॥'[९३]

उनकी दृष्टि में सज्जन का स्वभाव ही उपकार करना है–

'उपकारपरः स्वभावतः सततं सर्वजनस्य सज्जनः।'[९४]

कवि परनिन्दा और आत्मप्रशंसा से पाठकों को विरत करना चाहता है–

'किमिवाखिललोककीर्तितं
कथयत्यात्मगुणं महामनाः।
वदिता न लघीयसोऽपरः
स्वगुणं तेन वदत्यसौ स्वयम्॥'[९५]

माघ कहीं-कहीं विशेषणों के प्रयोग मात्र से उपदेश प्रस्तुत करते हैं। यथा-

'स्वर्गेवासं कारयन्त्या चिराय
प्रत्यग्रत्वं प्रत्यहं धारयन्त्या।
कश्चिद्भेजे दिव्यनार्या परस्मि-
ल्लोके लोकं प्रीणयन्त्येह कीर्त्या॥'[९६]

कहीं-कहीं निन्द्य वस्तुओं के स्वभाव का चित्रण करते हुए माघ उपदेशक बन गये हैं। यथा-गणिका के विषय में-

'स्वगुणैराफलप्राप्तेराकृष्य गणिका इव।
कामुकानिव नालीकांस्त्रिणताः सहसामुचन्॥'[९७]

प्रायः सूक्तियों के द्वारा माघ उपदेश देते हैं। उपदेश देना माघ के लिए परम कर्त्तव्य ही था। उन्होंने कहा है-

'उपदेशपराः परेष्वपि स्वविनाशाभिमुखेषु साधवः।'[९८]

यत्र-तत्र महात्माओं के आचार की मर्यादा बताई है। यदि कोई महात्माओं की कोटि में अपनी गणना चाहता है, तो उसे पहले अनुग्रह सीखना पड़ेगा। यथा-

'महात्मानोऽनुगृह्णन्ति भजमानान् रिपूनपि।'[९९]

कुछ घटनाओं के आख्यान में भी माघ के उपदेश मिलते हैं। यथा-प्राणि-हिंसा नहीं करनी चाहिए। प्राणियों को हत्यारों से बचाने वाले को महान् उत्कर्ष प्राप्त होता है। यथा-

'अल्पप्रयोजनकृतोरुतरप्रयासै-
रुद्गूर्णलोष्टलगुडैः परितोऽनुविद्धम्।
उद्यातमुद्द्रुतमनाकहजालमध्या-
दन्यः शशं गुणमनल्पमवन्नवाप।'[१००]

और भी-

'नैवाऽऽत्मनीनमथवा क्रियते मदान्धैः।'[१०१]

अर्थात् मदान्ध व्यक्ति अपना हित नहीं कर सकते। इसमें प्रमत्तता से दूर रहने की शिक्षा दी गई है। माघ के नीतिपरक श्लोक भी प्रायः उपदेशात्मक हैं-

'तदुन्नतानामनुगमने खलु सम्पदोऽग्रतःस्थाः।'[१०२]

अर्थात् उत्कृष्ट लोगों का साथ करने से सामने पड़ी हुई सी सम्पत्तियाँ मिल जाती हैं।

उपकारपरायण होना महान् बनने के लिए आवश्यक है–

'महतामितरेतरोपकृतिमच्चरितम्।'[१०३]

अर्थात् महापुरुष परस्पर उपकार करते हैं।

'मदमूढ़बुद्धिषु विवेकिता कुतः?'[१०४]

इसमें मद के त्याग की शिक्षा व्यञ्जना से दी गई है। अलङ्कारों के प्रयोग से माघ कहीं-कहीं आदर्श जीवनपद्धति प्रस्तुत करते हैं। यथा–

'वशिनं क्षितेरयनयाविवेश्वरं
नियमो यमश्च नियतं यतिं यथा।
विजयश्रिया वृतमिवार्कमारुता-
वनुसस्त्रतुस्तमथ दस्त्रयोः सुतौ।'[१०५]

आत्मवशी राजा के पास दैव और पुरुषार्थ रहते हैं, यति के पास यम और नियम रहते हैं, विजयश्री चाहने वाले के पास सूर्य और वायु रहते हैं, वैसे ही नकुल और सहदेव श्रीकृष्ण का अनुशरण करते हैं। इसमें राजा को आत्मवशी, यति को यमी आदि बनने की शिक्षा दी गई है।

माघ चरित्रचित्रण द्वारा सामाजिक शिष्टाचार की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं। उनके कृष्ण इन्द्रप्रस्थ के अपने पुराने परिचित सभी लोगों का कुशलक्षेम जानने के लिए उत्सुक हैं–

'हरिराकुमारमखिलाभिधानवित्
स्वजनस्य वार्तमयमन्वयुङ्क्त च।
महतीमपि श्रियमवाप्य विस्मयः
सुजनो न विस्मरति जातु किञ्चन।।'[१०६]

उपर्युक्त आदर्श पर युधिष्ठिर का चरित्र उपदेश देने के लिए है–

'नैक्षतार्थिनमवज्ञया मुहुर्या-
चितस्तु न च कालमाक्षिपत्।'[१०७]

कहीं-कहीं वर्णन करते हुए कवि ने उपदेशक की भूमिका का निर्वाह किया है। यथा–

'ग्राम्यभावमपहातुमिच्छवो
योगमार्गपतितेन चेतसा।
दुर्गमेकमपुनर्निवृत्तये यं
विशन्ति वशिनं मुमुक्षवः।'[१०८]

इसमें कृष्ण का वर्णन करते हुए व्यञ्जना से निर्देश किया गया है कि मोक्षार्थी बनकर कृष्ण में प्रवेश कर जाओ।

शिशुपालवध महाकाव्य में उपन्यस्त उक्त सूक्तियों और सन्दर्भों में उदात्त भारतीय जीवनमूल्यों की गम्भीर उद्‌भावना हुई है। वैसे तो संस्कृत की सभी काव्यरचनाओं में उदात्त सन्देश प्राप्त होते हैं, किन्तु माघ की सूक्तियों का आयाम विस्तृत है। शिशुपालवध की सूक्तियाँ भारतीय आचार-व्यवहार, राजनीति, राष्ट्र समाज, परिवार और व्यक्तिगत जीवन के प्रति जागरुकता उत्पन्न करने में समर्थ है। इस काव्य के अध्ययन और उसकी प्रेरणाओं को जीवन में उतारने पर निश्चित ही पाठक का बहुविध कल्याण संभव है।

सन्दर्भ :

१. संस्कृत सा०के०इति० की संक्षि० रूपरेखा। लेखक-शिवमूर्ति शर्मा एवं बद्री प्रसाद पाण्डेय, एशिया प्रकाशन इलाहाबाद। पृ० १३३
२. शिशु०, ११/४७
३. शिशु०, ११/४४
४. शिशु०, ४/४७
५. शिशु०, २/११२
६. शिशु०, १/५
७. शिशु०, ४/३७
८. शिशु०, २/२८
९. शिशु०, ३/८
१०. शिशु०, २/७२
११. शिशु०, २/७३
१२. शिशु०, १४/१९
१३. शिशु०, १४/२४
१४. शिशु०, २/८२
१५. शिशु०, ९/६

१६. शिशु०, ९/१३
१७. शिशु०, १/२
१८. शिशु०, ६/२०
१९. शिशु०, ११/६४
२०. शिशु०, ६/२
२१. किरा०, १/१
२२. किरा०, २/२६
२३. शिशु०, ११/४१
२४. शिशु०, २/९१
२५. शिशु०, १/२३
२६. शिशु०, २/२८
२७. शिशु०, २/९३,९६
२८. किरा०, ८/४३
२९. शिशु०, ८/४६
३०. किरा०, ८/५१
३१. नैषधीयचरितम्
३२. शिशु०, ६/२
३३. शिशु०, १/५१
३४. शिशु०, १९/१०३
३५. शिशु०, ५/५०
३६. शिशु०, १६/८०
३७. शिशु०, १/१२,२६,२/१४,७२,७३,३/१६,६०,७०,४/१२,१८,२४,६/१६,४६, ७/७०,१४/१४,३३,१६/८४,१७/४,६१,१८/३६
३८. शिशु०, ४/४५
३९. शिशु०, ६/१४
४०. शिशु०, ६/२०
४१. शिशु०, ४/४२
४२. शिशु०, ४/९
४३. शिशु०, ६/२
४४. शिशु०, ११/१९

४५. 'सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ
यं यं व्यतीयाय पतिम्बरा सा।
नरेन्द्र मार्गाट्ट इव प्रपेदे
विवर्णभावं स स भूमिपाल:॥' (रघु०, ६/६७)
४६. शिशु०, ४/२०
४७. शिशु०, क०प०, ५
४८. शिशु०, १/१
४९. का०प्र०, १/२
५०. शिशु०, १/१४
५१. शिशु०, १/१७
५२. शिशु०, १/६७
५३. शिशु०, १/७२
५४. शिशु०, १/७३
५५. शिशु०, १/१
५६. शिशु०, १/३०
५७. शिशु०, २/११
५८. शिशु०, २/१२
५९. शिशु०, २/१०
६०. शिशु०, २/३३
६१. शिशु०, २/३४
६२. शिशु०, २/३७
६३. शिशु०, २/३८
६४. शिशु०, २/४०
६५. शिशु०, २/५४
६६. शिशु०, २/६५
६७. शिशु०, २/७०
६८. शिशु०, २/८०
६९. शिशु०, २/८३
७०. शिशु०, २/८५
७१. शिशु०, २/९४

७२. शिशु०, २/१०५
७३. शिशु०, २/१०७
७४. शिशु०, २/१०९
७५. शिशु०, ३/३१
७६. शिशु०, ४/१७
७७. शिशु०, ५/१४
७८. शिशु०, ५/१९
७९. शिशु०, ६/४४
८०. शिशु०, ६/४५
८१. शिशु०, ७/१
८२. शिशु०, ७/३८
८३. शिशु०, ७/४३
८४. शिशु०, ७/५०
८५. शिशु०, ७/५२
८६. शिशु०, ८/१०
८७. शिशु०, ८/१८
८८. शिशु०, ८/२०
८९. शिशु०, ८/५५
९०. शिशु०, ९/५
९१. शिशु०, ९/६
९२. शिशु०, १७/५९
९३. शिशु०, २/७९
९४. शिशु०, १६/२२
९५. शिशु०, १६/३१
९६. शिशु०, १८/६२
९७. शिशु०, १९/६१
९८. शिशु०, १६/४१
९९. शिशु०, २/१०४
१००. शिशु०, ५/२५
१०१. शिशु०, ५/४४

१०२. शिशु०, ७/२७

१०३. शिशु०, ९/३३

१०४. शिशु०, १३/६

१०५. शिशु०, १३/२३

१०६. शिशु०, १३/६८

१०७. शिशु०, १४/४५

१०८. शिशु०, १४/६४

उपसहार

पूर्वकृत विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि श्रीवर्मल नामक राजा के सुप्रभदेव नामक सर्वाधिकारी महामंत्री थे। उनके दत्तक नाम के पुत्र थे। उन्हीं दत्तक के पुत्र महाकवि माघ हुए। महाकवि माघ का समय विद्वानों ने प्राप्त तथ्यों एवं साक्ष्यों के आधार पर सातवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध एवं आठवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध स्वीकार किया है।

महाकवि माघ का एकमात्र महाकाव्य 'शिशुपालवध' सहृदय पाठकों के मध्य सम्माननीय रहा है। यही कारण है कि सहृदयों ने इस महाकाव्य के लिए **'नवसर्ग गते माघे नव शब्दो न विद्यते'**, **'माघे सन्ति त्रयो गुणाः'**, **'काव्येषु माघः'** प्रभृति सहृदयोक्तियाँ कहकर इनके काव्यवैशिष्ट्य को व्यक्त किया है। यहाँ तक कि किसी सहृदय वृद्ध ने **'मेघे माघे गतं वयः'** कहकर इनके महाकाव्य के वैशिष्ट्य को चरमोत्कर्ष तक पहुँचा दिया। जहाँ तक व्युत्पत्तिपरकता का प्रश्न है, माघ ने अपनी काव्यरचना में यथास्थल व्युत्पत्ति को भी अनुस्यूत किया है। यहाँ पर 'व्युत्पत्ति' शब्द मात्र शाब्दिक निर्वचनादि का अववोधक न होकर काव्यहेतु की चर्चा में काव्य के उपादान के रूप में स्वीकृत व्युत्पत्ति (निपुणता) का वाचक है। माघ ने अपने महाकाव्य में अपनी अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया है। उन्होंने अपने अतीत की आधारशिला पर स्थिर होकर प्रातिभकल्पना के सहारे कलात्मक महाकाव्यों का पथ-प्रशस्त किया है। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कोई भी साहित्यकार एक ओर अपने पूर्ववर्ती साहित्यकारों से प्रेरणाएँ ग्रहण करता है, तो दूसरी ओर परवर्ती साहित्यकारों के लिए मार्गनिर्देश कर जाता है। महाकवि माघ इसी प्रक्रिया के सच्चे निर्वाहक हैं। इस प्रकार उन्होंने अपने महाकाव्य शिशुपालवध को एक महान् कीर्तिकर निकष के रूप में स्थिर किया है।

'नवसर्ग गते माघे नव शब्दो न विद्यते' के कारण ही माघ पण्डित कवि के रूप में स्वीकार किये जाते हैं। माघ कवित्वकौशल के साथ ही पाण्डित्यप्रदर्शन को भी अपने महाकाव्य में सर्वत्र रेखाङ्कित किये हैं। उनका सम्पूर्ण महाकाव्य व्याकरण के प्रयोगों से ओतप्रोत है। इस दिशा में माघ का अधोलिखित पद्य अवलोकनीय है–

'अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा।'

सहृदय पाठकों ने इनके महाकाव्य में व्याकरण के दुरूह से दुरूह एवं सरस से सरस प्रयोगों को देखकर उन्हें महावैयाकरण के पद से विभूषित किया है। उनका महावैयाकरण होना इस बात का परिचायक है कि उन्हें समग्र वेदाङ्गों का ज्ञान है। महाकवि माघ ने अवसरानुकुल अपने महाकाव्य में स्वरों के ज्ञान, वर्णोच्चार का तरीका, गलत वर्णोच्चार का फल आदि शिक्षा (वेदाङ्ग) का निदर्शन किया है। छन्दों के चयन में तो माघ ने विशेष पटुता दिखाई है। माघ ने सोलह छन्दों में अपना वैशिष्ट्य दिखाया है। उनके छन्दों का वैशिष्ट्य चतुर्थ सर्ग में देखने को मिलता है। रैवतक वर्णन में पर्वत की निसर्गश्री के चित्रण में माघ ने वर्ण्यविषयानुकूल विविध छन्दों का प्रयोग किया है, जो उनके छन्दः प्रयोग के औचित्य को रेखाङ्कित करता है। माघ के महाकाव्य में वर्ण्यविषय को संप्रेषणीय बनाने वाले नये पर्यायों, शब्दों के प्रयोगों की दक्षता एवं निर्वचनपटुता का प्रयोग पदे-पदे विद्यमान है। साथ ही व्युत्पत्तिनिमित्तक शब्दों के प्रयोग में भी उनकी निर्वचनपटुता परिलक्षित होती है। इस प्रकार के प्रयोग उनके निर्वचन अथवा निरुक्त के सङ्केतक कहे जा सकते हैं। माघ के शिशुपालवध में यथास्थल ज्योतिषविषयक शब्दावली भी देखने को मिली है। यथा–पुष्यनक्षत्र, धूमकेतु, ग्रहों तथा नक्षत्रों की स्थितियाँ और शकुन-अपशकुनादि उनके ज्योतिषज्ञ होने के प्रमाण हैं। वैदिककर्मों, यज्ञीयविधियों, मानवकर्त्तव्यों, धार्मिकविधानों तथा वर्णाश्रमों के कर्त्तव्यों से उनके कल्पज्ञ होने की भी पुष्टि हो जाती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि माघ को वेदाङ्गों के तत्त्वों का अच्छा ज्ञान था।

महाकवि माघ ने **'लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारु'** कहकर अपनी ईश्वरविषयक आस्था को व्यक्त कर दिया है। माघ का विष्णु पर अनन्य भक्ति दिखाई पड़ती है, क्योंकि उनके महाकाव्य में कृष्ण के प्रति उनकी अकृतिम श्रद्धा अनेक स्थानों पर खुलकर प्रकाश में आयी है। महापुरुषों, ऋषियों एवं मुनियों के अलौकिक प्रभाव में भी माघ की आस्था दिखाई दी है। तृतीय सर्ग में भगवान् शिव, गङ्गावतरण, सृष्टि एवं वेदों का प्रादुर्भाव तथा हिरण्यगर्भ आदि शब्दों के प्रयोग से ऐसा प्रतीत होता है कि महाकवि माघ की धर्म में प्रगाढ़ आस्था थी। माघ की सबसे बड़ी विशेषता उनकी साम्प्रदायिक उदारता देखने को मिलती है। वैष्णवधर्म के पक्के अनुयायी होते हुए भी अन्य सम्प्रदायों एवं धर्मों के प्रति उनकी निष्ठा देखने को मिलती है। एक ओर तो वे यज्ञ, हवन आदि

की चर्चा करके ब्राह्मणधर्म के कर्त्तव्यों का उल्लेख करके सनातनधर्म का ध्यान आकृष्ट करते हैं; वहीं दूसरी ओर सनातनधर्म के होते हुए भी बौद्ध एवं जैनधर्म के प्रति श्रद्धापूर्ण निरूपण देखने को मिलता है। यद्यपि माघ अधिकांश वर्णन राजधर्म (क्षत्रियधर्म) का करते हैं। उन्होंने प्रजा की सर्वविध हितरक्षा और राजा के विशेष व्यापक अधिकारों को ध्यान में रखते हुए जिस राजतंत्र समर्थिका राजनीति की चर्चा अपने महाकाव्य में की है; वह भारतीय सभ्यता और संस्कृति के सर्वथा अनुकूल है। शिशुपालवध का द्वितीय सर्ग क्षत्रियधर्म (राजधर्म) का अच्छा निदर्शन है। माघ अपने काव्य में तत्कालीन व्यापारियों के कत्तव्यों एवं कृषि तथा गोपालनादि के प्रसङ्ग में वैश्यधर्म को रेखाङ्कित करते हैं। शिशुपालवध में सेवाभाव करने वाले शूद्रधर्म के परिचायक कहे जा सकते हैं। इस प्रकार में वर्णाश्रम धर्म के जो सङ्केत हैं; उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि माघ ग्रंथों की ही भाँति वर्णाश्रमधर्म के कर्त्तव्यों का प्रणयन किए हैं।

धर्म और दर्शन एक ही सिक्के के दो पहलू कहे जा सकते हैं। माघ की कृष्ण में अनन्यभक्ति होने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि शिशुपालवध में गीता की ही भाँति मानव के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष तक पहुँचने के लिए सांख्य एवं योगदर्शन के माध्यम से उन तक कैसे पहुँचा जा सकता है? उन समग्र कर्त्तव्यों का उल्लेख माघ ने किया है। सांख्य तथा योग की चर्चा तो उनके महाकाव्य में अवसरानुकूल सर्वत्र प्राप्त होता है। प्रथम सर्ग में देवर्षि नारद ने भगवान् श्रीकृष्ण की जो चर्चा की है, वह सांख्यशास्त्र के अनुरूप है। इसी प्रकार चौदहवें सर्ग में युधिष्ठिर की उपमा सांख्यमत के अनुसार ही की है। इन्हीं प्रसङ्गों में योग की भी चर्चा करते हैं। योग के अष्टाङ्गों, पञ्चक्लेशों आदि का भी माघ ने सङ्केत किया है। अद्वैतवेदान्त के तत्त्वों की चर्चा तो अनेक स्थलों पर है। संसार को मिथ्या मानकर वे ब्रह्म अथवा परमात्मा को एकमात्र सत्य मानते हैं। ब्रह्मज्ञान प्राप्त की साधना तथा मोक्षप्राप्ति की आकांक्षा को माघ ने अनेक स्थलों पर प्रकट किया है। माघ यज्ञ के वर्णन में मीमांसा और वैशेषिकदर्शनों की चर्चा की है। चौदहवें एवं ग्यारहवें सर्ग के दो पद्यों में व्याकरण, वेद, कर्मकाण्ड एवं दान की छोटी-छोटी बातों की मीमांसा की गई है।

इन्हीं प्रसङ्गों में वैशेषिकदर्शन के तत्त्वों, गुणों आदि का भी सङ्केत किये हैं। न्याय के सम्बन्ध में भी यत्र-तत्र कुछ विवेचन किया गया है। साथ ही बौद्ध एवं जैन दर्शनों में बौद्धों के पञ्चस्कन्ध, वोधिसत्त्व एवं जैनों के 'जिन' शब्दों के उल्लेख भी प्राप्त होते हैं। इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि माघ अपने

महाकाव्य में आस्तिक तथा नास्तिक दोनों प्रकार के दर्शनों के तत्त्वों को अपने महाकाव्य में समाहित किए हैं।

शिशुपालवध में काव्यशास्त्रीय तत्त्वों का जो समावेश प्राप्त होता है, वह सब तो कवि के अधिकृत क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। माघ **'शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते'** कहकर काव्यलक्षण का सङ्केत करते हैं। **'लक्ष्मीपतेश्चरित कीर्तनमात्रचारु'** एवं **'माघकाव्यमिदं शिशुपालवधः'** से उनकी यशोलिप्सा व्यक्त होती है। इस प्रकार से माघकाव्य में प्राप्त तथ्यों के आधार पर उनके काव्यप्रयोजन का उद्देश्य मम्मट के 'काव्यं' यशसे ....०' आदि प्रयोजन की तरह प्रतीत होता है। काव्यहेतु के सन्दर्भ में माघ ने प्रतिभा पर ज्यादा जोर दिए हैं, लेकिन साथ ही साथ व्युत्पत्ति और अभ्यास का भी कई पद्यों में सङ्केत करते हैं। इस प्रकार माघ काव्यहेतु में प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास तीनों को स्वीकार करते हैं। रचनाप्रक्रिया में–ब्रह्ममुहूर्त का समय सबसे अच्छा मानते हैं और उस समय में बुद्धि के नैर्मल्य होने से काव्य के विभिन्न पक्षों पर ध्यान देकर काव्य की अच्छी रचना की जा सकती है, ऐसा माघ का मत है। माघ के समग्र काव्य में अलङ्कार और अलङ्कार्य की चर्चा की गई है। माघ कहीं-कहीं गुण और अलङ्कारों का और कहीं गुण और रसभावादि का एक साथ सङ्केत करते हैं। माघ के काव्यशास्त्रीय सन्दर्भों की भाँति यद्यपि अलङ्कार और अलङ्कार्य के विभाजन के बारे में माघ के पद्यों में स्पष्ट निर्देश नहीं प्राप्त होता तथापि उनकी तद्विषयक अवधारणा की परिकल्पना प्रस्तुत उद्धरणों से की जा सकती है। **'नवसर्गगते माघे नव शब्दो न विद्यते'** की सहृदयाभिव्यक्ति माघ के शब्दविषयक पाण्डित्य को इङ्गित करती है। माघ अत्यन्त कुशलता से काव्योचित शब्दों का चयन किये हैं। योजनावद्ध तरीके से न कहने पर भी उनका शब्दार्थ-विषयक दृष्टिकोण यत्र-तत्र स्पष्ट होता गया है। इस प्रकार माघ ने शब्द, अर्थ एवं शब्दशक्तियों का भी विवेचन किए हैं। महाकवि माघ के शिशुपालवध में नाट्यशास्त्र के प्रणेता का कण्ठतः उल्लेख हुआ है। उनके कुछ पद्यों में नाट्यशास्त्रीय तत्त्वों का उल्लेख इस प्रकार किया गया है, जिससे उनके नाट्यशास्त्रज्ञ होने का अनुमान लगाया जा सके। माघकाव्य में पूर्वरङ्ग कञ्चुकी, नृत्य और रसादि का उल्लेख तत्तत् परिभाषाओं के सङ्केत के साथ किया गया है।

माघ ने शिशुपालवध में गजों एवं अश्वों के लक्षणों से लेकर उनके स्वभाव की छोटी-छोटी बातों की चर्चा की है। अश्वों तथा गजों के भेदों तथा

उनके गुण-दोषों की भी प्रामाणिक जानकारी कवि ने अपने काव्य में दी है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि माघ अश्वशास्त्र और गजशास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे। माघ का सङ्गीतशास्त्र पर साहित्यशास्त्र के समान ही असाधारण अधिकार था। इस प्रकार नृत्यकला और नाट्यकला पर भी उनका अधिकार दिखाई देता है। कवि ने सङ्गीतशास्त्र के षडज् ऋषभादि स्वरों, तीनों ग्रामों तथा उनकी इक्कीस प्रकार की मूर्च्छनाओं का उल्लेख किया है। माघ ने सङ्गीत के गुणों एवं दोषों का भी विवेचन किए हैं। इन्होंने आयुर्वेद अथवा वैद्यकशास्त्र की छोटी-छोटी बातों की चर्चा अनेक अवसरों पर की है। उन सब के परिशीलन से ज्ञात होता है कि माघ को आयुर्वेद की दृष्टि से रोग एवं औषधि सम्बन्धी अनेक बातों का ज्ञान था और कतिपय रसायनों एवं औपचारिक प्रयोगों की भी जानकारी थी। कामशास्त्र के विषय में उनके जो प्रसङ्ग हैं, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि माघ को वात्सायन के कामशास्त्र का अच्छा अध्ययन था, क्योंकि उन्होंने काम के सन्दर्भ में जो बातें की हैं; उससे उनके शास्त्रीयज्ञान का पता चलता है।

माघ के विषय में अनेक उक्तियाँ प्रचलित हैं। उन उक्तियों की समीक्षा की गई है-**'नवसर्ग गते माघः नव शब्दो न विद्यते'** से उनके शब्दज्ञान का पता चलता है। **'माघे सन्ति त्रयो गुणाः'** से उनके उपमा प्रयोग, अर्थगौरव एवं पदलालित्य की बात की गई है। **'तावद्भाभारवेर्भाति ....।'** से उन्हें भारवि एवं श्रीहर्ष से श्रेष्ठ बताया गया है। **'काव्येषु माघः** के द्वारा माघकाव्य की श्रेष्ठता बतलायी गई है। **'घण्टामाघः'** से उनके उपमा की श्रेष्ठता जाहिर की गई है। **'मुरारिपदचिन्ताचेद्तदामाघे रतिं कुरु'** से यह इङ्गित किया गया है कि यदि आपको मुरारि कवि के अनर्घराघव की चिन्ता हो तो आप माघकाव्य का अध्ययन करें अथवा मुरारि की चिन्ता हो तो (मा+अघे) पाप में रति न करो। **'मेघे माघे गतं वयः'** के द्वारा माघकाव्य की सहृदयहृदयसंवेद्यता तथा उत्कृष्टता सिद्ध की गई है। महाकवि शिशुपालवध में अनेक उदात्त सन्देश देते हैं; जिसके द्वारा वे लोगों को उनके कर्त्तव्यों का बोध कराए हैं एवं सही मार्ग पर चलने का उनका पथप्रशस्त किए हैं। माघ अपने उदात्त संदेशों के द्वारा लोगों में **'धृतिः क्षमा दमोस्तेयं ....०।'** आदि की भावना भरना चाहते हैं। जिससे परिवार, समाज एवं राष्ट्र में एक पारस्परिक सहयोग बना रहे और ये अपने उन्नति के मार्ग पर प्रशस्त होते रहें।

अन्त में मल्लिनाथ के शब्दों में स्वर मिलाते हुए कहना चाहता हूँ कि-

'धन्यो माघकविर्वयं तु कृतिनस्तत्सूक्ति संवेद्यनात्।'

सन्दर्भ-ग्रन्थ

१. शिशुपालवधम्		महोपाध्याय श्रीमल्लिनाथकृत 'ः व्याख्यायुत-'मणिप्रभा' नामक हिन्दी टीकासहित चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, १९६६।
२. शिशुपालवध महाकाव्य	:	श्री रामप्रताप त्रिपाठी, 'शास्त्री' हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, २००९।
३. शिशुपालवधम्	:	डॉ० देवनारायण मिश्र, शिक्षा साहित्य प्रकाशक सुभाष बाजार मेरठ-२५०००२।
४. संस्कृत-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	:	श्रीरामजी उपाध्याय प्रकाशक-रामनारायण लाल वेनीमाधव प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता, २, कटरा रोड, इलाहाबाद-२, विक्रमाव्द, २०२७।
५. भारतीय समाज का स्वरूप	:	डॉ० सीताराम झा 'श्याम' प्रकाशक-बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी सम्मेलन भवन, पटना-१९७४।
६. संस्कृत-कवियों के व्यक्तित्व का विकास (वाल्मीकि से पण्डितराज जगन्नाथ तक)	:	डॉ० राधावल्लभ त्रिपाठी प्रकाशक संस्कृत परिषद, सागर विश्वविद्यालय, सागर (म०प्र०), प्रथम संस्करण, १९७६।
		डॉ० कृष्णकान्त त्रिपाठी, डॉ० किरणलता क्षत्री, साहित्य भण्डार, शिक्षा साहित्य प्रकाशक, सुभाष बाजार मेरठ-२, पञ्चम संस्करण, १९८२।
८. धर्मदर्शन की भूमिका		जयप्रकाश शाक्य अशोक प्रकाशन-१, तोता का ताल आगरा-२, प्रथम संस्करण, १९८९-९०।

९. भारतीय दर्शन (हिन्दी साहित्य सम्मेलन के द्वारा 'मङ्गलाप्रसाद पुरस्कार' से पुरस्कृत) — श्री बलदेव उपाध्याय प्रकाशक शारदा मन्दिर, गणेश दीक्षितलेन वनारस, चतुर्थ संस्करण-१९४९।

१०. भारतीय दर्शन — डॉ० बद्रीनाथ सिंह, डॉ० श्रीमती आशा सिंह, प्रकाशक-स्टूडेण्ट्स फ्रेण्डस एण्ड कम्पनी, हिन्दू विश्वविद्यालय, लङ्का वाराणसी-५, षष्ठ संस्करण-१९९०।

११. भगवद्‌गीता यथारूप — कृष्णकृपाश्रीमूर्ति श्रीमद् ए०सी भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद भक्ति वेदान्त वुक ट्रस्ट हरे कृष्ण धाम, जुहू, बम्बई, ४०००४९, द्वितीय संस्करण।

१२. संस्कृत साहित्य के इतिहास की संक्षिप्त रूपरेखा : शिवमूर्ति शर्मा तथा वद्रीप्रसाद पाण्डेय एशिया बुक कम्पनी, ९-युनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद-२।

१३. संस्कृत साहित्य का इतिहास : वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१, संस्करण-प्रथम वि०सं० २०१७।

१४. संस्कृत साहित्य का इतिहास : डॉ० प्रीति प्रभा गोयल प्रकाशक- राजस्थानी ग्रन्थालय, सोजती गेट के बाहर, जोधपुर, प्रथम संस्करण, जनवरी, १९८७।

१५. संस्कृत साहित्य का इतिहस : बलदेव उपाध्याय, प्रकाशक-शारदा मंदिर, बनारस, १९५३।

१६. संस्कृत-निबन्ध-शतकम् : डॉ० कपिलदेव द्विवेदी आचार्य प्रकाशक- विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक वाराणसी-१, तृतीय संस्करण, १९८४।

१७. सांख्यकारिका : आचार्य जगन्नाथशास्त्री, मोतीलाल बनारसी-दास, बङ्गलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली, चतुर्थ संस्करण, १९७५।

१८. काव्यप्रकाश — डॉ० पारसनाथ द्विवेदी, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-२, तृतीय संस्करण-१९७४।

१९. संस्कृत सुकवि समीक्षा — बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१, प्रथम संस्करण, वि०सं०, २०२०।

२०. निरुक्तम् — प्रो० उमाशङ्कर शर्मा ऋषि, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१, १९६६।

२१. सांख्यकारिका — डॉ० ब्रजमोहन चतुर्वेदी, प्रकाशक-नेशनल पब्लिसिङ्ग हाउस, २/३५ अन्सारी रोड दरियागंज, दिल्ली-६, द्वितीय संस्करण, १९७५।

२२. वैदिक साहित्य और संस्कृति — वाचस्पति गैरोला, प्रकाशक-संवर्तिका प्रकाशन, इलाहाबाद।

२३. काव्यप्रकाश : आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि वाराणसी, ज्ञान मंडल लिमिटेड।

२४. ध्वन्यालोक : आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि प्रकाशक-गौतम बुक डिपो, दिल्ली।

२५. रसगङ्गाधर : आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि, प्रकाशक-गौतम बुक डिपो, दिल्ली।

२६. दशरूपक : डॉ० भोलाशङ्कर व्यास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

२७. रसगङ्गाधर एक समीक्षात्मक अध्ययन : कु० चिन्मयी माहेश्वरी, राजस्थान हिन्दी अकादमी, जयपुर-४।

२८. नाट्यशास्त्र : बाबूलाल शुक्ल, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

२९. तर्कभाषा : डॉ० श्रीनिवासशास्त्री साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ।

३०. योगसूत्र : आचार्य जगन्नाथ शास्त्री।

३१. रघुवंशम् — श्रीरामप्रताप त्रिपाठी, लोकभारती प्रकाशन।

३२. उत्तररामचरितम् — श्रीरामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री, लोकभारती प्रकाशन।

३३. किरातार्जुनीयम् — श्री मल्लिनाथ चौखम्बा भवन, वाराणसी।

३४. नैषधीयचरितम् — श्री मल्लिनाथ, चौखम्बा भवन, वाराणसी।

३५. कालिदास ग्रन्थावली — श्रीरामप्रताप त्रिपाठी, सम्मेलन मुद्रणालय, इलाहाबाद।

३६. काव्यालङ्कार — श्री रामदेव शुक्ल, चौखम्बा प्रकाशन।

३७. नाट्यशास्त्र — श्री बाबूलाल शुक्ल, चौखम्बा सीरीज वाराणसी।

३८. काव्यालङ्कारकारिका — श्रीरामदेव शुक्ल, चौखम्बा प्रकाशन।
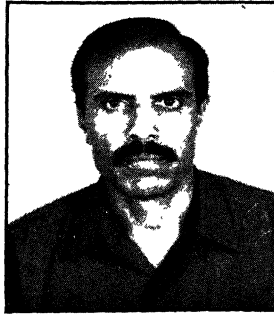
बालकृष्ण त्रिपाठी

शिक्षा	: एम०ए०,पी-एच०डी० संस्कृत रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर
पिता का नाम	: पं० श्री रामनरेश त्रिपाठी
जन्मतिथि	: ५-७-१९६०
जन्मस्थान	: ग्राम, पोस्ट कोहँड़ार, तहसील मेजा, जिला इलाहाबाद (उ०प्र०)
प्रकाशित शोधप्रत्र	: १. रीति-वृत्ति-विवेचन और राजशेखर २. काव्य और शब्दार्थ ३. अथर्ववेद में मणिविज्ञान ४. बालरामायण में यज्ञ-विधान ५. यज्ञ, अध्वर और अहिंसा
अध्यापन	: सत्र १९९९ - २००० तथा २०००-०१ में संस्कृत विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय में मानसेवी व्याख्याता के रूप में अध्यापन
सम्प्रति	: डी०लिट्०, शोधच्छात्र
शोध-विषय	: 'अग्निपुराण में प्रतिपादित काव्य-तत्त्वों का समीक्षात्मक विवेचन'